IAS

PCS

(27 जुलाई से 11 अगस्त तक)

आलेख सार

अंक – 15

संपादकीय

Analysis 360°

एक कदम, सफलता की ओर...

प्रिय अभ्यर्थियों!

जैसा कि आप जानते हैं कि जी०एस० वर्ल्ड प्रबंधन पिछले कुछ वर्षों से लगातार आपके अध्ययन सामग्री की गुणवत्ता संवर्धन हेतु सतत् प्रयासरत है, जिसके लिए दैनिक स्तर पर अंग्रेजी समाचार-पत्रों का सार एवं जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा सहायक सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। साथ ही साप्ताहिक स्तर पर हिन्दी समाचार-पत्रों का सार उपलब्ध कराया जाता था, किंतु सिविल सेवा परीक्षा के बढ़ते स्तर एवं बदलते प्रश्नों को देखते हुए जी.एस. वर्ल्ड प्रबंधन ने साप्ताहिक समाचार-पत्रों के सार के स्थान पर अर्द्धमासिक स्तर पर संपादकीय Analysis 360^0 आरंभ किया है।

संपादकीय Analysis 360^0 में नया क्या है?

- इसमें महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विभिन्न हिन्दी समाचार-पत्रों में आए संपादकीय लेखों का सार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन संपादकीय लेखों को समग्रता प्रदान करने के लिए इनसे जुड़ी सभी बेसिक अवधारणाओं को जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन मुद्दों से संबंधित 2013 से अब तक सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा के प्रश्नों को भी नीचे दिया गया है, जिससे अभ्यर्थी उस मुद्दे से जुड़े प्रश्नों को समझ सकें।
- इन मुद्दों से संबंधित संभावित प्रश्नों को भी इन आलेखों के साथ दिया गया है, जिसका अभ्यास अभ्यर्थी स्वयं कर संस्थान में अपने उत्तर की जाँच भी करा सकते हैं।

जी.एस. वर्ल्ड प्रबंधन आपके उज्ज्वल एवं सफल भविष्य के लिए प्रतिबद्ध है...

नीरज सिंह
(प्रबंध निदेशक, जी.एस. वर्ल्ड)

GS World
Committed To Excellence

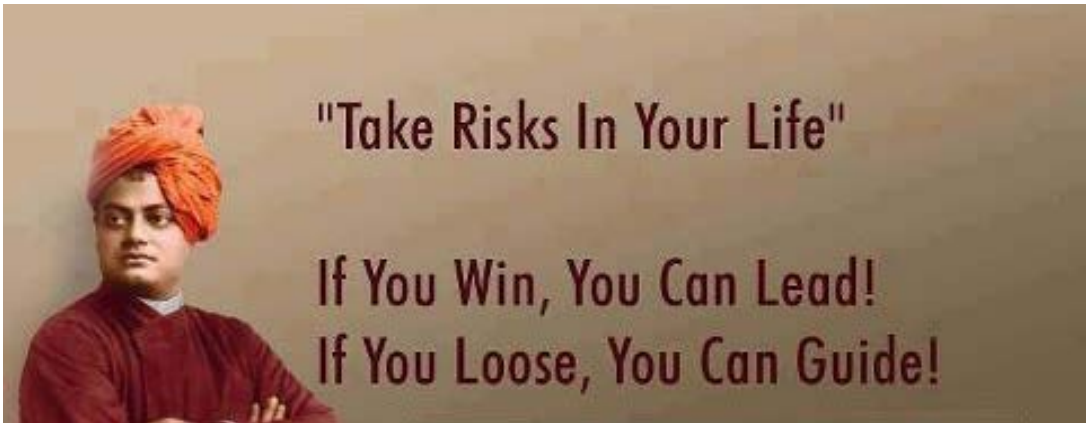

विषय-सूची

1. राष्ट्रीय नागरिक पंजी का अंतिम मसौदा जारी 4

2. पाकिस्तान में इमरान की नई पारी की शुरुआत 19

3. संरक्षण-गृहों की शर्मनाक सच्चाई 29

4. नई संभावनाओं के तौर पर ब्रिक्स 40

5. राफेल विवाद से जुड़ा सच 48

6. डेटा संरक्षण पर श्रीकृष्णा समिति की रिपोर्ट 55

7. राज्यसभा के उपसभापति का चुनाव 60

8. अनुसूचित जाति एवं जनजाति एक्ट की पूर्व स्थिति बहाल 64

9. भारत छोड़ो आंदोलन के 75 वर्ष 72

GS World
Committed To Excellence

राष्ट्रीय नागरिक पंजी. का अंतिम मसौदा जारी

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

उच्चतम न्यायालय की देख-रेख में असम के लिए राष्ट्रीय नागरिक पंजी का अंतिम मसौदा प्रकाशित की गई है। इसमें तकरीबन 40 लाख लोगों के नाम शामिल नहीं हैं। इस बड़ी जनसंख्या के भविष्य को लेकर शंकाओं के बीच तमाम कयास लगाए जा रहे हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'हिन्दुस्तान', 'नई दुनिया', 'पत्रिका', 'दैनिक जागरण', 'प्रभात खबर', 'नवभारत टाइम्स', 'जनसत्ता', 'दैनिक ट्रिब्यून' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

असम के आकाश पर नई आशंकाएँ (हिन्दुस्तान)

एक लंबी और जटिल प्रक्रिया से गुजरते हुए उच्चतम न्यायालय की देख-रेख में असम के लिए राष्ट्रीय नागरिक पंजी के अद्यतन का काम पूरा हो गया है और सोमवार को इसकी अंतिम मसौदा सूची प्रकाशित की गई। इसे असम के लिए ऐतिहासिक दिन बताया जा रहा है। करीब 3.29 करोड़ लोगों ने आवेदन दिया था, जिनमें से 2.89 करोड़ लोगों के नागरिकता प्रमाण दस्तावेज वैध पाए गए। यानी करीब 40 लाख लोग इसमें शामिल नहीं हो सके हैं। अखिल असम छात्रसंघ (आसू) समेत सभी क्षेत्रीय संगठनों और दलों की नजर में इनमें से अधिकांश विदेशी नागरिक हैं। आसू समेत तमाम क्षेत्रीय संगठनों के नेता इसे अपनी बड़ी जीत मान रहे हैं, क्योंकि असम समझौते में राष्ट्रीय नागरिक पंजी अद्यतन किए जाने का जिक्र था, और इसके लिए इन संगठनों ने लंबा आंदोलन किया है।

असम ही नहीं, किसी भी राज्य या भू-भाग को अवैध नागरिकों से मुक्ति मिलनी ही चाहिए। असम में इसके लिए छह वर्ष तक आंदोलन भी चला। लेकिन उन बच गए 40 लाख लोगों का क्या होगा, इस पर कोई साफ तौर पर बोलने को तैयार नहीं है। आश्वासन के तौर पर यही कहा जा रहा है कि जिन भारतीय नागरिकों के नाम अंतिम मसौदा सूची में नहीं हैं, उन्हें अपनी नागरिकता साबित करने का पर्याप्त मौका दिया जाएगा। इसके लिए दावा और आपत्ति का प्रावधान रखा गया है। केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह के निर्देश पर असम सरकार ने पुलिस को स्पष्ट निर्देश दिया है कि मसौदा नागरिक पंजी के आधार पर न तो किसी के खिलाफ कार्रवाई की जाए और न ही उनके नाम फॉरेनर्स ट्रिब्यूनल को भेजे जाएँ। फिलहाल किसी को डिटेंशन कैंप में भी नहीं भेजा जाएगा। असम सरकार विभिन्न माध्यमों से लोगों को यह संदेश दे रही है कि यह अंतिम सूची नहीं, सिर्फ मसौदा है। लेकिन इस तरह के तथ्य भी सामने आए हैं कि अद्यतन प्रक्रिया के दौरान उपाधि और जन्म-स्थान को देखकर भी भेदभाव किया गया है। इस प्रक्रिया में कई खामियाँ पाई गई हैं। असम के विधायक रामकांत देवरी का नाम भी सूची में नहीं है, जबकि वह यहीं के मूल निवासी हैं। हजारों नेपाली भाषियों के नाम भी इस सूची में नहीं दिख रहे हैं।

जिन भारतीयों के नाम इसमें शामिल नहीं हैं, उनमें बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल से आकर असम में बसने वालों की संख्या ज्यादा है। 25 मार्च, 1971 से पहले आए लोगों से असम में आकर बसने का प्रमाण मांगा जा रहा है, जबकि बाहरी राज्यों से आकर बसे ज्यादातर लोग यहाँ आने के साथ ही खेती-किसानी या मजदूरी में जुट गए थे। तब न तो

एनआरसी पर बेजा बवाल (नई दुनिया)

असम में राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर यानी एनआरसी का दूसरा एवं अंतिम मसौदा जारी होने और उसमें करीब 40 लाख लोगों को अवैध नागरिकों के रूप में चिह्नित करने पर कुछ विपक्षी दलों ने संसद के भीतर और बाहर हंगामा खड़ा करके यही स्पष्ट किया कि वे राष्ट्रीय महत्त्व के इस मसले को वोट बैंक की क्षुद्र राजनीति से ही देख रहे हैं। ऐसा करके वे राष्ट्रीय हितों की जान-बूझकर अनदेखी कर रहे हैं। आखिर जब असम के मुख्यमंत्री से लेकर केंद्रीय गृह मंत्री तक यह कह रहे हैं कि जिनका नाम एनआरसी में नहीं है, उन्हें बाहर नहीं निकाला जाएगा और उन्हें खुद को भारतीय नागरिक साबित करने का अवसर दिया जाएगा, तब यह हौवा खड़ा करने की क्या जरूरत कि सरकार संकीर्ण राजनीतिक इरादों के तहत असम के लाखों लोगों को बाहर खदेड़ना चाह रही है? खतरनाक बात यह है कि यह दुष्प्रचार करते हुए इस तथ्य के बावजूद सरकार पर निशाना साधा जा रहा है कि एनआरसी को सुप्रीम कोर्ट के निर्देश और निगरानी में तैयार किया गया है। एनआरसी पर विपक्षी नेताओं की बेजा और कलह पैदा करने वाली चीख-पुकार से यह समझा जा सकता है कि असम में घुसपैठियों का मसला सुलझाने की कोशिश क्यों नहीं हो सकी? एनआरसी पर व्यर्थ का शोरगुल यह जानने के बाद भी हो रहा है कि असम की तमाम समस्याओं के मूल में अवैध घुसपैठ है। क्या एनआरसी पर आपत्ति जताने वाले यह भूल गए कि असम में बांग्लादेश से होने वाली घुसपैठ को लेकर कितने आंदोलन और कितनी उथल-पुथल हो चुकी है?

यह ठीक नहीं कि घुसपैठ के सवाल को इस सच के सामने होने के बाद भी हिंदू-मुस्लिम का सवाल बनाया जा रहा है कि एनआरसी में बांग्लादेश से अवैध रूप से असम आ बसे लोगों में दोनों ही समुदायों के लोग हैं। इस मामले में वैसे तो कई विपक्षी दलों का व्यवहार भ्रम फैलाकर राजनीतिक रोटियाँ सेंकने वाला है, लेकिन तृणमूल कांग्रेस की नेता और पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का रवैया सबसे आपत्तिजनक है। ऐसा लगता है कि वह बांग्लादेश से अवैध तरीके से भारत आकर रहने वाले लोगों की अगुआ बनना चाह रही हैं। इस अगुआई का एकमात्र मकसद घुसपैठियों के वोट हासिल करना ही नजर आता है। यह सर्वज्ञात है कि वह इन घुसपैठियों के खिलाफ होने वाली हर पहल के विरोध में आ खड़ी होती हैं। यह साफ है कि वह इससे अनभिज्ञ रहना चाह रही हैं कि बांग्लादेश से चोरी-छिपे भारत की सीमा में घुस आए लोगों ने असम और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों के साथ ही पश्चिम बंगाल के कई इलाकों में भी राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को बदलने का काम किया है।

राशन कार्ड का प्रावधान था और न बैंक में खातों का ऐसा चलन। इन चीजों के बारे में किसी ने कभी कोई जरूरत भी महसूस नहीं की। इनमें से अधिकांश के नाम 25 मार्च, 1971 से पहले की मतदाता सूची में भी नहीं हैं। इस अवधि के बाद अन्य राज्यों से आए लोगों के लिए वंशवृक्ष का विकल्प दिया गया, ताकि साबित हो सके कि उनके पूर्वज भारत के किसी राज्य में निवास करते थे।

भारत के अन्य प्रांतों से आए लोगों ने अपने मूल प्रदेश से जुड़े दस्तावेज तो जमा कर दिए, जिनकी सत्यता की जाँच के लिए उन्हें संबंधित राज्यों को भेजा गया, मगर उन दस्तावेजों में अधिकांश की सत्यता जाँचकर वापस भेजने में संबंधित राज्य सरकारों ने उत्सुकता नहीं दिखाई। नतीजतन, इस तरह के तमाम भारतीयों के नाम सूची में शामिल होने से रह गए। अब ट्रिब्यूनल के समक्ष अपील करना, सुनवाई में शामिल होना और जरूरी दस्तावेज उपलब्ध करना इतना आसान तो है नहीं। सवाल यह भी है कि जब अद्यतन करने की प्रक्रिया के दौरान कर्मचारियों ने उनके दस्तावेज नहीं माने, तो ट्रिब्यूनल के जज उन्हें कितना महत्त्व देंगे? सवाल यह भी है कि 40 लाख लोगों में से कितने ट्रिब्यूनल का दरवाजा खटखटाएंगे?

जाहिर है, असम को अवैध नागरिकों से मुक्त कराने के इस अभियान में फिलहाल लाखों भारतीय भी परेशानी में पड़ गए हैं। इस बात की प्रबल संभावना है कि आने वाले दिनों में नागरिक पंजी प्रकाशित होने के बाद आसू समेत दूसरे क्षेत्रीय संगठन एनआरसी के आधार पर मतदाता सूची में संशोधन की मांग करें। फिर यह भी मांग उठ सकती है कि असम में व्यापार, नौकरी और संपत्ति खरीदने का अधिकार सिर्फ उन्हें मिले, जिनका नाम एनआरसी में हो। प्रकाशित सूची पर उल्फा ने भी संतोष जताया है, जबकि उल्फा भारतीय शासन प्रणाली को औपनिवेशिक व्यवस्था मानता है। साफ है, उल्फा भी असम में क्षेत्रीयता की धार पर सवार होकर अपने मनसूबे को पूरे करना चाहता है। असम में एक वर्ग पूरी तरह उग्र क्षेत्रीयतावाद को मजबूत करने में लगा है। उनके लिए असम सिर्फ असमिया के लिए होना चाहिए।

लिहाजा उच्चतम न्यायालय की सहमति से ऐसी व्यवस्था बनानी होगी कि असली भारतीयों को नाम शामिल कराने में कोई परेशानी न हो, वरना असम के मूल बाशिंदों और अन्य राज्यों से आकर बसे लोगों के बीच टकराव बढ़ेगा। बेहतर होगा कि केंद्र और असम सरकार असली भारतीयों के नाम शामिल करने के लिए विशेष व्यवस्था करें। प्रक्रिया को सरल बनाने की भी जरूरत है, क्योंकि वे बेशक देश के दूसरे हिस्सों से आए हों, पर हैं तो भारतीय। और यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अद्यतन का काम भारतीय नागरिक पंजी के लिए हो रहा है, असम की नागरिकता के लिए नहीं।

ट्रिब्यूनल में दावे के बाद भी जिनके नाम सूची में शामिल नहीं हो पाएंगे, उनका क्या होगा, यह सवाल भी बना हुआ है। क्या दशकों से बसे बांग्लादेश मूल के लोगों को बांग्लादेश अपना नागरिक मानेगा और उन्हें वापस लेने को तैयार होगा? क्या उन्हें डिटेंशन कैंप में रखा जाएगा और कब तक वे इस स्थिति में रहेंगे? ये बेहद मानवीय सवाल हैं। उनके साथ आखिर किस तरह का बर्ताव किया जाएगा?

इन पंक्तियों के लिखे जाने तक असम में कोई हिंसक प्रतिक्रिया भले न सामने आई हो, लेकिन एहतियातन भारी संख्या में सुरक्षा बल तैनात किए गए हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय नागरिकों को विदेशी घोषित करने की प्रतिक्रिया-स्वरूप हिंसक उथल-पुथल सामने आ सकती है।

समय के साथ ऐसे निर्वाचन क्षेत्र बढ़ते जा रहे हैं, जहाँ चुनावी हार-जीत में बाहरी लोग निर्णायक साबित होने लगे हैं। जी हाँ, यह सच है कि बांग्लादेशी घुसपैठियों ने पहले राशन कार्ड आदि हासिल किए और फिर वे मतदाता बन बैठे। ऐसा राजनीतिक दलों की शह पर ही हुआ। निःसंदेह भारत एक बड़ा देश है, लेकिन वह धर्मशाला नहीं बन सकता और न ही यह भूल सकता है कि देश का विभाजन क्यों हुआ था।

पहचान पर बवाल (पत्रिका)

असम सरकार ने अपने नागरिकता रजिस्टर का अन्तिम प्रारूप जारी कर दिया। छह माह पहले जारी शुरुआती प्रारूप में, असम की आधी आबादी रजिस्टर से बाहर थी। अन्तिम प्रारूप में भी 40 लाख लोग इससे बाहर हैं। असम की सडकों से लेकर देश की संसद तक बहस चल रही है कि अब इन 40 लाख लोगों का क्या होगा? हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने इस रिपोर्ट के आधार पर किसी भी कार्रवाई पर फिलहाल रोक लगा दी है। अभी यह भी तय नहीं है कि ये सब कौन हैं? कहाँ से आए हैं? इनमें से कितने बंगाली, बिहारी या देश के अन्य राज्यों से हैं? या फिर कितने बांग्लादेशी अथवा रोहिंग्या हैं? यह भी नहीं पता कि इनमें से कितने किस धर्म के हैं? लेकिन अफवाहों के बाजार खूब गर्म हैं?

वोटों की मण्डियों में गरमागर्म चर्चाएँ चल रही हैं। कोई कह रहा है कि सरकार इन्हें छोडने वाली नहीं है। पहचान लिया है तो अब देश के बाहर करके ही दम लेगी। कोई कह रहा है कि यह इतना आसान काम नहीं है। कहाँ भेजोगे, कैसे भेजोगे और किस आधार पर भेजोगे? कौन-सा देश होगा जो इन्हें पलक-पाँवड़े बिछाकर वापस ले लेगा? अभी तो तलवारें इस बात पर खिंच रही हैं कि क्या हम अपने ही देश में, अपने ही नागरिकों को शरणार्थी मान लेंगे? इन सब बातों में कितना सच है और कितनी राजनीति, यह तो सब करने वाले जानें लेकिन इतना तय है कि इस मामले में अब तक जो हुआ है और आज जो हो रहा है, सब वोटों की राजनीति का अभिन्न हिस्सा है। इसी तरह आगे जो होगा, उसके भी वोटों की राजनीति से प्रेरित नहीं होने की बहुत कम संभावना है। असम के नागरिकता रजिस्टर विवाद से अलग बात करें तो आज कौन नहीं जानता कि देश में लाखों नहीं, करोड़ों बांग्लादेशी रह रहे हैं। कौन नहीं जानता कि हमारे सुरक्षा बलों के गिने-चुने 'जयचंदों' की मदद से ही देश में घुसपैठ होती है। आज देश का शायद ही कोई ऐसा राज्य हो, जहाँ वे नहीं रह रहे हों। एक आता है और सौ को ले आता है।

असम की बात करें तो 1971 में शरणार्थियों के नाम पर जितने आए होंगे, उससे दस गुणा बढ़ गए। तब क्या देश की, असम की सरकारें इसके लिए दोषी नहीं हैं, और तो और असम गण परिषद के प्रफुल्ल कुमार महंत जो सिर्फ असमी-गैर असमी के नाम पर सालों चले हिंसक आन्दोलन के बाद दो बार असम के मुख्यमंत्री बने, उन्होंने भी कुछ नहीं किया। उनकी तो मांग ही असम से गैर असमियों की पहचान कर उन्हें वहाँ से निकालने की थी। उसी पर 1985 में उनका केन्द्र की राजीव सरकार से समझौता हुआ। दस साल के सत्ता मोह में, वे भी अपनी ही मांग को भूल गए? अब जब एक बार फिर यह मुद्दा गरमाया हुआ है तब सबसे पहले केन्द्र और असम की सरकारों के साथ देश के तमाम राजनीतिक दलों को यह तय करना चाहिए कि, वे इस मुद्दे पर करना क्या चाहते हैं? आज भी हमारी सीमा से चलकर बांग्लादेशी राजस्थान तक पहुँच रहे हैं तो कैसे? जरूरत है कि आने के नए रास्तों को बंद कर पुरानों पर आग लगाने या चुनावी भुट्टे सेंकने की नहीं बल्कि कोई सर्वसम्मत व्यावहारिक समाधान निकालने की है।

GS World
Committed To Excellence

एनआरसी के अंतिम मसौदे के प्रकाशन को लेकर गुवाहाटी से लेकर दिल्ली तक हंगामा (दैनिक जागरण)

एक ऐसे समय जब असम में राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर यानी एनआरसी के दूसरे और अंतिम मसौदे के प्रकाशन को लेकर गुवाहाटी से लेकर दिल्ली तक हंगामा मचा है। तब इस राज्य के साथ-साथ देश के अन्य प्रांतों के जन सांख्यिकीय स्वरूप में हो रहे बदलाव पर एक निगाह डालना आवश्यक है। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि अगर हम चेते नहीं तो जैसी स्थिति असम की बनी वैसी ही अन्य राज्यों की भी बन सकती है। ध्यान रहे कि आजादी के पहले 1901 में असम में मुस्लिम जनसंख्या 12.40 प्रतिशत थी जो 1941 में 25.72 प्रतिशत हो गई। एक तरह से 40 वर्ष में मुस्लिम जनसंख्या का प्रतिशत 12 से 25 प्रतिशत हो गया। यह सिलसिला आजादी के बाद भी कायम रहा।

1971 में बांग्लादेश बनने के बाद भी इस सिलसिले में और तेजी आई। बांग्लादेशी घुसपैठियों के असम का नागरिक बनने के सिलसिले के कारण ही असम छात्र संगठन ने 1980 में घुसपैठियों को बाहर निकालने का आंदोलन छेड़ा गया, फिर भी बांग्लादेश से अवैध तरीके से आने वाले लोगों की आमद थमी नहीं। एक आकलन के अनुसार असम में 1971 से 2011 के बीच मुस्लिम जनसंख्या 24.56 प्रतिशत से बढ़कर 34.22 प्रतिशत हो गई। असम के विपरीत दूसरे राज्यों में विदेशी घुसपैठ के कारण नहीं, बल्कि 'अन्य' कारण से हालात बदल रहे हैं। 2011 की जनगणना में देश की आबादी 1210854977 थी जिसमें 'अन्य' की संख्या 7937734 और 'उल्लेख नही' की संख्या 2867303 थी। इस तरह कुल 10805037 लोगों ने जनगणना में भरे जाने वाले पंथों वाले कॉलम से अपने को अलग रखा।

जिन लोगों ने अपने को 'अन्य' में लिखवाया उसमें जनजातियों/आदिवासियों की संख्या 7095408 है। 'अन्य' में मात्र एक राज्य झारखंड की हिस्सेदारी 4235786 यानी 53.36 प्रतिशत है। अगर देशव्यापी स्तर पर 'अन्य' में 89.38 प्रतिशत हिस्सेदारी आदिवासियों की है तो अकेले झारखंड के कुल 'अन्य' में 94.73 प्रतिशत हिस्सेदारी आदिवासियों की है। ये 'अन्य' कौन हैं और क्यों वे अपना धर्म/पंथ 'अन्य' लिखवाते हैं, इसकी पृष्ठभूमि में जाना आवश्यक है।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन से अंग्रेज भयभीत हो गए थे। पूरा देश उन्हें विदेशी मान कर उनके खिलाफ संगठित होकर खड़ा होता दिखाई पड़ा। इस पर अंग्रेजो ने 'फूट डालो और राज करो' नीति अपनाते हुए कई तरह के षड़यंत्र रचे। इसी में से एक था आदिवासी-गैर आदिवासियों के बीच विभेद। विडंबना यह है कि अभी भी विदेशी प्रभाव और सहायता वाले कुछ संगठन-समूह आदिवासियों के बीच जाकर यह कहते हैं, ''तुम्हारी एक अलग पहचान है और वह पहचान ही तुम्हें इस देश के मूल निवासी होने की गारंटी देती है। चूँकि हिंदूवादी ताकतें विविधता में एकता की बात करके तुम्हारी पहचान मिटाना चाहती हैं इसलिए तुम अपनी पहचान बचाने हेतु अपने को हिंदू कहना छोड़ो।'' झारखंड के कुछ आदिवासी जनगणना के समय अपना धर्म/पंथ 'आदि' या 'सरना' लिखवाते हैं। यही काम पूर्वोत्तर के आदिवासी भी करते हैं। चूँकि 'आदि' या 'सरना' करके कोई कॉलम होता नहीं, अतः जनगणना करने वाले कर्मचारी उनका नाम 'अन्य' के खाते में डाल देते हैं। कुछ वर्षों बाद वही समूह-संगठन आदिवासियों से कहते हैं, ''देखो तुम्हारे धर्म/पंथ को भारत सरकार मान्यता ही नहीं देती। इससे बेहतर है कि तुम ईसाई बन जाओ।''

आजादी के बाद से लेकर अभी तक यह षड्यंत्र चल रहा है। यह किसी से छिपा नहीं कि पूर्वोत्तर के राज्यों में आज का 'अन्य' कल का ईसाई होता गया। यह इससे समझा जा सकता है कि 1971 में अरुणाचल

राज्यविहीन आबादी का बोझ (प्रभात खबर)

तीस जुलाई को जारी असम के राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) के अंतिम मसौदे में चालीस लाख से ज्यादा लोगों के दावों को शामिल नहीं किया गया है। असम में भारतीय नागरिकों की सूची वाला यह रजिस्टर 1951 के बाद से पहली बार अद्यतन (अपडेट) किया जा रहा है, जब देश विभाजन के बाद भारत-बांग्लादेश सीमा पर विशाल आबादी की आवाजाही शुरू हुई थी।

यह एक जटिल कवायद है, जिसका घोषित उद्देश्य राज्य में 'अवैध आप्रवासियों' को पहचानना और उन्हें बाहर निकालना है। छह वर्षों तक चले लंबे विदेशी-विरोधी आंदोलन के बाद 1985 में हुए असम समझौते के जरिये समावेशन की शर्तें निर्धारित की गई थीं, उस विदेशी-विरोधी आंदोलन ने राज्य में उग्रवाद को भी जन्म दिया था।

इन शर्तों के तहत, कोई भी व्यक्ति जो यह साबित नहीं कर सकता कि वह या उनके पूर्वज 24 मार्च, 1971 की मध्यरात्रि (बांग्लादेश युद्ध से पूर्व) से पहले इस देश में नहीं आए थे, उन्हें विदेशी घोषित किया जाएगा। नागरिकता के सत्यापन की प्रक्रिया, जो तीन साल पहले शुरू हुई थी, खासकर बांग्ला बोलने वाले मुसलमानों और हिंदुओं के खिलाफ पूर्वाग्रह के आरोपों के कारण विवादों में फँसी है।

हालाँकि लाखों लोगों को अब भी भारतीय नागरिक के रूप में प्रमाणिक किए जाने की उम्मीद है और सरकार राज्य में व्याप्त भय को दूर करने की कोशिश कर रही है। जाहिर है, इससे इस कवायद की जबर्दस्त महत्ता प्रकट होती है। राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर ने पहचान से संबंधित पुराने और संभवतः विस्फोटक सवालों को छेड़ दिया है।

असम में यह क्षेत्र के मूल निवासियों की तलाश के साथ 'माटी पुत्रों' की जातीय मातृभूमि के रूप में राज्य की आत्म पहचान से जुड़ गया है। इस राज्य ने 19वीं शताब्दी से ही आप्रवासियों की लहर देखी है और देसीयता की परिभाषा अनिवार्य रूप से इतिहास, प्रागैतिहास और मिथक तक पहुँच गई है। असम का प्रतिस्पर्धी जातीय राष्ट्रवाद, जिसने सशस्त्र विद्रोहियों को जन्म दिया, उसके पीछे हमेशा 'जनसांख्यिकीय परिवर्तन' और देसज मातृभूमि पर बाहरी लोगों के 'कब्जे' कर लेने के भय को कारण माना गया।

पिछले चार दशकों में अक्सर उन्होंने 1983 के नेल्ली नरसंहार से लेकर 2012 के कोकराझार हत्याओं तक बंगाली मुसलमानों के खिलाफ हिंसक आक्रमण को अंजाम दिया है। वे राज्य में राजनीति का मुख्य आधार भी बन गए हैं, जहाँ प्रत्येक चुनाव 'अवैध बांग्लादेशी आप्रवासियों' के खिलाफ बयानबाजी में बढ़ोतरी, मतदाता सूची में घुसपैठ, चुनावी परिणामों को बदलने और राज्य की बहुमूल्य भूमि पर कब्जा करने का साक्षी बनता है।

व्यापक राष्ट्रीय कल्पना में, यह कवायद विभाजन के अनसुलझे सवालों को खत्म करती है और बताती है कि राज्य नागरिकता के लिए किस व्यक्ति को उपयुक्त मानता है। क्षेत्रीय आंदोलन सभी बाहरी लोगों, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, के खिलाफ हो सकता है, लेकिन जहाँ तक केंद्र का संबंध है, तो विदेशियों की पहचान और निर्वासन के पीछे हमेशा सांप्रदायिक उद्देश्य छिपा रहा है।

दशकों से भारतीय राज्य ने पड़ोसी देशों से उत्पीड़न के कारण भागकर आए हिंदू 'शरणार्थियों' और मुस्लिम 'घुसपैठियों' में फर्क किया है, जिससे राजनीति प्रभावित हुई है। इस अनौपचारिक भेदभाव को भारतीय जनता पार्टी के नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2016 में संहिताबद्ध किया गया था, जिसमें बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान से आने वाले गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए नागरिकता की राह आसान बनाई गई है।

लेकिन असम ने इस विधेयक के खिलाफ विरोध देखा है, क्योंकि यह 1985 के असम समझौते की शर्तों को कमजोर करता है। असम के

की कुल आबादी 467511 थी जिसमें ईसाई जनसंख्या 0.78 प्रतिशत और 'अन्य' की 63.45 प्रतिशत थी। 2011 की जनगणना के तहत अरुणाचल की आबादी 1383727 है जिसमें 'अन्य' की आबादी कुल आबादी का 26.20 प्रतिशत है। यहाँ 'अन्य' 63.45 प्रतिशत से घटकर 26.20 पर आ गया परंतु ईसाई 0.78 प्रतिशत से बढ़कर 30.26 प्रतिशत हो गया। आने वाले दिनों में इसके आसार अधिक हैं कि इस सीमांत प्रांत के अधिसंख्य 'अन्य' भविष्य में ईसाई बन जाएँगे। ऐसा हुआ तो अरुणाचल भी जल्द ईसाई बहुल हो सकता है।

नगालैंड तो ईसाई बहुल बहुत पहले ही हो गया था। 1951 में यहाँ की आबादी में ईसाई 46.04 प्रतिशत और अन्य 49.50 प्रतिशत थे। 2011 की जनगणना के हिसाब से नगालैंड की आबादी में 'अन्य' की जनसंख्या मात्र 0.16 प्रतिशत है पर ईसाई आबादी 87.92 प्रतिशत हो गई। यहाँ भी 'अन्य' घटा तो ईसाई बढ़ा। पूर्वोतर का मणिपुर वैष्णव पंथ के अनुयायियों के कारण अपनी एक अलग ही पहचान रखता है, लेकिन आज यह प्रांत अशांति से घिरा है। अगर आने वाले दिनों में यहाँ भी अगर 'अन्य' ईसाई बन जाएँ तो हैरत नहीं। अगर ऐसा हुआ तो यह प्रांत भी ईसाई बहुल हो जाएगा।

2011 की जनगणना के तहत झारखंड, पश्चिम बंगाल,ओडिशा छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश -इन पाँच राज्यों में ही 'अन्य' की संख्या करीब 67 लाख है। इसमें 63 लाख आदिवासी हैं। झारखड के 'अन्य' में विभिन्न जनजातियों की संख्या देखें तो सबसे ज्यादा उराँव मिलेंगे, फिर संथाल, मुंडा आदि। इन्होंने खुद को हिंदू के बजाय 'सरना' के रूप में दर्ज कराया है। झारखंड में कुल अनुसूचित जनजातियों की संख्या 86 लाख है जिसमें संथाल, उराँव और मुंडा 76.68 प्रतिशत हैं।

साफ है कि आदिवासी जातियाँ खुद को हिंदू कहलाने से बच रही हैं। केवल आदिवासी बहुल प्रांतो में ही 'अन्य' की संख्या में वृद्धि नहीं हो रही। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु में 'उल्लेख नहीं' वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है और यह चिंता का कारण है। देश के कुल 'उल्लेख नहीं' वाले लोगों की संख्या 2867303 है। इनमें इन राज्यों की हिस्सेदारी 2108079 है। मात्र 10 वर्ष में 'उल्लेख नही' वाले उत्तर प्रदेश में 69 हजार से बढ़कर 58 हजार, बिहार में 37 हजार से बढ़कर ढाई लाख, पश्चिम बंगाल में 54 हजार से बढ़कर सवा दो लाख हो गए।

यही स्थिति अन्य राज्यों में भी देखी जा सकती है। इस सिलसिले में यह ध्यान रहे कि 1987 में बिशप निर्मल मिंज के नेतृत्व में छत्तीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम के आदिवासी प्रभाव वाले जिलों को काटकर एक अलग प्रांत उदयांचल की मांग की गई थी। चूकि इन्हीं राज्यों के आदिवासी 'अन्य' में अपना नाम लिखवा रहे हैं इसलिए भारत सरकार को 'अन्य' की संख्या में हो रहे वृद्धि को गंभीरता से लेना होगा और आगामी जनगणना को ध्यान में रखकर कोई नया दिशा-निर्देश जारी करना होगा वरना देश की एकता और अखंडता खतरे में पड़ सकती है।

नागरिक और अनागरिक (नवभारत टाइम्स)

अभी असम में पैदा हुई असाधारण स्थिति से निपटने के लिए काफी सूझ-बूझ और धैर्य की जरूरत है। राज्य में नागरिकता की लिस्ट जारी कर दी गई है। नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजनशिप (एनआरसी) के मुताबिक असम में रहने वाले 2.89 करोड़ लोग वैध नागरिक हैं लेकिन वहाँ रह रहे 40 लाख लोगों की नागरिकता सिद्ध नहीं हो पाई है। इन लोगों को अपनी नागरिकता साबित करने का एक मौका और दिया जाएगा लेकिन सवाल यह है कि जब तक इस मामले में दुविधा बनी हुई है, तब तक इनका क्या होगा। जातीय (मूल) लोग बंगाली हिंदू और मुसलमान, दोनों को खतरे के रूप में देखते हैं, क्योंकि उनकी संयुक्त आबादी राज्य की आधी आबादी के करीब है। लेकिन गिनती की कवायद पर लगातार बंगाली मुसलमानों के खिलाफ अधिक कठोर रुख अपनाने का आरोप लगाया गया है, उन्हें उनकी धार्मिक और भाषायी पहचान के कारण 'अवैध बांग्लादेशी आप्रवासियों' के रूप में चिह्नित किया गया है। पिछले साल से राज्य के मुस्लिम अल्पसंख्यकों को तेजी से अपने बहिष्कार का डर था, क्योंकि गणना प्रक्रिया की शर्तों में बदलाव प्रतीत हुआ और नए नियम लागू किए गए।

हालाँकि सरकार ने यह आश्वासन दिया है कि मसौदा सूची के प्रकाशन के बाद किसी का भी अधिकार या विशेषाधिकार खत्म नहीं होगा और न ही उन्हें हिरासत शिविरों में भेजा जाएगा। लेकिन जैसे ही यह मसौदा, अंतिम सूची बन जाएगा, कुछ कठिन सवालों का सामना सरकार को जरूर करना पड़ेगा। आखिर उन लोगों का क्या होगा, जो विदेशी पंचाट के सामने अपनी नागरिकता साबित नहीं कर पाएंगे और इसलिए राज्यविहीन करार दिए जाएँगे? बांग्लादेश के साथ प्रत्यावर्तन संधि के अभाव में क्या उन्हें निर्वासित किया जाएगा, या उन्हें देश में रहने की अनुमति मिलेगी या उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों को खत्म कर दिया जाएगा, जिसका आश्वासन अभी सरकार दे रही है? और सरकार उस सामाजिक दरार को पाटने के लिए क्या योजना बनाएगी, जिसे इस कवायद ने एक बार फिर से चौड़ा कर दिया है?

एक ऐसे वर्ष में, जब संयुक्त राष्ट्र ने राज्यविहीनता को खत्म करने के लिए नए प्रयासों की घोषणा की है, भारत लाखों राज्यविहीन आबादी का बोझ उठा सकता है, जो अब न तो भारत की नागरिकता के योग्य होंगे और न ही जिन्हें बांग्लादेश भेजा जा सकता है, क्योंकि वहाँ शेख हसीना की दोस्ताना सरकार भी उन्हें स्वीकार करने के प्रति अनिच्छुक होगी। जाहिर है, असम उन्हें रखना नहीं चाहेगा और अन्य राज्य उन्हें लेना नहीं पसंद करेंगे और अगर ममता बनर्जी उन्हें लेना भी चाहती हैं, तो क्या उनकी सरकार केंद्र को चुनौती दे पाएगी और उन्हें नागरिकता का लाभ लेने देगी!

हम क्यों ढोएँ घुसपैठियों का बोझ? (नई दुनिया)

असम में भारतीय नागरिक रजिस्टर यानी एनआरसी का अंतिम मसौदा सामने आने के बाद हंगामा बढ़ता जा रहा है। इसमें तकरीबन 40 लाख लोगों को अवैध नागरिक के रूप चिह्नित किया है। एनआरसी तैयार करने का मकसद यही था कि ऐसे लोगों की पहचान की जा सके, जो 24 मार्च 1971 के बाद बांग्लादेश से आकर यहाँ बस गए और जिनके पास नागरिकता संबंधी कोई वैध दस्तावेज नहीं है। इसको लेकर कांग्रेस व तृणमूल कांग्रेस जैसे विपक्षी दल इसीलिए हायतौबा मचा रहे हैं, क्योंकि उन्होंने ऐसे ज्यादातर मुस्लिमों का तुष्टीकरण करते हुए उन्हें अपने कट्टर वोट बैंक में तब्दील कर लिया है। लेकिन उन्हें याद रखना चाहिए कि एनआरसी तैयार करने का यह काम सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर हुआ है। असम में जो सियासी दल हालात का पूरा फायदा उठाते हुए इन अप्रवासियों के वोटों को अपने पक्ष में भुनाता रहा है, वह कांग्रेस है। वास्तव में वोट बैंक की राजनीति की खातिर सीमापार से बड़े पैमाने पर घुसपैठ कराने और सीमाओं को खोलने में कांग्रेस का बड़ा हाथ था।

लगता यही है कि विदेशी नागरिकों को चिह्नित करने का यह काम असम तक सीमित रहने वाला नहीं। इसका अगला लक्ष्य पश्चिम बंगाल होगा और भाजपा तो यही चाहेगी कि इन दोनों राज्यों में इन अवैध नागरिकों को नागरिकता से वंचित किया जाए। लेकिन यदि यही भाजपा का एकमात्र लक्ष्य है तो इसे उसका स्वार्थ ही कहा जाएगा। हालाँकि इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रवादी कारणों से भी भाजपा ऐसा करने के लिए प्रेरित हुई है।

प्रश्न यह भी है कि राज्य मशीनरी इनके साथ कैसा सलूक करे। डर है कि इनकी संदिग्ध नागरिकता का कहीं स्वार्थी तत्त्व गलत फायदा न उठा लें और ये उनके दुर्व्यवहार और हिंसा के शिकार न हो जाएँ। या फिर खुद यही लोग किसी उकसावे में आकर कोई गलत कदम न उठा लें। एनआरसी में यह आश्वासन दिया गया है कि जो लोग वैध नागरिक नहीं पाए जाते हैं, उन्हें भी निर्वासित नहीं किया जाएगा। लेकिन बात सिर्फ इतनी नहीं है। उनकी नागरिकता पक्की नहीं है, इस आधार पर कहीं उन्हें निचली राज्य मशीनरी द्वारा मिलने वाली सुविधा-सुरक्षा से वंचित न कर दिया जाए। जब तक इन लोगों के बारे में कोई अंतिम फैसला न हो जाए, तब तक उन्हें हर दृष्टि से असम का नागरिक ही माना जाना चाहिए। सच्चाई यह है कि इन 40 लाख में कई लोग ऐसे भी होंगे जो सिर्फ जरूरी कागजात न दिखा पाने के कारण नागरिकता सूची में न आ पाए होंगे। ऐसी शिकायतें बड़े पैमाने पर आई हैं। कई संगठनों ने एनआरसी को अपडेट करने की प्रक्रिया पर सवाल उठाते हुए इसके विभिन्न प्रावधानों के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में याचिकाएँ दायर की हैं।

राज्य सरकार ने एक विशेष फॉर्म जारी करने का फैसला किया है जिसके जरिये एनआरसी में न आ पाए लोग दोबारा इसके लिए अपनी दावेदारी पेश कर सकेंगे। सरकार ने उन्हें हर तरह की तकनीकी मदद देने का आश्वासन भी दिया है। असम में स्थानीय बनाम विदेशी नागरिकों का मुद्दा राज्य के सामाजिक-राजनीतिक जीवन को अरसे से झकझोरता रहा है। असमिया लोगों की शिकायत रही है कि बांग्लादेश से बड़ी संख्या में आकर लोग उनके यहाँ बस गए हैं, जिससे राज्य की सामाजिक संरचना बिगड़ने लगी है। यह भावना कई शांतिपूर्ण और हिंसक आंदोलनों में व्यक्त होती रही है। 1980 के दशक में ऑल असम स्टूडेंट्स यूनियन (आसू) की अगुआई में हुए छात्र आंदोलन में यह मुद्दा बड़े पैमाने पर उठा। आखिरकार 2005 में केंद्र, राज्य सरकार और आसू के बीच असमिया नागरिकों का कानूनी दस्तावेजीकरण करने के मुद्दे पर सहमति बनी और अदालत के हस्तक्षेप से इसे एक व्यवस्थित रूप दिया गया। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर ही एनआरसी, 1951 को अपडेट किया गया है। उम्मीद करें कि सभी पक्ष पर्याप्त धैर्य का परिचय देंगे और राज्य शांतिपूर्ण ढंग से अपनी इस समस्या का समाधान कर सकेगा।

विवाद के बोल (जनसत्ता)

असम में एनआरसी यानी राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की सूची के सामने आने के बाद उस पर उठा विवाद जिस तरह तूल पकड़ चुका है, वह चिंताजनक है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि एनआरसी को अद्यतन करने का काम सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में चला और अभी तक उसका अंतिम स्वरूप जारी नहीं हुआ है। यह सही है कि चालीस लाख से ज्यादा लोग जिस तरह उस सूची से बाहर हो गए हैं, वह कोई मामूली आँकड़ा नहीं है। इसलिए इस मसले पर चिंतित होना स्वाभाविक ही है। प्रभावित लोगों के सामने अपनी नागरिकता साबित करने की चुनौती खड़ी हो गई है। यह कोई छिपी बात नहीं है कि देश भर में एक नागरिक के तौर पर जरूरी दस्तावेज तैयार कराने और उसे सुरक्षित रखने को लेकर जागरूकता की कमी पाई जाती है। इसलिए एनआरसी की सूची में जगह पाने के लिए मांगे गए दस्तावेजों में कमी की वजह से अगर इतनी बड़ी तादाद में लोग बाहर हो गए हैं, यह हैरानी की बात नहीं है। लेकिन नागरिकता से संबंधित मसला चूँकि संवेदनशील होता है और यह देश में रहने के अधिकार से जुड़ा है, इसलिए इस पर मची उथल-पुथल स्वाभाविक है।

हालाँकि इस पर उठे विवाद के बाद खुद गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने कहा कि अभी यह अंतिम सूची नहीं है और जिनका नाम इसमें शामिल नहीं हो सका है, उन्हें अपनी नागरिकता को साबित करने के मौके मिलेंगे।

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को देखकर पता चलता है कि वे इस कवायद के चलते अपने मुस्लिम वोट बैंक का बड़ा हिस्सा छिन जाने के भय से किस कदर बौखलाई हुई हैं। उन्होंने नई दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में यह तक कह दिया कि एनआरसी की कवायद सियासी उद्देश्यों से की जा रही है और लोगों को बाँटने का प्रयास हो रहा है। इससे देश में गृह युद्ध, रक्तपात मच जाएगा। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि मुख्यमंत्री जैसे अहम, जिम्मेदार पद पर बैठा कोई शख्स ऐसा गैरजिम्मेदार वक्तव्य दे। उनके इस भड़काऊ बयान के चलते आगे चलकर दंगे भड़क सकते हैं। हालाँकि यह अलग बात है कि ममता बनर्जी जब-तब ऐसे उत्तेजक बयान देती रहती हैं। ममता के इस बयान के पीछे यह भय भी निहित है कि भाजपा असम के बाद पश्चिम बंगाल में अवैध अप्रवासियों की पहचान सुनिश्चित करने के लिए वहाँ एनआरसी की प्रक्रिया को आगे बढ़ा सकती है। ममता के इस वक्तव्य को लेकर उनके खिलाफ भाजपा के कुछ युवा नेताओं ने पुलिस में एफआईआर भी दर्ज कराई है।

यह साफ है कि भाजपा भी अवसर का लाभ उठाते हुए एनआरसी के इस मसले पर पश्चिम बंगाल में लोकसभा चुनावों के दौरान हिंदू मतदाताओं को ध्रुवीकृत करने की कोशिश कर सकती है। हालाँकि ऐसा लगता नहीं कि इतने कम समय में पश्चिम बंगाल के संदर्भ में भी एनआरसी की कवायद पूरी की जा सकेगी।

असम के संदर्भ में भाजपा की सोच इस पूर्वोत्तर प्रदेश के उन हजारों छात्रों की सोच के अनुरूप है, जिन्होंने इसी खातिर 1980 के दशक में जबर्दस्त आंदोलन छेड़ा था। इसके चलते वर्ष 1985 में कांग्रेस-शासित केंद्र सरकार, असम सरकार, ऑल असम स्टूडेंट यूनियन और ऑल असम गण संग्राम परिषद के मध्य ऐतिहासिक असम समझौता इसी उद्देश्य से किया गया था कि अवैध नागरिकों की पहचान कर उन्हें वापस भेजा जाए। इस बात को तीन दशक से ज्यादा अरसा हो गया। यह बताता है कि इस राह में कितनी अड़चनें आईं और नागरिकों की पहचान सुनिश्चित करने की यह कवायद कितनी वृहद प्रकृति की है। अब भी यह पता नहीं है कि कब और किस रूप में यह कवायद पूर्ण होगी और इस जटिल मसले का क्या समाधान मिलेगा। ऑन द रिकॉर्ड, भाजपा इस बात से स्पष्ट इनकार कर रही है कि लोगों को वापस भेजने के बारे में सोचा जा रहा है।

इस पर हैरानी नहीं कि राजनेताओं के एक वर्ग के अलावा कुछ मानवाधिकार कार्यकर्ता भी एनआरसी के निष्कर्षों को चुनौती देने की तैयारी कर रहे हैं। इन पाखंडियों व विघ्न-संतोषी तत्त्वों को अक्सर ऐसे ही संदिग्ध कारणों को हवा देने में मजा आता है, जो राष्ट्रीय हितों के खिलाफ लगते हैं।

असम में ये 40 लाख लोग बगैर किसी दस्तावेज के आए। इन्होंने दलालों व सियासी एजेंटों के जरिये फर्जी दस्तावेज हासिल किए, ताकि उन्हें भारतीय नागरिक के तौर पर मान्यता मिल सके। जाहिर है कि यह न सिर्फ निर्लज्ज दलालों, बल्कि उन राजनेताओं की भी गाथा है, जिन्होंने घुसपैठियों की मौजूदा कानूनों से छल करने में मदद की। नागरिकता प्रमाणीकरण के लिए आवेदन करने वाले 3.29 करोड़ लोगों में से 2.89 करोड़ लोगों को भारतीय नागरिक मान लिया गया। यह बताता है कि एनआरसी ने कितनी बारीकी इस काम को अंजाम दिया। यह भी अच्छा हुआ कि यह प्रक्रिया सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में चली है।

वर्ष 2000 में किए गए एक आकलन के मुताबिक भारत में रहने वाले अवैध बांग्लादेशी अप्रवासियों की तादाद 1.5 करोड़ पाई गई थी और कहा गया था कि हर साल तकरीबन 3 लाख बांग्लादेशी यहाँ घुसपैठ कर रहे हैं। यूपीए शासन के दौरान तत्कालीन केंद्रीय गृह राज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने 14 जुलाई, 2004 को संसद में वक्तव्य दिया था कि भारत में 1 करोड़ 20 लाख अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिए रह रहे हैं। इस सूची में पश्चिम बंगाल 57 लाख बांग्लादेशी घुसपैठियों के साथ शीर्ष पर था।

सुप्रीम कोर्ट ने भी कहा है कि असम के एनआरसी में जिन चालीस लाख से अधिक लोगों के नाम शामिल नहीं हैं, उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है, क्योंकि फिलहाल यह सिर्फ एक मसौदा भर है। इसके अलावा, कई खबरों में इसमें दर्ज नामों और परिवारों को लेकर विसंगतियाँ भी सामने आ चुकी हैं। जाहिर है, एनआरसी की जिस सूची को लेकर तूफान खड़ा हो गया है, वह अंतिम सूची नहीं है और उसमें जगह नहीं पा सके लोगों के पास अभी मौके हैं। लेकिन विडंबना यह है कि बाकी मुद्दों की तरह इस मसले पर भी अमूमन सभी पक्ष अपनी राजनीति की सुविधा से हड़बड़ी में अपनी राय पेश करने में लग गए हैं। मसलन, कुछ राजनीतिक दल अंतिम सूची आने के पहले ही इससे बाहर रह गए लोगों को बांग्लादेशी घुसपैठिया घोषित कर रहे हैं, तो कुछ ने इस पूरी प्रक्रिया पर ही सवाल उठा दिया। एनआरसी से संबंधित विवाद के तूल पकड़ने के बाद एक ओर पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने गृह युद्ध छिड़ जाने तक की चेतावनी दे डाली, तो तेलंगाना में भाजपा के एक विधायक टी. राजा ने यहाँ तक कह दिया कि बांग्लादेशी आप्रवासी अगर भारत छोड़ कर नहीं जाते हैं तो उन्हें गोली मार दी जानी चाहिए।

सवाल है कि बिना सोचे-समझे इस तरह की प्रतिक्रियाओं को क्या परिपक्व बयान माना जा सकता है? क्या इन नेताओं को इस बात का अंदाजा नहीं है कि इन बयानों का सामान्य जनता पर क्या असर पड़ता है? ऐसी घटनाएँ अक्सर सामने आई हैं कि किसी नेता के बेलगाम बोल के बाद उसके समर्थकों और विरोधियों के बीच टकराव की स्थिति बन गई। एनआरसी को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया अभी जारी है और उसमें फिलहाल किसी भी वैध नागरिक की नागरिकता छिन जाने की नौबत नहीं आई है। एनआरसी से जुड़े सवाल बेहद संवेदनशील हैं और इस पर सभी राजनीतिक दलों को सावधानी से अपनी राय जाहिर करने की जरूरत है। लेकिन इस मसले पर जिस तरह की बयानबाजियाँ सामने आ रही हैं, अगर उन पर तुरंत लगाम नहीं लगाई गई तो इससे उपजी स्थिति को संभालना मुश्किल हो सकता है।

राष्ट्रघाती राजनीति (नई दुनिया)

यह देखना दयनीय और दुखद है कि असम में एनआरसी के नाम से जारी राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर के मसौदे में करीब 40 लाख लोगों के नाम न होने को लेकर कतिपय राजनीतिक दल संसद में लगातार हंगामे से बाज नहीं आ रहे हैं। हालाँकि सरकार इन दलों की ओर से उठाए गए सवालों का जवाब दे चुकी है, लेकिन फिर भी विपक्षी दल कुछ गैरजरूरी सवाल उछालने पर तुले हैं। यह बेहद हैरानी की बात है कि ऐसे सवाल उस कांग्रेस की ओर से भी उछाले जा रहे हैं, जिसके असम के नेता यह दावा कर रहे हैं कि एनआरसी का प्रकाशन तो उनकी पहल का परिणाम है।

बेहतर है कांग्रेस नेतृत्व पहले यह तय कर ले कि असम में घुसपैठियों के मसले पर वह चाहती क्या है? अगर वह एनआरसी के प्रकाशन का श्रेय लेना चाहती है तो इस बेतुके आरोप का क्या मतलब कि सरकार को यह नहीं पता कि असम में कितने घुसपैठिए हैं। आखिर वह इस सामान्य से तथ्य से क्यों अनजान बनी रहना चाह रही है कि एनआरसी का प्रकाशन असम के वैध एवं अवैध नागरिकों का पता लगाने के उद्देश्य से ही किया गया है? अब यह भी साफ हो रहा है कि इस गंभीर मसले पर गैरजिम्मेदाराना राजनीति के मामले में कांग्रेस से दो हाथ आगे तृणमूल कांग्रेस दिखना चाह रही है। इस दल की मुखिया और पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी आम लोगों को बरगलाने के साथ ही माहौल खराब करने वाला काम करती हुई दिख रही हैं।

पता नहीं क्या सोचकर ममता बनर्जी ने यह सवाल दागा कि अगर बंगाली बिहार के लोगों से यह कहें कि वे पश्चिम बंगाल में नहीं रह पिछले दिनों एनडीए सरकार में गृह राज्यमंत्री किरेन रिजिजु ने बांग्लादेशी घुसपैठियों की तादाद 2 करोड़ बताई थी।

टूर ऑपरेटर्स बेहद मामूली रकम पर लोगों को अवैध ढंग से यहाँ ले आते हैं। चूँकि बांग्लादेशी सांस्कृतिक रूप से भारत के बंगालियों जैसे ही होते हैं, लिहाजा वे यहाँ भारतीय नागरिक के तौर पर कहीं भी बसने में सफल हो जाते हैं।

असम में अवैध घुसपैठिए असम के मूल लोगों की पहचान के अलावा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी गंभीर खतरा बन गए हैं। उनकी वजह से असमिया लोगों के लिए अपने ही राज्य में अल्पसंख्यक होने का खतरा पैदा हो गया है, जैसा कि त्रिपुरा व सिक्किम जैसे राज्यों में हुआ है।

राजनीतिक नजरिये से देखें तो बांग्लादेशी घुसपैठिए पूर्वोत्तर के अनेक निर्वाचन क्षेत्रों (असम के तकरीबन 32 फीसदी) में निर्णायक स्थिति में हैं। आर्थिक तौर पर देखें तो इनकी वजह से भूमि समेत अन्य संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है, वन्य संपदा घट रही है, रोजगार के अवसर बँट रहे हैं, इनके द्वारा सरकारी जमीनों पर जबरन कब्जा किया जा रहा है। इस तरह के और भी कई मसले हैं, जिनसे धीरे-धीरे समूचा पूर्वोत्तर प्रभावित हो सकता है और नई दिल्ली में बैठी मोदी सरकार इसी बात को लेकर फिक्रमंद है।

रामबाण समाधान नहीं एनआरसी मसौदा (दैनिक ट्रिब्यून)

असम और राष्ट्रीय नागरिक पंजीयन (नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटीजन यानी एनआरसी) की सूची में नामों को शामिल करने हेतु अपनायी गई प्रक्रिया के खेल में जाने की आवश्यकता नहीं है, जिसका अंतिम मसौदा सामने आ गया है। पिछले दिसंबर को प्रकाशित हुए इसके पहले मसौदे में 1.9 करोड़ नाम थे, जिसकी वजह से कुछ वर्गों में खासी हलचल हुई थी। अब इसका दूसरा और अंतिम मसौदा सार्वजनिक हो गया, बाढ़ की वजह से इस काम में तय समय से एक महीने की देरी हुई।

यह एनआरसी सूची है क्या और असम में कोई इससे प्रभावित कैसे होगा? मुख्य रूप से यह कार्य 1951 में बने एनआरसी को मौजूदा आँकड़ों से सुसज्जित करने वाली मांग को पूरा करने का उपक्रम है। यह वह बही है, जिसमें हमारे अभिभावकों के अलावा दादा-दादी का नाम भी है। कभी कलम से दर्ज की जाने वाली ऐसी जानकारी के पीछे विचार यूं तो आदर्शक स्थिति वाला है, लेकिन अब नागरिकों की सूचना-पहचान डिजिटल रूप में रखी जाएगी।

राज्य सरकार की ओर से मांगी गई जानकारियों में नागरिकों की वंशावली 1951 से पहले वाले समय में भी असम से रही है। इस बात को स्थापित करने हेतु अनेक प्रश्न पूछे गए हैं। इसमें पहला पेच है: किसी व्यक्ति को यह संबंध स्थापित करने के लिए बतौर सुबूत दस्तावेज प्रस्तुत करने हैं। पेच नं. दो (ज्यादा भी हो सकते हैं): अगर नाम के हिज्जों में गलती या मिलान न हो पाया तो उसका जद्दी-पुश्तैनी स्थानीय नागरिक होने का दावा डूबा समझो। इस स्थिति में स्पष्टीकरण हेतु क्षेत्रीय एनआरसी दफ्तर से बार-बार समन आने लगते हैं। हिंदू और मुस्लिमों, दोनों को यह सोचकर खतरा महसूस होने लगा है कि कहीं सूची से उनका नाम बाहर न हो जाए। कुछ असमिया मुसलमानों के पूर्वज 500-700 पहले ही यहाँ आ बसे थे। अपनी स्थानीय पुश्तैनी पहचान स्थापित करने हेतु ज्यादा दौड़-भाग मुसलमानों को करनी पड़ रही है।

इस समूची प्रक्रिया को लेकर लोगों में अनिष्ट की आंशका, भय मिश्रित भारी नाराजगी और उलझन व्याप्त है और पूर्वाग्रह बढ़ते जा रहे हैं। स्थानीय मीडिया, व्यक्तियों और गुटों की समझ के हिसाब से पेश किए जा रहे नियम-कानूनों की व्याख्या से नागरिक की जिम्मेवारी, निजता, तथ्यों

सकते या फिर दक्षिण भारतीय यह कहने लगें कि उत्तर भारतीय उनके यहाँ नहीं रह सकते तो क्या होगा? क्या इससे बेतुका सवाल और कोई हो सकता है? सवाल यह भी है कि क्या वह एनआरसी को अस्वीकार करके सुप्रीम कोर्ट की अवमानना नहीं कर रही हैं? क्या इससे खराब बात और कोई हो सकती है कि वह एनआरसी को लेकर देश में गृह युद्ध छिड़ने का भी खतरा जता रही हैं?

निःसंदेह बात केवल कांग्रेस और तृणमूल कांग्रेस की ही नहीं, सपा, जद-एस, तेलुगुदेशम और आम आदमी पार्टी की भी है, जिनके सांसदों ने एनआरसी को लेकर संसद परिसर में धरना दिया। क्या इन दलों के नेता अपने बर्ताव से यह जाहिर नहीं कर रहे कि उन्हें असम के दो करोड़ 89 लाख नागरिकों से ज्यादा चिंता उन 40 लाख लोगों की है, जिनमें तमाम बांग्लादेशी घुसपैठिए साबित हो सकते हैं?

यह एक किस्म की राष्ट्रघाती राजनीति ही है कि वोट बैंक के लोभ में उन लोगों के कथित संवैधानिक अधिकारों की तो चिंता की जा रही जिनकी नागरिकता संदिग्ध है, लेकिन अपने नागरिकों के हितों की उपेक्षा की जा रही है। विपक्षी दलों के ऐसे रवैये से तो भाजपा अध्यक्ष अमित शाह की यह बात सही ही साबित होती है कि किसी में एनआरसी को अमल में लाने की हिम्मत नहीं थी। देश इस सच्चाई से अच्छी तरह अवगत भी है कि विभिन्न दलों ने असम में बांग्लादेशी घुसपैठियों के सवाल से मुँह चुराने का ही काम किया है।

आजादी के बाद पहली बार घुसपैठ की समस्या से निपटने के लिए सरकार ने उठाया ठोस कदम (दैनिक जागरण)

असम में सीमावर्ती क्षेत्रों से घुसपैठ की समस्या अरसे से चली आ रही है। देश के विभाजन के पहले 1931 में, तत्कालीन जनगणना अधीक्षक सीएस मुल्लन ने लिखा था कि पिछले 25 वर्षों से जमीन के भूखे बंगाली, जिनमें अधिकांश पूर्वी बंगाल के मुसलमान हैं, जिस तरह असम चले आ रहे हैं उससे प्रदेश की संस्कृति एवं समाज का तानाबाना ध्वस्त हो जाएगा। 1947 के बाद बड़ी संख्या में पूर्वी पाकिस्तान से हिंदुओं का पलायन हुआ। उन्होंने पश्चिम बंगाल, असम एवं त्रिपुरा में शरण ली। कालांतर में जब पूर्वी पाकिस्तान में पाकिस्तानी सेना का दमनचक्र चला तब भी वहाँ के तमाम मुसलमान भारत आ गए।

1971 में बांग्लादेश बनने के बाद आशा की जाती थी कि नए शासन में सांप्रदायिक सौहार्द होगा और जनता की आर्थिक समस्याओं पर समुचित ध्यान दिया जाएगा, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। 1975 में शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या हो गई और जनरल इरशाद ने इस्लाम को राष्ट्रीय धर्म घोषित कर दिया। ऐसा होने के साथ ही बांग्लादेश के अल्पसंख्यकों पर हमले शुरू हो गए। हमलों का शिकार मुख्यतः हिंदू, बौद्ध, ईसाई और जनजातियाँ बनीं। फलस्वरूप इन लोगों ने बड़ी संख्या में भारत में शरण ली। बांग्लादेश में 2001 में चुनाव के बाद भी अल्पसंख्यकों पर हमले हुए, क्योंकि उनके बारे में यह संदेह किया गया कि उन्होंने अवामी लीग को वोट दिया होगा जिसकी हार हो गई थी। एक अंग्रेज पत्रकार जॉन विडल ने इन हमलों का दर्दनाक चित्रण किया है। इसके बाद मुख्यतः आर्थिक कारणों से बांग्लादेशी भारत आने लगे।

बांग्लादेश इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, ढाका के अनुसार 1951 से 1961 के बीच करीब 35 लाख लोग पूर्वी पाकिस्तान से 'गायब' हो गए। इस संस्था के मुताबिक 1961 से 1974 के बीच भी करीब 15 लाख लोग संभवतः भारत जा बसे। बांग्लादेश चुनाव आयोग के रिकॉर्ड में भी कुछ दिलचस्प तथ्य हैं। 1991 में वहाँ 6,21,81,745 मतदाता थे, को लेकर और ज्यादा भ्रम पैदा हो रहे हैं।

इस प्रक्रिया में तीन प्रमुख खिलाड़ी हैं- राज्य सरकार, केंद्र सरकार और फैसला करवाने वाले के रूप में सर्वोच्च न्यायालय। लेकिन सबसे ज्यादा प्रभावित हैं-अनेक जनजातीय वर्गों के अलावा वह आम जनता जो उक्त तीनों के निर्णयों से प्रभावित होने की आशंका से भरी बैठी है। 1980 के दशक में विद्रोहियों द्वारा सर उठाने से पहले असम के जनजातीय वर्ग से राज्य को आंतरिक बल प्राप्त हुआ करता था। लेकिन अब उनकी मानसिकता बुरी तरह आहत है और अनिश्चित भविष्य को लेकर तनाव में है।

इस गड़बड़झाले में इजाफा करने वाला अन्य अवयवों में कई 'विदेशी नागरिक शिनाख्त ट्रिब्यूनल' हैं जो किसी न किसी रूप में पिछले 35 सालों से काम कर रहे हैं और हर साल लगभग 150 बांग्लादेशियों की शिनाख्त बतौर घुसपैठिया 'सिद्ध' कर रहे हैं। इसके अलावा केंद्र सरकार ने यह कहकर आँकड़ों के खेल में नया विवाद खड़ा कर दिया है कि गैर-कानूनी बांशिदा, चाहे वह किसी भी धर्म से संबंध रखता हो, उसको नागरिकता दिए जाने का बिल लाया जाएगा, सिवाय उनके जो पड़ोस के मुस्लिम बहुल देश से संबंध रखते हैं जैसे कि अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश। यह पूरा विचार ही अनर्गल है क्योंकि यह उसी सिद्धांत का प्रतिपादन है जो देश के विभाजन के लिए उछाला गया था और यह काम दक्षिण एशिया को 1947 और 1971 के बाद एक बार फिर से जाति के आधार पर बांटना चाहता है। लेकिन क्या यह सिद्धात हिंदुत्ववादी दक्षिणपंथियों के अखंड भारत बनाने वाले नजरिये से उलट नहीं हुआ? क्या इन्हें यह फिक्र भी नहीं कि ऐसा करके वे मुस्लिम बहुल देशों में रह रहे अल्पसंख्यक हिंदुओं को खतरे में डाल देंगे? क्या वे राजनीति और समाज में प्रचलित इस वैज्ञानिक सिद्धांत के प्रति इतने अंधे हो गए हैं कि प्रत्येक क्रिया की एक सापेक्ष प्रतिक्रिया स्वाभाविक रूप से होती है?

इन सब कामों ने मिलकर असम में कड़वाहट घोल दी है, बांग्लाभाषी हिंदू-बहुल बराक घाटी और वृहद ब्रह्मपुत्र घाटी (जहाँ हिंदू, मुस्लिम और अन्य कई गुट बसते हैं और अधिकतर असमिया भाषी हैं) के बाशिंदों के बीच लगातार चौड़ी होती खाई पैदा हो गई है। हालाँकि गृह मंत्री ने कहा है कि यह मसौदा अंतिम नहीं है और जिनके नामों को लेकर विवाद है, उन्हें अपना पक्ष रखने और चुनौती देने का मौका दिया जाएगा। इसका मतलब यह कि केंद्र और राज्य सरकारें इस सूची की वजह से बड़ी संख्या में नागिरकता गंवा बैठेने वाले लोगों की संभावित प्रतिक्रिया से जिस स्तर के हालात पैदा हो सकते हैं और जिनसे निपटने का न तो इनके पास कौशल है और न ही इच्छाशक्ति, इस तमाम मंजर को सोचकर चिंतित लगती है। इसके अलावा अगर ऐसे हालात बन गए तो कानून में व्याप्त खामियों का क्या? इसको लेकर समुचित योजना तो क्या बनानी, इसके बारे में विचार तक न करना एक बहुत बड़ी गलती है।

एक ही परिवार के जिन कुछ सदस्यों के नाम सूची में नहीं हैं तो क्या वे अलग किए जाएँगे? तब उनको कहाँ रखा जाएगा? क्या किसी ने बच्चों के भविष्य के बारे में कुछ विचार किया है? संभावित हिंसा और दुर्गति का जो दोहरा दावानल बनेगा, उससे हमारी अंतर्राष्ट्रीय भर्त्सना होनी अवश्यंभावी है और यह स्थिति मानवाधिकार संगठनों के एकत्र होने का बायस बनेगी। क्या हमारे सामरिक चिंतक इतनी संकीर्ण बुद्धि रखते हैं कि उपरोक्त हालात को नहीं देख पा रहे हैं। जहाँ तक विदेशी नागरिकों का मसला है, हमें नए सिरे से योजना तैयार करने की जरूरत है। चिन्हित किए गए लोगों को जलावतन करना कभी नहीं हो पाएगा क्योंकि भारत और बांग्लादेश के बीच ऐसी कोई कानूनन संधि नहीं है।

20 साल से ज्यादा हुए, मैंने भारत और बांग्लादेश के नागरिकों के लिए 'वर्क-परमिट' व्यवस्था लागू करना प्रस्तावित किया था ताकि काम के सिलसिले में वे एक-दूसरे के मुल्कों में आ-जा सकें और वहाँ निश्चित किए गए वर्षों के लिए रह सकें और अपने देश लौटने से पहले अपनी

Committed To Excellence

परंतु जब 1995 में सत्यापन किया गया तो आयोग को 61,65,567 नाम मतदाता सूची से काटने पड़े, क्योंकि उनका कोई पता ही नहीं चला। 1996 में पुनः आयोग को 1,20,000 बांग्लादेशी नागरिकों का नाम मतदाता सूची से हटाना पड़ा। स्पष्ट है कि ये सब भारत चले आए थे

सबसे ज्यादा बांग्लादेशी, असम और पश्चिम बंगाल आए। इसके अलावा वे बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मुंबई और राजस्थान आदि में भी काफी संख्या में फैल गए। भारत में कुल कितने बांग्लादेशी आए, इसके बारे में आधिकारिक आँकड़े माधव गोडबोले ने पेश किए थे, जो सीमा प्रबंधन पर गठित टास्क फोर्स के प्रमुख थे। उनकी ओर से केंद्र सरकार को अगस्त 2000 में दी गई रिपोर्ट में कहा गया था कि 1.5 करोड़ बांग्लादेशी भारत में अवैध रूप से घुस चुके हैं। उनका आकलन था कि करीब तीन लाख बांग्लादेशी हर वर्ष भारत में घुसपैठ कर रहे हैं। गोडबोले ने अपनी रिपोर्ट में इस पर खेद जताया कि किसी भी सरकार ने इससे निपटने का गंभीर प्रयास नहीं किया। राजनीतिक वर्ग को सारे तथ्य पता थे, परंतु उसने कोई ठोस कार्रवाई नहीं की। गोडबोले ने चेतावनी दी थी कि यह घुसपैठ देश की सुरक्षा, आर्थिक प्रगति और सामाजिक सौहार्द के लिए गंभीर खतरा है।

1998 में असम के राज्यपाल जनरल एसके सिन्हा ने राष्ट्रपति को भेजे पत्र में लिखा था कि बांग्लादेश से जिस तरह आबादी भारत में घुसती चली आ रही है उससे असम के मूल निवासी जल्द ही अल्पसंख्यक हो जाएँगे, राजनीति पर उनका नियंत्रण कमजोर हो जाएगा और उनके समक्ष रोजगार का संकट पैदा होने के साथ ही उनकी सांस्कृतिक पहचान भी खतरे में पड़ जाएगी।

1999 में सुप्रीम कोर्ट ने भी बांग्लादेश से पूर्वोत्तर प्रदेशों में हो रही घुसपैठ पर चिंता व्यक्त करते हुए केंद्र सरकार से इस घुसपैठ को ईमानदारी से रोकने की अपेक्षा व्यक्त की। तब उसने यह भी कहा था कि यह घुसपैठ देश की जनसांख्यिकी के लिए खतरा है। 2005 में भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बड़ी संख्या में बांग्लादेशियों की घुसपैठ के कारण असम 'बाह्य आक्रमण एवं आंतरिक अशांति' से ग्रस्त है। उसने भारत सरकार को निर्देश दिया कि वह संविधान के अनुच्छेद-355 के तहत इससे निपटने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए। इसके बाद 2008 में एक संसदीय पैनल ने कहा कि देश में बांग्लादेशी घुसपैठियों की बड़ी संख्या में मौजूदगी आंतरिक सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा है।

एक तरह हर तरफ से खतरे की घंटी बजती रही-राज्यपाल ने आगाह किया, सुप्रीम कोर्ट चेतावनी देता रहा, टास्क फोर्स ने गंभीरता बताई, संसदीय पैनल ने भी ध्यान आकर्षित किया, परंतु सरकारों की ओर से बराबर ढिलाई बरती गई। चूँकि समस्या ठंडे बस्ते में पड़ी रही इसलिए उसका स्वरूप विकराल होता गया।

15 अगस्त, 1985 को राजीव गांधी ने असम समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसके अंतर्गत असम में भारत की नागरिकता के लिए 24 मार्च, 1971 कटऑफ तारीख तय की गई, परंतु कोई कार्रवाई नहीं हुई। 2005 में मनमोहन सिंह सरकार ने घोषणा की कि नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजंस यानी एनआरसी को अपडेट किया जाएगा, परंतु पूरे दस साल तक असम की तरुण गोगोई सरकार इस पर चुप्पी साधे बैठी रही।

2015 में सुप्रीम कोर्ट ने एनआरसी को अपडेट करने के आदेश दिए। 2016 में असम में भाजपा सरकार बनने के बाद इस पर कार्रवाई शुरू हुई और बीती 30 जुलाई को एनआरसी का अंतिम मसौदा जारी हुआ। इसके अनुसार नागरिकता के लिए 3.29 करोड़ प्रार्थना पत्र प्राप्त हुए, जिनमें से 2.89 करोड़ को नागरिकता प्रदान की गई, शेष 40 लाख लोगों के नाम एनआरसी में दर्ज नहीं किए गए। इनके पास अभी मौका है। गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने कहा है कि इन 40 लाख लोगों के विरुद्ध अभी कोई अनुशासनिक कार्रवाई नहीं की जाएगी।

कमाई को बाकायदा भेज सकें लेकिन यह सुझाव अभी भी प्रस्तावना के स्तर पर अटका हुआ है, हालाँकि राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड ने वर्ष 2000 में यह सहमति दिखाई थी कि इसे आंतरिक सुरक्षा नीति का अंग बनाया जाए। 'बांग्लादेशी घुसपैठियों' का मुद्दा बांग्लादेश के विपक्षी दलों खासकर 'जमात' के लिए हथियार का काम कर सकता है, क्योंकि हमारे इस पड़ोसी मुल्क में साल के अंत में आम चुनाव होने हैं। यह सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री शेख हसीना वाजिद के खिलाफ कारगर अस्त्र सिद्ध हो सकता है और उनको बचाव की मुद्रा में जाना पड़ सकता है।

ये सब कारण मिलकर हमें इस मूल निर्णय पर लाते हैं : एनआरसी नागरिकता का विषय अंतिम रूप में सिद्ध करने के लिए कोई रामबाण नहीं है और न ही यह तुष्टीकरण की राजनीति और पैदा की गई सहमति के आधार पर राष्ट्रीयता तय करने के पैमाने निर्मित कर सकता है। ये सब प्रक्रियाएँ ऐसी हैं, जिनको अमल में लाकर सरकारें और राजनीतिक दल नागरिकों में अत्यंत गुस्सा और व्यग्रता पैदा कर रहे हैं।

वर्ष 1979 में जोशो-खरोश भरे माहौल में गैर कानूनी नागरिकों के खिलाफ आंदोलन की शुरुआत मशाल जुलूसों के साथ हुई थी। इनको चिन्हित कर बाहर करने की प्रक्रिया से हम असम को केवल उन नागिरकों का सूबा बनाने की चाह रखते थे, जिनका नाम सूची में होगा। मैं यह सब नजदीक से जानता हूं क्योंकि मैं उस वक्त वहीं था और बाद में समूची ब्रह्मपुत्र घाटी में क्या हो गुजरा, इसका भी गवाह रहा हूँ। हम असंतोष और हिंसा की वजह से व्यर्थ गए वैसे वर्षों में वापस कतई नहीं लौटना चाहेंगे।

एनआरसी पर राजनीति (नवभारत टाइम्स)

असम के नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजंस (एनआरसी) को लेकर देश में जिस तरह की राजनीति शुरू हो गई है, उससे यह मामला और उलझने का खतरा पैदा हो गया है। एनआरसी के फाइनल ड्राफ्ट में जो भी कमियां हों, पर याद रखना होगा कि यह सिर्फ ड्राफ्ट है, अंतिम सूची नहीं। यानी कमियों को दूर करने का मौका अभी बाकी है। जिन 40 लाख लोगों के नाम इस ड्राफ्ट में नहीं हैं, उनके खिलाफ अभी कोई कार्रवाई नहीं होनी है। दूसरी और ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस पूरी प्रक्रिया का किसी राजनीतिक दल या सरकार से सीधे कोई वास्ता नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर और उसकी देखरेख में यह कार्य किया जा रहा है। ऐसे में इसे राजनीतिक रंग देना खतरनाक है। केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने यही बात सोमवार को लोकसभा में कही भी। लेकिन अगले दिन यानी मंगलवार को बीजेपी अध्यक्ष अमित शाह ने राज्यसभा में एकदम अलग तेवर दिखाते हुए कहा कि एनआरसी का आइडिया तो राजीव गांधी सरकार का ही था, लेकिन इसे लागू करने का साहस बाद की किसी सरकार में नहीं था। चूँकि हममें साहस है इसलिए हम इसे लागू कर रहे हैं। कोर्ट ने कहा है कि जिन लोगों के नाम ड्राफ्ट में नहीं हैं, उनके दावों की जाँच के लिए निष्पक्ष मानक बनाए जाएँ। साफ है कि जब तक उनके दावे गलत नहीं साबित हो जाते तब तक उन्हें घुसपैठिया नहीं कहा जा सकता।

मगर बीजेपी अध्यक्ष शुरुआती जाँच के आधार पर ही उन सबको घुसपैठिया घोषित कर चुके हैं। पार्टी के इस आक्रामक रुख का संकेत पाते ही उसके निचले दायरों से 'भारत धर्मशाला नहीं है' जैसे बयान भी आने शुरू हो गए। दूसरी तरफ पश्चिम बंगाल की सीएम और तृणमूल चीफ ममता बनर्जी ने देश में गृह युद्ध शुरू होने की बात कह दी, जिसे लेकर उनके खिलाफ तत्काल एफआईआर भी दर्ज हो गई। ऐसी बात-बहादुरी से देश का माहौल गर्म होता है, जिसका एक या दूसरे दल को चुनावी फायदा भी मिल सकता है। लेकिन घुसपैठ की गंभीर समस्या से निपटने में इससे कोई मदद नहीं मिलने वाली, उलटे इसे हल करना और मुश्किल ही होने वाला है।

स्वतंत्रता के बाद से पहली बार ऐसा हुआ है कि बांग्लादेशी घुसपैठ रूपी एक गंभीर समस्या से निपटने की दिशा में एक ठोस कदम उठाया गया। इससे कम से कम असम में भारतीय नागरिकों की पहचान हो गई। शेष 40 लाख का क्या होगा, इस बारे में अभी कुछ कहना मुश्किल है। सिद्धांतत: इन्हें बांग्लादेश भेजा जाना चाहिए, परंतु व्यावहारिक दृष्टि से इसमें बहुत दिक्कतें आएंगी। बांग्लादेश इतनी बड़ी संख्या में लोगों को लेने के लिए राजी नहीं होगा। जो भी समाधान निकले, हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि उसमें बांग्लादेश की सहमति हो।

बड़ी मुश्किल से बांग्लादेश से हमारे संबंध सुधरे हैं और उसके चलते हम पूर्वोत्तर के विद्रोही संगठनों पर बहुत हद तक काबू पा सके हैं। यदि हमने बांग्लादेश से कोई जोर-जबरदस्ती की तो वह सामरिक दृष्टि से चीन की ओर झुक जाएगा। जब तक बांग्लादेशी भारत में रहते हैं तब तक हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि उन्हें वोट देने का अधिकार न हो और वे भारत में कोई अचल संपत्ति न खरीद सकें। सरकारी नौकरी और अन्य सरकारी लाभ से भी इन्हें वंचित रखना होगा। भविष्य में अन्य प्रदेशों में भी एनआरसी की कवायद होनी चाहिए, विशेष तौर से पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में।

असम में अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों को लेकर एनआरसी पर आपत्तिजनक राजनीति (दैनिक जागरण)

असम में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश और उसकी निगरानी में तैयार किए गए राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर यानी एनआरसी के अंतिम मसौदे के प्रकाशन के बाद तृणमूल कांग्रेस सहित कई विपक्षी राजनीतिक दलों ने जिस तरह राजनीतिक हंगामा खड़ा किया वह हैरान करने वाला भी है और यह बताने वाला भी कि राजनीतिक दल वोट बैंक की सस्ती राजनीति के लिए किस हद तक जा सकते हैं। असम में अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों की पहचान के लिए नागरिकों का रजिस्टर बनाने की प्रक्रिया राजीव गांधी के प्रधानमंत्री रहते समय किए गए एक समझौते का हिस्सा थी। इस समझौते के तहत मार्च 1971 के बाद बांग्लादेश से आए लोगों की पहचान करनी थी। यह प्रक्रिया इस समझौते का एक अहम हिस्सा होने के बाद भी उस पर किसी सरकार ने ध्यान नहीं दिया।

असम की एक के बाद एक सरकारों के साथ केंद्रीय सत्ता की भी हीलाहवाली के चलते यह मामला सुप्रीम कोर्ट गया। उसने असम में राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर तैयार करने का निर्देश दिया। 2016 में असम में भाजपा सरकार बनने के बाद यह रजिस्टर तैयार करने की प्रक्रिया आगे बढ़ सकी। इसकी निगरानी सुप्रीम कोर्ट ने की।

1971 में बांग्लादेश की आजादी के लिए हुए युद्ध के बाद जब माना जा रहा था कि वहाँ से घुसपैठ थम जाएगी तब वह पहले की तरह बदस्तुर कायम रही।

बांग्लादेश जब पूर्वी पाकिस्तान के रूप में पाकिस्तान का हिस्सा था तब भी वहाँ से असम और दूसरे पूर्वोत्तर राज्यों में घुसपैठ होती थी। कायदे से बांग्लादेशी घुसपैठियों के प्रवेश के कारण असम के जनसांख्यिकी स्वरूप में हो रहे परिवर्तन को लेकर वहाँ के राजनीतिक दलों के कान खड़े होने चाहिए थे, लेकिन ऐसा इसलिए नहीं हुआ, क्योंकि अधिकांश राजनीतिक दलों ने घुसपैठियों को अपने वोट बैंक के रूप में देखा। इनमें असम में लंबे समय तक शासन करने वाली कांग्रेस सबसे आगे रही। यह ठीक है कि कांग्रेस ने अपना रुख बदलकर यह कहा कि वह विदेशी नागरिकों की पहचान के पक्ष में है और एनआरसी तो उसकी ही पहल है, लेकिन समझना कठिन है कि चंद दिनों पहले तक वह इस मसले पर सरकार को क्यों कठघरे में खड़ा कर रही थी?

असम में नागरिकता आँच पर भारतीयता (बिजनेस स्टैंडर्ड)

मैं आपको रवांडा का कोई किस्सा नहीं सुनाऊंगा। उसके बारे में विकीपीडिया पर काफी जानकारी मौजूद है। मुझे शायद आपको 35 वर्ष पुराने नेल्ली नरसंहार का किस्सा सुनाने की भी आवश्यकता नहीं है। वह भी अब हमारी राजनीतिक लोककथाओं का हिस्सा है। मैं आपको खोइराबाड़ी, गोहपुर और सिपाझार जैसी उन जगहों के बारे में बताऊंगा जिनके विषय में कम लोग जानते हैं। इन दिनों जब असम में राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) को लेकर इतना राजनीतिक ध्रुवीकरण हो रहा है तो ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर स्थित इन जगहों को याद करना जरूरी है। सन 1983 में ब्रह्मपुत्र घाटी में हुई हत्याओं में करीब 7,000 लोग मारे गए थे। इनमें 3,000 से अधिक मुस्लिम थे जिन्हें 18 फरवरी की अलसुबह नेल्ली में कुछ ही घंटों में जान से मार दिया गया था। शेष हत्याएँ जगह-जगह हुई और इनमें भी अधिकांश मुस्लिम ही मारे गए। परंतु मैंने जिन तीन स्थानों का जिक्र किया है, वहाँ मरने वाले भी हिंदू थे और मारने वाले भी हिंदू ही थे।

अगर गुस्सा विदेशी नागरिकों (पढिए मुस्लिमों) के खिलाफ था तो हिंदू ही हिंदुओं को क्यों मार रहे थे? पूर्वोत्तर और असम की तमाम बातों की तरह यह भी एक जटिल किस्सा है जिसकी कई परत हैं। एक-एक करके बात करते हैं। हमलावर हिंदू, असमी बोलने वाले थे, उन्होंने बंगालियों की हत्या की। भाषायी और जातीय घृणा एकदम सांप्रदायिक नफरत की हद तक पहुँच रही थी। नेल्ली जैसी बंगाली मुस्लिमों की अधिक आबादी वाली जगहों पर कहानी आसान थी और असमी हिंदुओं ने बंगाली मुसलमानों की हत्या की। हर कोई एक दूसरे की जान के पीछे पड़ा था। भाजपा और सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर उस घातक मिश्रण को भड़का दिया है।

40 लाख लोग एनआरसी के मसौदे में जगह बनाने में नाकामयाब रहे हैं। बतौर सरकार और पार्टी भाजपा की भाषा इस मामले में अलग-अलग है। गृह मंत्री राजनाथ सिंह का कहना है कि यह अंतरिम और पहला मसौदा है। अमित शाह संसद में उन्हें घुसपैठिया कह चुके हैं। अगर आप उन 40 लाख संभावित लोगों में होंगे तो आप इसे कैसे देखेंगे? आपको लगेगा कि आपको निशाना बनाया जा रहा है। पूर्व मुख्यमंत्री तथा भाजपा के कनिष्ठ सहयोगी दल असम गण परिषद के मुखिया पहले ही इससे असहमति जता चुके हैं।

संभावना यही है कि इन 40 लाख में से अंतिम सूची में 5 लाख नाम ही बचेंगे। पूरी प्रक्रिया में अनियमितता है जो टिकेगी नहीं। गौहाटी उच्च न्यायालय ने स्थानीय लोगों की उस मांग पर मुहर लगा दी है कि ग्राम पंचायत से मिले प्रमाणपत्रों को नागरिकता का प्रमाण नहीं माना जाएगा। अब आधार के आगमन के पहले से यहाँ रह रहे ये गरीब लोग कौन-सा प्रमाण लाएंगे? राज्य सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में इसके खिलाफ अपील भी नहीं की। किसी और ने सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। सबसे बड़ी अदालत ने उच्च न्यायालय के आदेश पर मुहर तो नहीं लगाई लेकिन उच्च न्यायालय से कहा कि वह मानक तय करके बताए कि पंचायतों के किन प्रमाणपत्रों को मान्यता दी जाएगी। इसी भ्रम में सर्वोच्च न्यायालय ने एनआरसी की तैयारी को गति प्रदान की। इन प्रमाणपत्रों को लेकर अगर तार्किक सोच अपनायी गई तो कोई बाहरी व्यक्ति नहीं बचेगा। भाजपा ऐसा नहीं चाहती।

न्यायालय ने सन 1985 के राजीव गांधी- आसू/एएजीएसपी शांति समझौते की भावना के अनुरूप काम किया। इसमें वादा किया गया था कि नागरिकता निर्धारण के वास्ते एनआरसी के लिए 25 मार्च, 1971 को कट ऑफ वर्ष माना जाएगा। इसका अर्थ यह था कि जो लोग उस तारीख से पहले भारत आ गए थे उन्हें भारतीय नागरिक माना जाएगा। यह बात इंदिरा गांधी और शेख मुजीबुर्रहमान के समझौते के अनुरूप थी, जिसके

Committed To Excellence

क्या वह यह भूल गई थी कि बतौर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा था कि भारत पूर्वी पाकिस्तान से आए लोगों के बोझ को सहन नहीं कर सकता और उन्हें अपने देश लौटना ही होगा? कांग्रेस को यह याद रहना चाहिए था कि अवैध घुसपैठियों को लेकर असम छात्र संगठन ने जो व्यापक आंदोलन छेड़ा उसके चलते यह राज्य करीब दस साल तक अशांत रहा। असम को अशांति से बचाने के लिए ही राजीव गांधी ने 1985 में असम छात्र संगठन के साथ समझौता किया था।

राजनीतिक लाभ के इरादे से प्रारंभ में कांग्रेस ने एनआरसी पर आपत्ति जताकर मुसीबत ही मोल ली। उसकी यह मुसीबत तब नजर भी आई जब राज्यसभा में भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने एनआरसी पर कांग्रेस के रुख के कारण उसे कठघरे में खड़ा किया। चूँकि उस दौरान कांग्रेसी सांसदों को कोई जवाब नहीं सूझा इसलिए उन्होंने हंगामा खड़ा करना बेहतर समझा।

यह निराशाजनक है कि जहाँ कांग्रेस को यह तय करने में समय लगा कि एनआरसी पर उसका क्या रवैया होना चाहिए, वहीं पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने आनन-फानन में उसके खिलाफ खड़े होने में ही अपनी भलाई समझी। उन्होंने यह तक कह डाला कि एनआरसी भाजपा की सियासत का नतीजा है और इसके चलते देश में रक्तपात और गृह युद्ध हो सकता है। हालाँकि बाद में वह अपने इस धमकी भरे बयान से किनारा करती दिखीं, लेकिन वह जिस तरह इस मसले को तूल दे रही हैं उससे यह साफ हो जाता है कि वह देश से ज्यादा वोट बैंक की खतरनाक राजनीति को महत्त्व दे रही हैं।

यह वही ममता बनर्जी हैं जिन्होंने 2005 में लोकसभा में बांग्लादेश से होने वाली घुसपैठ का मुद्दा बहुत जोर से उठाया था। इस मसले पर जब उन्हें बोलने का मौका नहीं मिला था तो उन्होंने पीठासीन अधिकारी पर कागज फेंकने के साथ अपने इस्तीफे की भी घोषणा कर दी थी। तब उनका आरोप था कि वाम मोर्चा सरकार बांग्लादेशी घुसपैठियों को बढ़ावा दे रही है। ध्यान रहे तब पश्चिम बंगाल के वाम दलों पर ऐसे आरोप लगते ही रहते थे कि वे बांग्लादेशी घुसपैठियों को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। एनआरसी पर तृणमूल कांग्रेस समेत कुछ अन्य दलों का रवैया तो भाजपा को राजनीतिक लाभ ही देगा, क्योंकि आम जनता इस पक्ष में नहीं हो सकती कि बांग्लादेशी घुसपैठियों की पैरवी की जाए। समझना कठिन है कि कांग्रेस की ओर से अपना रुख स्पष्ट करने के बाद तृणमूल कांग्रेस और अन्य वे दल क्या करेंगे जो एनआरसी पर हाय-तौबा मचा रहे हैं?

राजनीतिक दल यह समझें तो बेहतर कि असम के साथ-साथ अन्य राज्यों में भी बांग्लादेश से अवैध तरीके से आए लोगों की पहचान होनी चाहिए। यह इसलिए जरूरी है, क्योंकि बीते चार दशक में तमाम बांग्लादेशी असम और पश्चिम बंगाल में घुसकर धीरे-धीरे देश के दूसरे हिस्सों में भी जा बसे हैं। वे झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश के साथ-साथ दिल्ली, राजस्थान और महाराष्ट्र में भी फैल गए हैं।

एनआरसी पर वोट बैंक की राजनीति कर रहे दल इसकी अनदेखी नहीं कर सकते कि बांग्लादेशी घुसपैठियों पर भारत की यह स्थापित नीति रही है कि गैर-कानूनी ढंग से आए लोगों को देश से बाहर जाना ही होगा। ऐसे लोग शरणार्थी नहीं कहे जा सकते। शरणार्थी की जो परिभाषा संयुक्त राष्ट्र ने की है उसके हिसाब से बांग्लादेश के लोग घुसपैठिये ही कहे जाएँगे। बांग्लादेश से लाखों लोग अवैध रूप से भारत की सीमा में घुस आए हैं, इसे दोनों देशों की सरकारें अच्छी तरह जानती हैं और इसके तमाम प्रमाण भी हैं। राजनीतिक दलों को यह समझने में देर नहीं करनी चाहिए कि भारत सरीखा विशाल आबादी वाला देश अपने संसाधन दूसरे देश से अवैध रूप से आए लोगों को मुहैया करने की स्थिति में नहीं। तहत बांग्लादेश, भारत से अपने करीब एक करोड़ शरणार्थियों को वापस लेने को तैयार हो गया था। इनमें से करीब 80 फीसदी हिंदू थे। इंदिरा गांधी चाहती थीं कि हिंदू-मुस्लिम सभी शरणार्थी लौट जाएँ। सन 1985 में यानी आज से 33 वर्ष पहले जब राजीव गांधी ने असम में विद्रोहियों के साथ समझौता किया था तो एनआरसी को इसी आधार पर रखने का वादा किया था। तमाम वजहों से एनआरसी अब तक नहीं तैयार हो सका। इस बीच दो और पीढ़ियाँ बड़ी हो गईं। क्या अब आप उनको देश से बाहर भेज सकते हैं या उनकी नागरिकता समाप्त कर सकते हैं? भाजपा भी जानती है कि यह संभव नहीं है।

अगर भाजपा का कोई व्यक्ति कहता है कि इसमें कोई राजनीति नहीं है तो उनसे पूछिए कि क्या उन्होंने अमित शाह का भाषण नहीं सुना? उन्हें इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने पूरी पारदर्शिता के साथ 2019 के चुनाव अभियान की शुरुआत कर दी। विकास के दावे अक्सर इसके वादे से कम लुभावने निकलते हैं। केंद्र में दूसरा कार्यकाल हासिल करने के लिए भाजपा राष्ट्रवाद के नाम पर ध्रुवीकरण करेगी। असम में यह मसला तब तक सुलगता रहेगा। भाजपा लाखों लोगों को घुसपैठिया कहती रहेगी। देश में बांग्लाभाषी मुस्लिमों को तब तक इस चिप्पी के साथ जीना होगा।

माना जा रहा है कि 'धर्मनिरपेक्ष' विपक्ष, वाम धड़े के बौद्धिक समर्थन के साथ मजबूरन इनके बचाव में उतरेगा। इससे माहौल यह बनाया जाएगा कि वे मुस्लिमों के समर्थक और राष्ट्र विरोधी हैं। कांग्रेस इस जाल को देख रही है लेकिन उसके पास इसका कोई जवाब नहीं है। अगर 2019 का चुनाव मुस्लिम समर्थक और मुस्लिम विरोधी के खाँचे में बँटा तो भाजपा की जीत तय है।

अमित शाह के लिए असम केवल देश भर में राष्ट्रवाद की भावना भड़काने का जरिया है। शाह और भाजपा अपनी चुनावी राजनीति को दूसरों से बेहतर समझते हैं। पर क्या उनको असम की समझ है? मैं आपको 35 वर्ष पीछे ले चलता हूँ। मैं गुवाहाटी के नंदन होटल के छोटे से कमरे में रुका था। मुझसे मिलने जो चार लोग आए थे वे विनयशील और प्रभावी लोग थे। वे किंकर्तव्यविमूढ़ नजर आ रहे थे। उनके नेता थे के.एस. सुदर्शन, जो उस वक्त राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के बौद्धिक प्रमुख थे। बाद में वह सरसंघचालक बने।

उनमें से दो बाद में आरएसएस में पूर्वोत्तर विशेषज्ञ बने और अब संघ और भाजपा सरकार में अहम पदों पर हैं। वह मुझसे यह जानने आए थे कि महीने की शुरुआत में हुए असम के दंगों में इतनी बड़ी तादाद में बंगाली हिंदू कैसे मारे गए? उनका सवाल था कि असम के लोग मुस्लिम घुसपैठियों और हिंदू शरणार्थियों में भेद क्यों नहीं कर पा रहे? सुदर्शन ने पूछा कि वे खोइराबाड़ी में इतने हिंदुओं को कैसे मार सकते हैं? मैंने उन्हें असम में हुए इस हत्याकांड के पीछे की जातीय और भाषायी जटिलता समझाई। सुदर्शन ने कहा कि किंतु हिंदू तो असुरक्षित है? यह बातचीत सन 1984 में आई मेरी किताब असम: द वैली डिवाइडेड (पृष्ठ 121-122) में दर्ज है। उसके बाद आरएसएस ने असमी विद्रोहियों को नए सिरे से शिक्षित करने का अभियान चलाया। जैसा कि मैं लिख चुका हूँ। गत विधान सभा चुनाव में मिली जीत उसी सफलता का पुरस्कार है। असम में भाजपा में अब आसू और अगप के तमाम पुराने लोग शामिल हैं। प्रदेश के मुख्यमंत्री और उनके सबसे ताकतवर सहयोगी भी उनमें से ही हैं।

परंतु जैसा कि उन्होंने सन 1983 में अपनी युवावस्था में किया था, इस बार भी उन्हें एनआरसी के मामले में आरएसएस/भाजपा की शर्तों पर काम करना मुश्किल होगा: यानी बंगाली मुस्लिमों को निशाना बनाना और हिंदुओं को साथ लेना। भाजपा ने असम को 2019 के लिए अपना प्रमुख हथियार बनाना तय किया है। जैसा कि हमने नोटबंदी से देखा,

एनआरसी के मसौदे में जिन 40 लाख लोगों को असम का नागरिक नहीं माना गया है, उनके खिलाफ फिलहाल कोई कार्रवाई नहीं होने जा रही है। इसे असम के साथ केंद्र सरकार ने भी स्पष्ट किया है और सुप्रीम कोर्ट ने भी। बावजूद इसके सस्ती राजनीति के तहत ऐसा माहौल बनाया जा रहा है जैसे 40 लाख लोगों को निकालने की तैयारी कर ली गई है। यह भी एक दुष्प्रचार है कि 40 लाख लोगों में केवल मुसलमान हैं।

सच यह है कि इनमें हिंदू भी हैं। इन सभी को अपनी नागरिकता साबित करने का अवसर दिया जाएगा। एनआरसी में पूर्व राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के परिजनों का नाम भी नहीं है। चूँकि कुछ पूर्व सैनिकों, पुलिसकर्मियों और यहाँ तक कि एनआरसी तैयार करने की प्रक्रिया में शामिल रहे लोगों का भी नाम एनआरसी के मसौदे में नहीं है इसलिए ऐसा लगता है कि कहीं कोई चूक भी हुई है। जो भी हो, राजनीतिक दलों को हाय-तौबा मचाने की जरूरत बिल्कुल भी नहीं है।

लंबा है असम की अस्मिता का संघर्ष (नई दुनिया)

असम में राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) का अंतिम मसौदा सामने आने के बाद बांग्लादेशी घुसपैठियों की समस्या एक बार फिर सुर्खियों में है। यह तथ्य किसी से छिपा नहीं कि असम के मूल निवासी दशकों से इस समस्या से जूझ रहे हैं। मैं भारतीय पुलिस सेवा में रहा हूं और अपने इस सेवाकाल के दौरान मुझे असम के लोगों द्वारा घुसपैठियों के खिलाफ संघर्ष को करीब से देखने का मौका भी मिला। मुझे याद है कि मार्च 1980 में मैं कमांडेंट के तौर पर एसएएफ की 24वीं बटालियन को मय हथियार, गाड़ियाँ व तमाम साजोसामान लेकर स्पेशल ट्रेन से गुवाहाटी पहुँचा था। 27 नवंबर, 1979 से पूरे असम में जबर्दस्त आंदोलन चल रहा था और जगह-जगह धरना-प्रदर्शन हो रहे थे। ऑल असम स्टूडेंट यूनियन तथा ऑल असम गण संग्राम परिषद द्वारा ब्रह्मपुत्र घाटी में चुनाव प्रक्रिया को ठप्प कर दिया गया था। केंद्र में बैठी तत्कालीन इंदिरा गांधी सरकार की तंद्रा तब टूटी, जब आंदोलनकारियों ने गुवाहाटी की नारंगी रिफायनरी से बिहार स्थित बरौनी रिफायनरी को आने वाली पेट्रोलियम की पाइप लाइन को अवरुद्ध कर दिया। आंदोलनकारियों ने हजारों की संख्या में नारंगी रिफायनरी पहुँचकर उस पर कब्जा कर लिया था। इंदिरा गांधी की योजना इन आंदोलनकारियों को गिरफ्तार करते हुए पूरे गुवाहाटी तथा ब्रह्मपुत्र घाटी में कब्जा कर पेट्रोलियम की आपूर्ति को पुनः बहाल करना थी। वहाँ पहुँची मेरी बटालियन को नारंगी के सभी आंदोलनकारियों को गिरफ्तार कर अस्थायी जेल पहुँचाने का काम दिया गया था। अन्य 8 बटालियनों को शहर में कर्फ्यू लगाने का काम दिया गया।

निर्धारित रात्रि को सबने अपनी-अपनी पोजिशन ली और तड़के नारंगी रिफायनरी में मेरी बटालियन ने भारी कठिनाइयों के बावजूद हजारों आंदोलनकारियों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। अन्य सभी बटालियनों ने शहर के हर चौराहे पर कर्फ्यू लागू कराना प्रारंभ किया। लेकिन दिन चढ़ते-चढ़ते हजारों की तादाद में वहाँ की जनता सड़क पर आ गई। नए आंदोलनकारी पुनः नारंगी रिफायनरी जा पहुँचे तथा इंदिरा गांधी की पूरी योजना विफल कर दी। यह आंदोलन पूरी ब्रह्मपुत्र घाटी में फैल चुका था, जो असमियों द्वारा अपनी पहचान, अपनी अस्मिता के संरक्षण की खातिर किया जा रहा था। पूर्वी पाकिस्तान (जो आगे चलकर बांग्लादेश हुआ) से आए विस्थापितों के कारण आबादी की संरचना बदल रही थी। वर्ष 1900 के आसपास पूर्वी बंगाल (जो तब भारत का ही अंग था) से असम की ओर पलायन आरंभ हो गया था। असम में आबादी कम और भूमि अधिक थी तथा वहाँ के जमींदारों को सस्ते बंगाली श्रमिकों की आवश्यकता थी। देश की आजादी के बाद पूर्वी पाकिस्तान से गरीब बंगालियों (अधिकांश मुस्लिम) का असम आना जारी रहा। असम की बराक घाटी मुस्लिम-बहुल शाह और मोदी बड़े जोखिम उठा सकते हैं। बहरहाल, राजनीतिक लाभ के लिए आर्थिक नुकसान झेलना एक बात है और असम में पुरानी आग भड़काना दूसरी बात। संभव है कि शांति बरकरार रहे लेकिन अगर ऐसा नहीं हुआ तो मामला फिर हिंदू बनाम मुस्लिम, असमी बनाम बंगाली, हिंदू या मुस्लिम, हिंदू बनाम हिंदू और मुस्लिम बनाम मुस्लिम का बन जाएगा।

असम के राजनीतिक माहौल में सोनोवाल का संतुलन

(बिजनेस स्टैंडर्ड)

असम में हालात बहुत अधिक खराब हो सकते थे। परंतु मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल को यह श्रेय देना होगा कि राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) के जरिये 40 लाख लोगों की नागरिकता पर प्रश्नचिह्न लगने के बाद उन्होंने राजनीति को नियंत्रित ही नहीं रखा बल्कि यह आश्वस्त भी देते रहे कि किसी को कोई नुकसान नहीं होगा। एनआरसी ने इन लोगों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इनमें वे परिवार भी शामिल हैं जो कई दशकों से असम में रह रहे हैं।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सन 1946-47 के बाद पहली बार एनआरसी में देश को विभाजित करने की क्षमता दिख रही है। यह बहुत बड़ी तादाद में लोगों को नागरिकता से वंचित कर सकती है। दुनिया के सबसे बड़े राजनीतिक दल के अध्यक्ष का कहना है कि जो लोग अपने भारतीय होने का दस्तावेजी सबूत नहीं दिखा सकते, वे सभी घुसपैठिये माने जाएँगे और उनसे उसी तरीके से निपटा जाएगा। जो परिवार खुद को भारतीय मानते हैं और असम में रहते हुए भारत के विकास में अपना यथासंभव योगदान देते रहे हैं उन्हें अचानक यह लग रहा है कि उनके पैरों के नीचे से किसी ने जमीन खींच ली है। अगर सोनोवाल चाहते तो वह इस प्रकरण का राजनीतिक लाभ उठा सकते थे। उनके पास सर्वोच्च न्यायालय का आदेश भी है। वह यह दलील दे सकते थे कि गैर भारतीयों में से भारतीयों को छाँटने का काम उन्हें नहीं करना चाहिए। सोनोवाल ने राजनीति में आते ही पहचान की राजनीति का सबक सीख लिया था।

सन 1992 में वह ऑल असम स्टूडेंट्स यूनियन (आसू) के अध्यक्ष बने और सन 1999 तक उस पद पर रहे। इसके बाद उन्होंने सन 2001 में असम गण परिषद का रुख किया और उसी वर्ष विधान सभा सदस्य बने। आसू और असम गण परिषद 'धरती पुत्र यानी असमिया धरती की संतान' के मॉडल पर काम करते थे। सोनोवाल ने असमिया पहचान का विस्तार किया और जनजातीय छात्र समूहों को इसमें शामिल किया ताकि असम के स्थानीय जनजातीय समूह इसका हिस्सा बन सकें। वह कांग्रेस का मुकाबला करना चाहते थे। कांग्रेस की दलील थी कि जब तक अली (मुस्लिम), कुली (चाय बागान मजदूर) और बंगाली (बंगाली हिंदू जो अक्सर क्लर्क या छोटे कारोबारी होते हैं और जो बांग्लादेश के गठन के वक्त असम आए) कांग्रेस के साथ हैं तब तक पार्टी कभी असम में हार नहीं सकती।

असम गण परिषद एक डूबता जहाज बन चुकी थी और नेतृत्व के बँटे होने के चलते सोनोवाल ने भविष्य में पेशेवर राजनीतिज्ञ की तरह कदम उठाने की सोची। सन 2011 में वह भाजपा में शामिल हो गए। उनके कई सहयोगियों ने भी ऐसा ही किया। 2012 में उन्हें भाजपा की असम इकाई का अध्यक्ष बनाया गया जो अपने-आपमें काफी तेज प्रगति थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और भाजपा के वर्षों के प्रयास के बावजूद वहाँ उनकी कोई खास जगह नहीं बन सकी थी। उस लिहाज से देखें तो वह अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी की नहीं बल्कि नरेंद्र मोदी-अमित शाह की भाजपा का उपज थे।

हो गई और ब्रह्मपुत्र की निचली घाटी में नई बसाहटें होना शुरू हो गईं। वर्ष 1951 से 2011 के बीच देश की आबादी 235 फीसदी बढ़ी, जबकि इसी दौरान असम की आबादी में 288 फीसदी इजाफा हुआ।

स्वतंत्रता के बाद असम में 1956 में गोलपाड़ा जिले के विभाजन को लेकर तथा 1972 में भाषा को लेकर हिंसक घटनाएँ हुईं। परंतु अस्सी के दशक का प्रारंभिक आंदोलन बहुत व्यापक था, जिसने पूरे देश का ध्यान पूर्वोत्तर राज्यों की ओर आकृष्ट किया। इसी दौर में मेरी बटालियन को गुवाहाटी से हटाकर नलबाड़ी, बरपेटा, कोकराझार, धुबरी और बोंगइगांव आदि के ग्रामीण इलाकों में तैनात किया। वहाँ रहते हुए मैंने इस आंदोलन की तीव्रता को महसूस किया। इस आंदोलन को समाप्त करने के लिए अनेक समझौता वार्ताएं हुईं और आखिरकार 15 अगस्त, 1985 को राजीव गांधी के प्रयासों से असम समझौता हुआ, जिससे आंदोलन पर विराम लगा।

हाल ही में असम में एनआरसी को लेकर उठे विवाद के बाद भाजपा अध्यक्ष व राज्यसभा सांसद अमित शाह ने संसद के इस उच्च सदन में कहा कि 1985 के असम समझौते की आत्मा राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) है। वास्तव में इस समझौते में कहा गया था कि 1961 से पहले आए विस्थापितों को पूर्ण नागरिकता दी जाएगी। 1961 से 1971 के बीच आए लोगों को 10 वर्ष तक मताधिकार से वंचित कर, उसके बाद नागरिकता दी जाएगी। मुख्य बिंदु 1971 के बाद बांग्लादेश से आए लोगों को वापस किया जाना था। हकीकत यह है कि इस संबंध में कभी ठोस कार्रवाई नहीं की गई। यह समझौता जरूर हो गया, किंतु असम इसके बाद भी शांत नहीं हुआ।

विडंबना यह है कि भारत में राजनीतिक दल यहाँ तक कि राष्ट्रीय समस्याओं को भी दलगत हित के हिसाब से देखते हैं। बांग्लादेश से पलायन कर यहाँ आने वाले लोगों का रुझान हमेशा से कांग्रेस की ओर रहा है। पिछले दिनों बदरुद्दीन अजमल की एआईयूडीएफ पार्टी भी उत्पन्न् हुई है। इनकी वजह से हिंदू वोटों का भी ध्रुवीकरण हुआ है और इसी का नतीजा है कि पूर्वोत्तर राज्यों में हुए पिछले कुछ चुनावों में भाजपा को जबर्दस्त सफलता हासिल हुई है। वर्तमान में सुप्रीम कोर्ट के आदेश के पालन में भाजपा की केंद्र तथा असम सरकार ने एनआरसी का अंतिम मसौदा तैयार किया। इसी मसौदे के आधार पर इस राज्य में रह रहे 40 लाख लोगों की नागरिकता पर प्रश्नचिह्न लग गया है। हालाँकि एनआरसी के इस अंतिम मसौदे पर लोगों से आपत्तियाँ भी आमंत्रित की गई हैं।

एनआरसी के इस अंतिम मसौदे के प्रकाशन से पूरे देश की राजनीति गरमा गई है। पड़ोसी राज्य पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री और तृणमूल कांग्रेस की सुप्रीमो ममता बनर्जी ने अपने वोट बैंक को सुरक्षित रखने के लिए इसे भाजपा की साजिश करार देते हुए देश में गृह युद्ध, रक्तपात होने की चेतावनी भी दी है। हालाँकि केंद्र सरकार ने आश्वस्त किया है कि इस रजिस्टर के आधार पर फिलहाल कोई कार्रवाई नहीं होगी। वैसे भी इतनी बड़ी संख्या में लोगों को निर्वासित किया जाना नामुमकिन-सा लगता है। पूरे उपमहाद्वीप में बांग्लादेश आज हमारा सबसे करीबी साथी है और उसने इस पूरे प्रकरण को भारत का अंदरूनी मामला बताते हुए दूरी बना ली है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय भी इस पूरे मामले के मानवीय पक्ष पर दृष्टि रखे हुए है। लगता यही है कि असम को ऐतिहासिक झंझावात के निशानों के साथ ही रहना होगा। 2019 के लोकसभा चुनावों के परिप्रेक्ष्य में असम का ध्रुवीकरण राष्ट्रीय स्तर तक फैल सकता है। ममता बनर्जी इसके माध्यम से जहाँ एक ओर विपक्षी एकता को मजबूत करने की कोशिश कर रही हैं, वहीं वे कांग्रेस को हल्का करने का कोई मौका नहीं छोड़तीं। असम का एनआरसी आते ही वे नई दिल्ली पहुँचकर राष्ट्रीय विपक्षी राजनीति के मंच पर केंद्रीय स्थान पाने में जुट गईं। तमाम दलों को लगता है कि अपने वोट बैंक के संरक्षण व संवर्धन के लिए जाति-धर्म के मुद्दे को हवा देनी होगी। असम के एनआरसी के जरिये उन्हें यह मौका मिल गया है।

बाकी का किस्सा तो सब जानते हैं। सोनोवाल ने अवैध प्रवासी (पंचाट द्वारा निर्धारण) अधिनियम को चुनौती दी। इसकी मदद से असम विद्रोह से प्रभावित अल्पसंख्यकों को बिलावजह शोषण से संरक्षण प्रदान किया गया था। इस कानून के कारण अवैध प्रवासियों को वापस भेजना भी मुश्किल हो गया था। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कानून ने व्यक्ति की नागरिकता के निर्धारण का दायित्व आरोप लगाने वाले पर डाल दिया था, बजाय कि आरोपित के। यह शेष भारत में लागू कानून विदेशी अधिनियम के प्रावधानों से अलग था।

सन 2005 में सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध प्रवासी अधिनियम को असंवैधानिक घोषित कर दिया। सोनोवाल 2014 में लोकसभा में चुने जाने के पहले तक असम भाजपा अध्यक्ष बने रहे। उन्हें मोदी सरकार में राज्य मंत्री बनाया गया। वर्ष 2015 में विधान सभा चुनाव से एक साल पहले एक बार फिर उन्हें असम भाजपा का अध्यक्ष बना दिया गया। हालाँकि उन्हें थोड़ा झटका लगा क्योंकि भाजपा नेतृत्व ने कांग्रेस से हिमंत विश्व शर्मा को पार्टी में लाने का निर्णय किया। लगभग उसी समय एक अमेरिकी कंपनी लुई बर्गर ने अमेरिका की एक अदालत में स्वीकार किया कि उसने दुनिया भर में प्रोजेक्ट हासिल करने के लिए राजनेताओं और अधिकारियों को रिश्वत दी है।

कंपनी ने कहा कि उसने 2010 में जल विकास परियोजनाओं के लिए गोवा और असम में भी अधिकारियों को रिश्वत दी। उस वक्त शर्मा संबंधित मंत्रालय के मंत्री थे। इस विषय पर सोनोवाल और अरुणाचल प्रदेश के नेता किरण रिजिजू (केंद्र में मंत्री)ने संवाददाताओं को संबोधित किया। शारदा घोटाले में शर्मा की भूमिका को लेकर सवाल उठाने के प्रयास भी किए गए। पश्चिम बंगाल की यह पोंजी स्कीम 2013 में नाकाम हो गई थी और विश्वशर्मा पर आरोप था कि उन्होंने इसके संस्थापकों से रिश्वत ली है।

इन बातों का कोई असर नहीं हुआ और भाजपा के सबसे प्रभावशाली महासचिव राम माधव अडिग रहे। पार्टी ने जनवरी 2016 में उन्हें मुख्यमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया। यह परंपरा से अलग था। चुनाव में पार्टी को 45 प्रतिशत वोट मिले और सोनोवाल की पुरानी पार्टी असम गण परिषद के साथ मिलकर भाजपा ने सरकार बनाई। अच्छी बात है कि एनआरसी के मसले से उपजी चिंता के बीच भी दोनों नेताओं के बीच की प्रतिद्वंद्विता का असर देखने को नहीं मिला है। परंतु अगर सोनोवाल असुरक्षित महसूस करते हैं या भाजपा उनके विकल्प पर काम करती है तो ऐसा हो सकता है। यह अजीब लग सकता है लेकिन राजनीति में ऐसा ही होता है।

Committed To Excellence

GS World टीम...

सारांश

- एक लंबी और जटिल प्रक्रिया से गुजरते हुए उच्चतम न्यायालय की देख-रेख में असम के लिए राष्ट्रीय नागरिक पंजी के अद्यतन का काम पूरा हो गया है और सोमवार को इसकी अंतिम मसौदा सूची प्रकाशित की गई। इसे असम के लिए ऐतिहासिक दिन बताया जा रहा है।
- केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह के निर्देश पर असम सरकार ने पुलिस को स्पष्ट निर्देश दिया है कि मसौदा नागरिक पंजी के आधार पर न तो किसी के खिलाफ कार्रवाई की जाए और न ही उनके नाम फॉरेनर्स ट्रिब्यूनल को भेजे जाएँ। फिलहाल किसी को डिटेंशन कैंप में भी नहीं भेजा जाएगा। असम सरकार विभिन्न माध्यमों से लोगों को यह संदेश दे रही है कि यह अंतिम सूची नहीं, सिर्फ मसौदा है।
- जिन भारतीयों के नाम इसमें शामिल नहीं हैं, उनमें बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल से आकर असम में बसने वालों की संख्या ज्यादा है। 25 मार्च, 1971 से पहले आए लोगों से असम में आकर बसने का प्रमाण मांगा जा रहा है, जबकि बाहरी राज्यों से आकर बसे ज्यादातर लोग यहाँ आने के साथ ही खेती-किसानी या मजदूरी में जुट गए थे। तब न तो राशन कार्ड का प्रावधान था और न बैंक में खातों का ऐसा चलन।
- इनमें से अधिकांश के नाम 25 मार्च, 1971 से पहले की मतदाता सूची में भी नहीं हैं। हैं। इस अवधि के बाद अन्य राज्यों से आए लोगों के लिए वंशवृक्ष का विकल्प दिया गया, ताकि साबित हो सके कि उनके पूर्वज भारत के किसी राज्य में निवास करते थे।
- भारत के अन्य प्रांतों से आए लोगों ने अपने मूल प्रदेश से जुड़े दस्तावेज तो जमा कर दिए, जिनकी सत्यता की जाँच के लिए उन्हें संबंधित राज्यों को भेजा गया, मगर उन दस्तावेजों में अधिकांश की सत्यता जाँचकर वापस भेजने में संबंधित राज्य सरकारों ने उत्सुकता नहीं दिखाई। नतीजतन, इस तरह के तमाम भारतीयों के नाम सूची में शामिल होने से रह गए।
- प्रकाशित सूची पर उल्फा ने भी संतोष जताया है, जबकि उल्फा भारतीय शासन प्रणाली को औपनिवेशिक व्यवस्था मानता है।
- बांग्लादेशी घुसपैठियों के असम का नागरिक बनने के सिलसिले के कारण ही असम छात्र संगठन ने 1980 में घुसपैठियों को बाहर निकालने का आंदोलन छेड़ा गया, फिर भी बांग्लादेश से अवैध तरीके से आने वाले लोगों की आमद थमी नहीं। एक आकलन के अनुसार असम में 1971 से 2011 के बीच मुस्लिम जनसंख्या 24.56 प्रतिशत से बढ़कर 34.22 प्रतिशत हो गई।
- 2011 की जनगणना में देश की आबादी 1210854977 थी जिसमें 'अन्य' की संख्या 7937734 और 'उल्लेख नही' की संख्या 2867303 थी। इस तरह कुल 10805037 लोगों ने जनगणना में भरे जाने वाले पंथों वाले कॉलम से अपने को अलग रखा।
- जिन लोगों ने अपने को 'अन्य' में लिखवाया उसमें जनजातियों/आदिवासियों की संख्या 7095408 है। 'अन्य' में मात्र एक राज्य झारखंड की हिस्सेदारी 4235786 यानी 53.36 प्रतिशत है। अगर देशव्यापी स्तर पर 'अन्य' में 89.38 प्रतिशत हिससेदारी आदिवासियों की है तो अकेले झारखंड के कुल 'अन्य' में 94.73 प्रतिशत हिस्सेदारी आदिवासियों की है।
- 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन से अंग्रेज भयभीत हो गए थे। पूरा देश उन्हें विदेशी मान कर उनके खिलाफ संगठित होकर खड़ा होता दिखाई पड़ा। इस पर अंग्रेजो ने फूट डालो और राज करो नीति अपनाते हुए कई तरह के षड्यंत्र रचे। इसी में से एक था आदिवासी-गैर आदिवासियों के बीच विभेद।
- झारखंड के कुछ आदिवासी जनगणना के समय अपना धर्म/पंथ 'आदि' या 'सरना' लिखवाते हैं। यही काम पूर्वोत्तर के आदिवासी भी करते हैं। चूँकि 'आदि' या 'सरना' करके कोई कॉलम होता नहीं अत: जनगणना करने वाले कर्मचारी उनका नाम 'अन्य' के खाते में डाल देते हैं।
- 1971 में अरुणाचल की कुल आबादी 467511 थी जिसमें ईसाई जनसंख्या 0.78 प्रतिशत और 'अन्य' की 63.45 प्रतिशत थी। 2011 की जनगणना के तहत अरुणाचल की आबादी 1383727 है जिसमें 'अन्य' की आबादी कुल आबादी का 26.20 प्रतिशत है। यहाँ 'अन्य' 63.45 प्रतिशत से घटकर 26.20 पर आ गया परंतु ईसाई 0.78 प्रतिशत से बढ़कर 30.26 प्रतिशत हो गया।
- नगालैंड तो ईसाई बहुल बहुत पहले ही हो गया था। 1951 में यहाँ की आबादी में ईसाई 46.04 प्रतिशत और अन्य 49.50 प्रतिशत थे। 2011 की जनगणना के हिसाब से नगालैंड की आबादी में 'अन्य' की जनसंख्या मात्र 0.16 प्रतिशत है पर ईसाई आबादी 87.92 प्रतिशत हो गई।
- 2011 की जनगणना के तहत झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा छतीसगढ़ और मध्य प्रदेश -इन पाँच राज्यों में ही 'अन्य' की संख्या करीब 67 लाख है। इसमें 63 लाख आदिवासी हैं। झारखड के 'अन्य' में विभिन्न जनजातियों की संख्या देखें तो सबसे ज्यादा उराँव मिलेंगे, फिर संथाल, मुंडा आदि। इन्होंने खुद को हिंदू के बजाय 'सरना' के रूप में दर्ज कराया है। झारखंड में कुल अनुसूचित जनजातियों की संख्या 86 लाख है जिसमें संथाल, उराँव और मुंडा 76.68 प्रतिशत हैं।
- 1987 में बिशप निर्मल मिंज के नेतृत्व में छतीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम के आदिवासी प्रभाव वाले जिलों को काटकर एक अलग प्रांत उदयांचल की मांग की गई थी।
- 2005 में केंद्र, राज्य सरकार और आसू के बीच असमिया नागरिकों का कानूनी दस्तावेजीकरण करने के मुद्दे पर सहमति बनी और अदालत के हस्तक्षेप से इसे एक व्यवस्थित रूप दिया गया। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर ही एनआरसी, 1951 को अपडेट किया गया है।
- असम का प्रतिस्पर्धी जातीय राष्ट्रवाद, जिसने सशस्त्र विद्रोहियों को जन्म दिया, उसके पीछे हमेशा 'जनसांख्यिकीय परिवर्तन' और देशज मातृभूमि पर बाहरी लोगों के 'कब्जे' कर लेने के भय को कारण माना गया। पिछले चार दशकों में अक्सर उन्होंने 1983 के नेल्ली नरसंहार से लेकर 2012 के कोकराझार हत्याओं तक बंगाली मुसलमानों के खिलाफ हिंसक आक्रमण को अंजाम दिया है।
- दशकों से भारतीय राज्य ने पड़ोसी देशों से उत्पीड़न के कारण भागकर आए हिंदू 'शरणार्थियों' और मुस्लिम 'घुसपैठियों' में फर्क किया है, जिससे राजनीति प्रभावित हुई है। इस अनौपचारिक भेदभाव को भारतीय जनता पार्टी के नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2016 में संहिताबद्ध किया गया था, जिसमें बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान से आने वाले गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए नागरिकता की राह आसान बनाई गई है।

- लेकिन असम ने इस विधेयक के खिलाफ विरोध देखा है, क्योंकि यह 1985 के असम समझौते की शर्तों को कमजोर करता है। असम के जातीय (मूल) लोग बंगाली हिंदू और मुसलमान, दोनों को खतरे के रूप में देखते हैं, क्योंकि उनकी संयुक्त आबादी राज्य की आधी आबादी के करीब है।
- यूपीए शासन के दौरान तत्कालीन केंद्रीय गृह राज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने 14 जुलाई, 2004 को संसद में वक्तव्य दिया था कि भारत में 1 करोड़ 20 लाख अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिए रह रहे हैं। इस सूची में पश्चिम बंगाल 57 लाख बांग्लादेशी घुसपैठियों के साथ शीर्ष पर था। पिछले दिनों एनडीए सरकार में गृह राज्यमंत्री किरन रिजिजु ने बांग्लादेशी घुसपैठियों की तादाद 2 करोड़ बताई थी।
- राजनीतिक नजरिये से देखें तो बांग्लादेशी घुसपैठिए पूर्वोत्तर के अनेक निर्वाचन क्षेत्रों (असम के तकरीबन 32 फीसदी) में निर्णायक स्थिति में हैं।
- पिछले दिसंबर को प्रकाशित हुए इसके पहले मसौदे में 1.9 करोड़ नाम थे, जिसकी वजह से कुछ वर्गों में खासी हलचल हुई थी।
- कई 'विदेशी नागरिक शिनाख्त ट्रिब्यूनल' हैं जो किसी न किसी रूप में पिछले 35 सालों से काम कर रहे हैं और हर साल लगभग 150 बांग्लादेशियों की शिनाख्त बतौर घुसपैठिया 'सिद्ध' कर रहे हैं।
- बांग्लाभाषी हिंदू-बहुल बराक घाटी और वृहद ब्रह्मपुत्र घाटी (जहाँ हिंदू, मुस्लिम और अन्य कई गुट बसते हैं और अधिकतर असमिया भाषी हैं) के बाशिंदों के बीच लगातार चौड़ी होती खाई पैदा हो गई है।
- देश के विभाजन के पहले 1931 में, तत्कालीन जनगणना अधीक्षक सीएस मुल्लन ने लिखा था कि पिछले 25 वर्षों से जमीन के भूखे बंगाली, जिनमें अधिकांश पूर्वी बंगाल के मुसलमान हैं, जिस तरह असम चले आ रहे हैं उससे प्रदेश की संस्कृति एवं समाज का तानाबाना ध्वस्त हो जाएगा। 1947 के बाद बड़ी संख्या में पूर्वी पाकिस्तान से हिंदुओं का पलायन हुआ। उन्होंने पश्चिम बंगाल, असम एवं त्रिपुरा में शरण ली। कालांतर में जब पूर्वी पाकिस्तान में पाकिस्तानी सेना का दमनचक्र चला तब भी वहाँ के तमाम मुसलमान भारत आ गए।
- 1971 में बांग्लादेश बनने के बाद आशा की जाती थी कि नए शासन में सांप्रदायिक सौहार्द होगा और जनता की आर्थिक समस्याओं पर समुचित ध्यान दिया जाएगा, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। 1975 में शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या हो गई और जनरल इरशाद ने इस्लाम को राष्ट्रीय धर्म घोषित कर दिया। ऐसा होने के साथ ही बांग्लादेश के अल्पसंख्यकों पर हमले शुरू हो गए। हमलों का शिकार मुख्यत: हिंदू, बौद्ध, ईसाई और जनजातियाँ बनीं। फलस्वरूप इन लोगों ने बड़ी संख्या में भारत में शरण ली। बांग्लादेश में 2001 में चुनाव के बाद भी अल्पसंख्यकों पर हमले हुए, क्योंकि उनके बारे में यह संदेह किया गया कि उन्होंने अवामी लीग को वोट दिया होगा जिसकी हार हो गई थी। एक अंग्रेज पत्रकार जॉन विडल ने इन हमलों का दर्दनाक चित्रण किया है। इसके बाद मुख्यत: आर्थिक कारणों से बांग्लादेशी भारत आने लगे।
- बांग्लादेश इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, ढाका के अनुसार 1951 से 1961 के बीच करीब 35 लाख लोग पूर्वी पाकिस्तान से 'गायब' हो गए। इस संस्था के मुताबिक 1961 से 1974 के बीच भी करीब 15 लाख लोग संभवत: भारत जा बसे। बांग्लादेश चुनाव आयोग के रिकॉर्ड में भी कुछ दिलचस्प तथ्य हैं। 1991 में वहाँ 6,21,81,745 मतदाता थे, परंतु जब 1995 में सत्यापन किया गया तो आयोग को 61,65,567 नाम मतदाता सूची से काटने पड़े, क्योंकि उनका कोई पता ही नहीं चला। 1996 में पुन: आयोग को 1,20,000 बांग्लादेशी नागरिकों का नाम मतदाता सूची से हटाना पड़ा।
- सबसे ज्यादा बांग्लादेशी असम और पश्चिम बंगाल आए। इसके अलावा वे बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मुंबई और राजस्थान आदि में भी काफी संख्या में फैल गए।
- 1998 में असम के राज्यपाल जनरल एसके सिन्हा ने राष्ट्रपति को भेजे पत्र में लिखा था कि बांग्लादेश से जिस तरह आबादी भारत में घुसती चली आ रही है उससे असम के मूल निवासी जल्द ही अल्पसंख्यक हो जाएँगे, राजनीति पर उनका नियंत्रण कमजोर हो जाएगा और उनके समक्ष रोजगार का संकट पैदा होने के साथ ही उनकी सांस्कृतिक पहचान भी खतरे में पड़ जाएगी।
- 15 अगस्त 1985 को राजीव गांधी ने असम समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसके अंतर्गत असम में भारत की नागरिकता के लिए 24 मार्च, 1971 कटऑफ तारीख तय की गई, परंतु कोई कार्रवाई नहीं हुई। 2005 में मनमोहन सिंह सरकार ने घोषणा की कि नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजंस यानी एनआरसी को अपडेट किया जाएगा, परंतु पूरे दस साल तक असम की तरुण गोगोई सरकार इस पर चुप्पी साधे बैठी रही।
- 2015 में सुप्रीम कोर्ट ने एनआरसी को अपडेट करने के आदेश दिए। 2016 में असम में भाजपा सरकार बनने के बाद इस पर कार्रवाई शुरू हुई और बीती 30 जुलाई को एनआरसी का अंतिम मसौदा जारी हुआ। इसके अनुसार नागरिकता के लिए 3.29 करोड़ प्रार्थना पत्र प्राप्त हुए, जिनमें से 2.89 करोड़ को नागरिकता प्रदान की गई, शेष 40 लाख लोगों के नाम एनआरसी में दर्ज नहीं किए गए। इनके पास अभी मौका है। गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने कहा है कि इन 40 लाख लोगों के विरुद्ध अभी कोई अनुशासनिक कार्रवाई नहीं की जाएगी।
- गौहाटी उच्च न्यायालय ने स्थानीय लोगों की उस मांग पर मुहर लगा दी है कि ग्राम पंचायत से मिले प्रमाणपत्रों को नागरिकता का प्रमाण नहीं माना जाएगा। सबसे बड़ी अदालत ने उच्च न्यायालय के आदेश पर मुहर तो नहीं लगाई और उच्च न्यायालय से कहा कि वह मानक तय करके बताए कि पंचायतों के किन प्रमाणपत्रों को मान्यता दी जाएगी। इसी भ्रम में सर्वोच्च न्यायालय ने एनआरसी की तैयारी को गति प्रदान की।
- नागरिकता निर्धारण के वास्ते एनआरसी के लिए 25 मार्च, 1971 को कट ऑफ वर्ष माना जाएगा। इसका अर्थ यह था कि जो लोग उस तारीख से पहले भारत आ गए थे उन्हें भारतीय नागरिक माना जाएगा। यह बात इंदिरा गांधी और शेख मुजीबुर्रहमान के समझौते के अनुरूप थी जिसके तहत बांग्लादेश, भारत से अपने करीब एक करोड़ शरणार्थियों को वापस लेने को तैयार हो गया था। इनमें से करीब 80 फीसदी हिंदू थे। इंदिरा गांधी चाहती थीं कि हिंदू-मुस्लिम सभी शरणार्थी लौट जाएँ।

नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजनशिप (एनआरसी)

- नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजनशिप (एनआरसी) के मुताबिक करीब 3.29 करोड़ लोगों ने आवेदन दिया था, जिनमें से 2.89 करोड़ लोगों के नागरिकता प्रमाण दस्तावेज वैध पाए गए। यानी करीब 40 लाख लोग इसमें शामिल नहीं हो सके हैं।
- जिन भारतीय नागरिकों के नाम अंतिम मसौदा सूची में नहीं हैं, उन्हें अपनी नागरिकता साबित करने का पर्याप्त मौका दिया जाएगा। इसके लिए दावा और आपत्ति का प्रावधान रखा गया है। एनआरसी में यह आश्वासन दिया गया है कि जो लोग वैध नागरिक नहीं पाए जाते हैं, उन्हें भी निर्वासित नहीं किया जाएगा।
- पिछले दिसंबर को प्रकाशित हुए इसके पहले मसौदे में 1.9 करोड़ नाम थे, जिसकी वजह से कुछ वर्गों में खासी हलचल हुई थी।
- वर्ष 1985 में कांग्रेस-शासित केंद्र सरकार, असम सरकार, ऑल असम स्टूडेंट यूनियन और ऑल असम गण संग्राम परिषद के मध्य ऐतिहासिक असम समझौते इसी उद्देश्य से किया गया था कि अवैध नागरिकों की पहचान कर उन्हें वापस भेजा जाए।
- वर्ष 2000 में किए गए एक आकलन के मुताबिक भारत में रहने वाले अवैध बांग्लादेशी अप्रवासियों की तादाद 1.5 करोड़ पाई गई थी और कहा गया था कि हर साल तकरीबन 3 लाख बांग्लादेशी यहाँ घुसपैठ कर रहे हैं। भारत में कुल कितने बांग्लादेशी आए, इसके बारे में आधिकारिक आँकड़े माधव गोडबोले ने पेश किए थे, जो सीमा प्रबंधन पर गठित टास्क फोर्स के प्रमुख थे। गोडबोले ने अपनी रिपोर्ट में इस पर खेद जताया कि किसी भी सरकार ने इससे निपटने का गंभीर प्रयास नहीं किया।
- 1999 में सुप्रीम कोर्ट ने भी बांग्लादेश से पूर्वोत्तर प्रदेशों में हो रही घुसपैठ पर चिंता व्यक्त करते हुए केंद्र सरकार से इस घुसपैठ को ईमानदारी से रोकने की अपेक्षा व्यक्त की। तब उसने यह भी कहा था कि यह घुसपैठ देश की जनसांख्यिकी के लिए खतरा है।
- 2005 में भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बड़ी संख्या में बांग्लादेशियों की घुसपैठ के कारण असम 'वाह्य आक्रमण एवं आंतरिक अशांति' से ग्रस्त है। उसने भारत सरकार को निर्देश दिया कि वह संविधान के अनुच्छेद 355 के तहत इससे निपटने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए। इसके बाद 2008 में एक संसदीय पैनल ने कहा कि देश में बांग्लादेशी घुसपैठियों की बड़ी संख्या में मौजूदगी आंतरिक सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा है।
- आजादी के पहले 1901 में असम में मुस्लिम जनसंख्या 12.40 प्रतिशत थी जो 1941 में 25.72 प्रतिशत हो गई। एक तरह से 40 वर्ष में मुस्लिम जनसंख्या का प्रतिशत 12 से 25 प्रतिशत हो गया।
- 1985 के असम समझौते की आत्मा राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) है। वास्तव में इस समझौते में कहा गया था कि 1961 से पहले आए विस्थापितों को पूर्ण नागरिकता दी जाएगी। 1961 से 1971 के बीच आए लोगों को 10 वर्ष तक मताधिकार से वंचित कर उसके बाद नागरिकता दी जाएगी। मुख्य बिंदु 1971 के बाद बांग्लादेश से आए लोगों को वापस किया जाना था।

* * *

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न (प्रारंभिक परीक्षा)

1. असम के लिए राष्ट्रीय नागरिक पंजी को तैयार करने में आधार वर्ष कौन-सा है?

(a) 1951 (b) 1971
(c) 1990 (d) 2003

(उत्तर-B)

2. 'असम-समझौते' पर हस्ताक्षर किस वर्ष किए गए थे?

(a) 1980 (b) 1985
(c) 1989 (d) 1990

(उत्तर-B)

3. भारत के लिए राष्ट्रीय नागरिक पंजी किस वर्ष बनाई गई थी?

(a) 2018 (b) 1951
(c) 1971 (d) 1985

(उत्तर-B)

4. हाल ही में असम के लिए प्रकाशित राष्ट्रीय नागरिक पंजी के अंतिम मसौदे के संबंध में इसके प्रभावों पर चर्चा करें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन-सा दक्षिण-एशियाई देश जनसंख्या घनत्व में ऊपर है?

(a) भारत (b) नेपाल
(c) पाकिस्तान (d) श्रीलंका

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2009, उत्तर-A)

2. सरकार की दो समांतर चलाई जा रही योजनाओं यथा 'आधार कार्ड' और 'राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर' (एन.पी.आर.), एक स्वैच्छिक और दूसरी अनिवार्य, ने राष्ट्रीय स्तर पर वाद-विवाद और मुकदमों को जन्म दिया है। गुणो-अवगुणों के आधाार पर चर्चा कीजिए कि क्या दोनों योजनाओं को साथ-साथ चलाया जाना आवश्यक है या नहीं है। इन योजनाओं के विकासात्मक लाभों और न्यायोचित संवृद्धि को प्राप्त करने की संभाव्यता का विश्लेषण कीजिए। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2014)

3. भारत की सुरक्षा को गैर-कानूनी सीमापार प्रवसन किस प्रकार एक खतरा प्रस्तुत करता है? इसे बढ़ावा देने के कारणों को उजागर करते हुए ऐसे प्रवसन को रोकने की रणनीतियों का वर्णन कीजिए। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2014)

World Committed To Excellence

पाकिस्तान में इमरान की नई पारी की शुरुआत

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

हाल ही में पाकिस्तान में प्रधानमंत्री पद के लिए हुए चुनावों में पूर्व क्रिकेटर इमरान खान की पार्टी ने सबसे ज्यादा सीटें जीती हैं। भावी प्रधानमंत्री के तौर पर इमरान को जहाँ घरेलू मुद्दों पर काफी संघर्ष करना होगा वहीं विदेशी मामलों पर भी उनसे नई उम्मीदें हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'हिन्दुस्तान', 'राष्ट्रीय सहारा', 'प्रभात खबर', 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'पत्रिका', 'जनसत्ता' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

फौज की पिच पर इमरान की पारी (हिन्दुस्तान)

पाकिस्तान के आम चुनाव का नतीजा अप्रत्याशित नहीं है, और न ही इसे लेकर होने वाली प्रतिक्रियाएँ। इमरान खान की पार्टी पाकिस्तान तहरीके इंसाफ यानी पीटीआई की इस जीत को कोई दूसरा दल मानने को तैयार नहीं दिख रहा। 2013 के आम चुनाव में इमरान खान एकमात्र ऐसे शख्स थे, जिन्होंने चुनावी नतीजों को खारिज किया था। इस बार भी वह एकमात्र ऐसे नेता है, जो इस नतीजे को स्वीकार कर रहे हैं। जब तक यह सरकार रहेगी, उनकी वैधता पर सवाल उठते रहेंगे।

इमरान खान के नए वजीर-ए-आजम बनने के कयास चुनाव के पहले से ही लगाए जा रहे थे। उनके लिए पाकिस्तानी फौज ने पिच तैयार की थी। जाहिर है, जीत इमरान की पीटीआई की ही होनी थी। हाँ, देखने वाली बात अब यह होगी कि इस 'डीप स्टेट' की अंपायरिंग में इमरान खान कब तक खेल पाते हैं? डीप स्टेट वहाँ की फौज व खुफिया एजेंसी आईएसआई के हुक्मरानों का वह गुट है, जो हुकूमत पर हावी रहता है। इमरान खान तुनक मिजाज किस्म के शख्स हैं, लिहाजा खतरा है कि अगले कुछ महीनों में वह 'हिट विकेट' भी हो सकते हैं।

इन पंक्तियों के लिखे जाने तक इमरान खान की पीटीआई अकेले पूर्ण बहुमत तक नहीं पहुँच सकी थी। ऐसा लग भी नहीं रहा है कि वह अपने दम पर 137 का जादुई आँकड़ा छू सकेगी। मगर वह सरकार जरूर बनाएगी। ऐसा इसलिए, क्योंकि काफी संख्या में निर्दलीय उम्मीदवारों ने भी जीत हासिल की है। नियमों के तहत, उन्हें किसी न किसी पार्टी में शामिल होना होगा, इसलिए तय है कि बड़ी संख्या में ऐसे सांसद पीटीआई की ओर मुखातिब होंगे। फिर सिंध और बलूचिस्तान की छोटी-छोटी पार्टियाँ भी हैं। ऐसे में, इमरान खान सीधे निर्वाचित होने वाले सांसदों का बहुमत आसानी से जुटा लेंगे।

इमरान खान जितनी आसानी से वजीर-ए-आजम की कुर्सी हासिल करते दिख रहे हैं, उनके लिए सरकार चलाना उतना ही मुश्किल जान पड़ता है। सबसे बड़ी चुनौती उन्हें अपनी स्वीकार्यता को लेकर आने वाली है। कानून बनाने में भी इमरान खान को दुश्वारियों का सामना करना पड़ेगा। यह तय है कि सीनेट (ऊपरी सदन) में कम से कम तीन वर्षों तक पीटीआई को बहुमत नहीं मिलने वाला। चुनाव के दरम्यान चले इमरान के जुबानी तीर इतने तीखे थे कि दूसरे दलों के लिए उसका दर्द भुला पाना आसान नहीं होगा। ऐसे में, शायद ही सभी पार्टियाँ मिलकर काम कर पाएंगी।

पाकिस्तान के संकेत (जनसत्ता)

पाकिस्तान में आम चुनाव के नतीजों से कई गंभीर संकेत मिलते हैं। क्रिकेटर से राजनेता बने इमरान खान की पार्टी तहरीक-ए-इंसाफ सबसे बड़े दल के रूप में उभरी है। नवाज शरीफ के करीब सारे मंत्री चुनाव हार गए। वे सेना पर आरोप लगाते हुए खुद को बेदाग साबित करने की कोशिश करते रहे और उन्हें उम्मीद थी कि लोग अपने वोटों से उन्हें इंसाफ दिलाएंगे, पर वह उनकी गलतफहमी साबित हुई। पिछले कुछ समय से पाकिस्तान में जैसा सियासी माहौल बन गया था, उसमें पहले से संकेत मिलने लगा था कि वहाँ के लोग इस चुनाव में किसी दमदार विकल्प को चुनेंगे। ऐसे में मुंबई हमलों के सरगना और लश्कर-ए-तैयबा के मुखिया आतंकी हाफिज सईद के मंसूबे बुलंद थे। उसने कुल दो सौ बहत्तर सीटों में से दो सौ पैंसठ पर अपने उम्मीदवार चुनाव मैदान में उतारे थे। उसे लग रहा था कि वह किसी न किसी तरह लोगों को अपने पक्ष में झुका ही लेगा और इस तरह पाकिस्तान की सत्ता पर काबिज हो जाएगा। इसी यकीन के साथ उसने चुनाव आयोग से अपनी पार्टी मिल्ली मुस्लिम लीग को मान्यता न मिलने के बाद अल्लाह-ओ-अकबर पार्टी के बैनर तले अपने उम्मीदवार खड़े किए थे, पर उसे बुरी तरह मुंह की खानी पड़ी। लोगों ने उसे पूरी तरह नकार दिया।

हाफिज सईद पर अनेक आतंकी हमलों के आरोप हैं, पर वहाँ की सरकारें उसे हर तरह से महफूज रखने का प्रयास करती रही हैं। अमेरिका तक के दबाव के बावजूद उसके लिए कोई न कोई गलियारा निकाला जाता रहा है। दुनिया उसे आतंकी मानती रही है, पर पाकिस्तानी हुक्मरान उसे समाज सेवक बताते रहे हैं। वहाँ की सेना और खुफिया एजेंसी आइएसआइ भी उसे संरक्षण देती रही हैं। ऐसे में स्वाभाविक रूप से उसका मनोबल बढ़ता गया। वह पाकिस्तान में सरेआम घूमता और तकरीरें करता रहा है। उसकी सभाओं में भारी भीड़ जुटती रही है। इसलिए भी उसे भरोसा रहा होगा कि चुनाव में बाजी मार लेगा और सत्ता को अपने ढंग से चलाएगा। पर वहाँ के लोगों ने मंजूर नहीं किया। इस तरह लोगों ने संकेत दिया है कि उन्हें दहशतगर्दी नहीं, अमन चाहिए, बुनियादी सुविधाएँ और अधिकारों का भरोसा चाहिए। हालाँकि वहाँ के आम लोग लंबे समय से आतंकवाद के खिलाफ रुझान पेश करते रहे हैं, पर वहाँ की सियासी पार्टियाँ, कट्टरपंथी नेता, सेना और खुफिया एजेंसी ने उस पर कभी गौर ही नहीं किया। वे पाकिस्तान की हकीकत पर पर्दा डाल कर लोगों को अपनी मनचाही तस्वीरें दिखाने की कोशिश करते रहे हैं।

Committed To Excellence

इमरान खान वैसे भी एक बदमिजाज शख्स माने जाते हैं, और यही हाल उनके सहयोगियों का भी है। आमतौर पर होता यह हैं कि चुनाव जीतने वाला नेता थोड़ा बड़प्पन दिखाता है और सभी को साथ लेकर सरकार चलाने की बातें करता है। मगर जीत के बाद पीटीआई नेताओं की पहली तकरीरें यही आई हैं कि वे विरोधियों को जेल में डालेंगे। इन सबसे चुनावी धांधली की जो तल्खियाँ हैं, वे और ज्यादा बढ़ेंगी। इसका सरकार की सेहत पर खूब असर पड़ेगा।

पंजाब के नतीजों ने भी पीटीआई की मुश्किलें बढ़ाई हैं। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक के रुझान व नतीजे यही बता रहे हैं कि यहाँ भी किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने वाला। फिर भी संभावना पीटीआई के सत्ता में आने की ज्यादा है। चूँकि पार्टी का बहुमत कमजोर होगा और विपक्ष कहीं ज्यादा मजबूत साबित होगा, तो हुकूमत की राह में दुश्वारियाँ बनी रहेंगी। और अगर यह सूबा पाकिस्तान मुस्लिम लीग-नवाज के हिस्से में चला जाता है, तो इमरान व मियां नवाज की तल्खियां स्वाभाविक तौर पर केंद्र सरकार के सामने मुश्किलें खड़ी करेंगी। हालाँकि पहले भी केंद्र और पंजाब में दो अलग-अलग दलों की सरकारें रही हैं, पर यहाँ आपसी समझ से हुकूमत करना आसान होता था। इस बार आपसी समझ की कोई संभावना नहीं दिख रही, इसीलिए वहाँ राजनीतिक अस्थिरता कहीं ज्यादा देखने को मिल सकती है।

इमरान को मुश्किलें उन वादों को पूरा करने में भी आएंगी, जो उन्होंने चुनाव के दौरान आवाम से किए थे। असल में, पाकिस्तान की आर्थिक सेहत ठीक नहीं है। आर्थिक संकट को संभालने का अर्थ होगा, चुनावी वादों से किनारे होना। इससे विकास दर, रोजगार, महँगाई जैसे मसले हावी होंगे। बिजली के दाम बढ़ेंगे और अर्थव्यवस्था कहीं ज्यादा चरमरा जाएगी। फिर फौज की भी अपनी आकांक्षा है, जिन्हें पूरा करने का दबाव इमरान खान पर होगा। जाहिर है, पाकिस्तान को क्रिकेट का सरताज बनाने वाला यह शख्स यही सोचेगा कि पक्ष में रहकर समाधान की बातें करना जितना आसान है, सत्ता में आकर उस ओर कदम बढ़ाना उतना ही मुश्किल। सियासत की इस सबसे मुश्किल पिच पर संभलकर खेलना उसके लिए कहीं ज्यादा टेढ़ी खीर साबित होने वाली है।

भारत के नजरिये से यह चुनावी नतीजा बहुत ज्यादा उत्साहवर्द्धक नहीं है। वहाँ वजीर-ए-आजम कोई भी बने, विशेषकर विदेश नीति फौज ही बनाती है। इमरान खान को भी कोई छूट नहीं मिलेगी। जब तक फौज नहीं चाहेगी, दोनों देशों के बीच का कोई भी विवादित मसला मुकाम तक नहीं पहुँचेगा। उल्टे, इमरान खान और उनके सहयोगियों के बयानात यही बता रहे हैं कि दोनों पड़ोसियों के बीच तल्खियां बढ़ेंगी। इमरान खान की जीत में उनकी भारत-विरोधी छवि का भी योगदान है, जबकि पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ नई दिल्ली के साथ अच्छे संबंध के हिमायती दिखते थे। हाँ, यह अलग बात है कि जमीनी स्तर पर उन्होंने भी ऐसा कुछ नहीं किया, जिससे लगे कि भारत और पाकिस्तान के बीच संबंध सुधारने की कोई संजीदा कोशिशें हुई है।

फिर भी, दुनिया को झाँसा देने के लिए इमरान खान कुछ ऐसे प्रस्ताव लेकर आ सकते हैं, जो शांति की वकालत करेगा। सीमा पर सैनिकों की तादाद कम करने, कश्मीर की सीमा-रेखा से तोपखानों को 25-30 किलोमीटर दूर करने या परमाणु हथियारों को लेकर किसी समझौते पर पहुँचने जैसे प्रस्ताव वह भारत को दे सकते हैं। मगर इस तरह के कथित शांति-प्रस्ताव इमरान के लिए अपना उल्लू सीधा करने वाले ही होंगे। वह भारत के अंदरुनी हालात और कश्मीर का राग भी अलाप सकते हैं। इन सबसे जाहिरा तौर पर आपसी तनाव खत्म नहीं होगा, बल्कि बढ़ता ही जाएगा।

एक आम धारणा बन गई है कि पाकिस्तान के लोग जिहाद के नाम पर चल रही आतंकी गतिविधियों को पसंद करते हैं। मगर हाफिज सईद की पार्टी को नकार कर उन्होंने इस धारणा को निर्मूल साबित किया है। जितना दुनिया के दूसरे मुल्क दहशतगर्दी से परेशान हैं, उतने ही खुद पाकिस्तान के लोग भी हैं। अक्सर वहाँ आतंकी हमलों में लोग मारे जाते हैं। भारत को सबसे बड़ा दुश्मन बताते हुए हर समय युद्ध का-सा वातावरण बनाए रखने का प्रयास किया जाता है, जबकि वहाँ के लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी सुविधाएँ चाहिए। वहाँ के हुक्मरान इस तरफ ध्यान ही नहीं दे पाते। इसलिए लोगों ने इमरान खान की पार्टी को इस बार मौका दिया है। अगर वहाँ के हुक्मरान जनता के इस संकेत को समझ कर नए सिरे से कदम बढ़ाएंगे, तो निस्संदेह मुल्क की सूरत कुछ बदलेगी।

इलेक्शन या सेलेक्शन? (राष्ट्रीय सहारा)

पिछले कुछ समय से दक्षिण एशिया सहित विश्व के अनेक देशों की निगाहें पाकिस्तान के आम चुनाव पर टिकी थीं। बीती 25 जुलाई को छिटपुट हिंसा और एकाध आतंकी घटना के बीच संपन्न चुनाव ने देश के राजनीतिक हलकों में नया तूफान ला दिया है। इमरान खान के नेतृत्व वाली पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ (पीटीआई) बड़ी जीत की ओर बढ़ती दिखाई दे रही है। गौरतलब है कि 270 सीटों पर हुए चुनाव में सरकार बनाने के लिए किसी भी राजनीतिक दल या दलों के गठबंधन को 137 सीटों पर जीत हासिल करना जरूरी है। रुझानों के अनुसार इमरान खान की पीटीआई ने नेशनल असेंबली की 119 सीटों पर अजेय बढ़त बना ली है, वहीं नवाज शरीफ की पाकिस्तान मुस्लिम लीग-नवाज (पीएमएल-एन) को मात्र 63 सीटें मिलती दिख रही हैं। आसिफ अली जरदारी और बिलावल भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी (पीपीपी) 38 सीटों पर सिमटती लग रही है। पाँच धार्मिक राजनीतिक दलों के गठबंधन मुत्तहिदा मजलिस-ए-अमल (एमएमए) को केवल 9 सीटों पर बढ़त हासिल है। अन्य छोटे-मोटे दल और स्वतंत्र उम्मीदवार 50 से अधिक सीटों पर दबदबा बनाए हुए हैं। पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री शाहिद खाकन अब्बासी, पंजाब प्रांत के मुख्यमंत्री शाहबाज शरीफ, खान अब्दुल गफ्फार खान के वंशज और आवामी नेशनल पार्टी (एएनपी) के राष्ट्रीय अध्यक्ष अफ्संदयार खान और ख्वाजा आसिफ सहित देश के कई बड़े नेताओं को चुनाव में हार का सामना करना पड़ा है। पाकिस्तान की गलियों और सड़कों को मिनटों में लोगों के हुजूम से भर देने और किसी भी सरकार को अपने घुटने पर आने के लिए विवश कर देने वाले धार्मिक, राजनीतिक और अतिवादी दलों के बड़े नेताओं, जिनमें सिराजुल हक, मौलाना फजलुर रहमान और अहमद लुधियानवी शामिल हैं, को करारी शिकस्त मिली है। देश के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दलों-पीएमएल-एन, पीपीपी, एएनपी और एमएमए-ने परिणामों को ''सिस्टेमैटिक मैनीपुलेशन' करार देते हुए खारिज कर दिया है। पाकिस्तान मुस्लिम लीग के राष्ट्रीय अध्यक्ष शाहबाज खान ने बुधवार देर रात एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में नतीजों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए इन्हें खारिज कर दिया। यह आरोप भी लगाया कि कई निर्वाचन क्षेत्रों में फार्म-45 (जिसमें डाले गए कुल वोटों और सही पाए गए वोटों की जानकारी दर्ज होती है) उनके पोलिंग एजेंटों को उपलब्ध नहीं कराया गया तथा उन्हें मतगणना स्थल से भी बाहर कर दिया गया। पाकिस्तान के इलेक्शन कमीशन ने इस बात से इनकार किया है। पाकिस्तान के इतिहास में अब तक संपन्न हुए आम चुनावों में, कई कारणों से, यह राजनीतिक रूप सर्वाधिक उथल-पुथल वाला चुनाव रहा। तीन बार प्रधानमंत्री रह चुके

पाकिस्तान में सेना की चलेगी (प्रभात खबर)

पाकिस्तान में इस बार नेशनल असेंबली के चुनाव में इमरान खान सरकार बनाने की ओर हैं। इमरान की जीत और उसके आगे-पीछे कई ऐसे तथ्य हैं, जिन पर चर्चा होनी चाहिए. उन फैक्टरों पर बात होनी चाहिए, जिन पर चलकर पाकिस्तान में एक नयी सरकार का गठन होने जा रहा है।

जिस तरह से वहाँ कई धार्मिक पार्टियों ने चुनाव में भाग लिया है और सेना ने उन्हें शह दिया है, इससे साफ है कि पाकिस्तान की आगे की राजनीति भी सेना और धार्मिक पार्टियों के कंधे पर ही चलेगी। और यह सिर्फ पाकिस्तान में ही नहीं हो रहा है, बल्कि पूरे विश्व में दक्षिणपंथी और राष्ट्रवादी विचारधारा का वर्चस्व बढ़ रहा है, जिसका इस्तेमाल चुनावों में हो रहा है। भारत हो या अमेरिका इसकी सबसे अच्छी मिसाल हैं।

पाकिस्तान चुनाव में बड़े पैमाने पर जोड़-तोड़ हुई है। इसमें शुरू से ही सीधा-सीधा फौज का हाथ रहा है। यह सिर्फ चुनावों की बात नहीं है, बल्कि बहुत पहले, जब टिकट दिये जा रहे थे, तब नवाज शरीफ की पाकिस्तान मुस्लिम लीग-नवाज (पीएमएल-एन) या फिर दूसरी कई पार्टियों के नेताओं को डरा-धमकाकर चुनाव लड़ने से सेना ने रोक दिया था, या उनको मजबूर किया कि इमरान खान की पार्टी या उनके समर्थन वाली किसी पार्टी से वे चुनाव लड़ें। इन सब घटनाओं के मद्देनजर वहाँ चुनाव का माहौल ऐसा बना दिया गया था कि लगे कि हर आदमी इमरान खान की पार्टी (पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ यानी पीटीआई) का समर्थन कर रहा है। रणनीति यह थी कि पीटीआई ज्यादा से ज्यादा सीटें ले आये, और बाकी समर्थन के लिए धार्मिक पार्टियों से समर्थन मिल जायेगा।

धार्मिक पार्टियों में कुछ दहशगर्द पार्टियाँ भी थीं. हालाँकि, हाफिज सईद की पार्टी की हार हुई है, लेकिन ऐसा नहीं है कि दहशतगर्द पार्टियों को सीटें मिलेंगी ही नहीं, कुछ सीटें तो वे जरूर जीतेंगी. कुल मिलाकर अगर केंद्र में पीटीआई की सरकार बनती है, तो वह पूर्ण बहुमत की सरकार नहीं होगी. इसमें कई पार्टियों के समर्थन की जरूरत होगी. इसमें ज्यादा उम्मीद धार्मिक पार्टियों से ही है, जिसमें कुछ कट्टरवादी पार्टियाँ भी शामिल हैं।

पाकिस्तान चुनाव में इस बार एक अहम चीज देखने को मिली। जब नवाज शरीफ देश में लौटे थे, तब शायद पाकिस्तान के इतिहास में पहली बार हुआ था कि 'ये जो दहशतगर्दी है, इसके पीछे वर्दी है' जैसे नारे लगाये गये थे।

आमतौर पर, जब भी कोई सियासी रैली या जुलूस निकलता है, तो सीधे-सीधे फौज पर ऐसे नारे नहीं उछाले जाते हैं। लेकिन, इस बार पाकिस्तान में यह भी देखने को मिला। इसका एक ही अर्थ है कि फौज सीधे तौर पर पाकिस्तान की राजनीति में दखल रखती है, जो कि एक लोकतांत्रिक देश के लिए कहीं से भी उचित नहीं है। अब पाकिस्तान के पास यह चुनौती तो रहेगी ही कि वह खुद को कितना लोकतांत्रिक बनाये रखता है।

जहाँ कहीं भी अगर पूर्ण बहुमत की सरकार नहीं बनती है, तो वह थोड़ी-सी अस्थिर होकर जरूर चलती है। पाकिस्तान में यह होनेवाला है।

दूसरी चीज यह है कि वहाँ इस बार के चुनाव में कई ऐसे हथकंडे अपनाये गये, मसलन बीस-बीस साल पुराने मामले निकालकर पीपीपी और पीएमएल-एन के उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोक दिया गया। कई जगहों पर, खासकर पंजाब के क्षेत्रों में, जान-बूझकर चुनावों में और परिणामों में देरी की गयी, क्योंकि पंजाब क्षेत्र में नवाज शरीफ का बड़ा वोटबैंक है। इन सब पर कई रिपोर्ट भी आ चुकी हैं। जाहिर है, जब ऐसे मसले पर आम जनता में सवाल उठाये जाते हैं, तो नयी सरकार के नवाज शरीफ, जिन्हें पाकिस्तान की सर्वोच्च अदालत ने अयोग्य घोषित कर दिया था, को हाल ही में नेशनल अकाउंटेबिलिटी कोर्ट ने आय से अधिक संपत्ति के मामले में 10 साल की सजा सुनाई थी। इसके बाद उन्होंने वतन वापसी की और जेल जाना स्वीकार किया। नवाज द्वारा चुनाव में भाग न ले पाने का खमियाजा उनकी पार्टी को भुगतना ही था। हालाँकि एक सवाल जिसका जवाब जानने की पाकिस्तानी मीडिया में बहुत कम या न के बराबर कोशिश हो रही है, वह है वहाँ की सेना और इंटेलीजेंस एजेंसियों की चुनाव-पूर्व, चुनाव के दौरान और चुनाव के बाद की भूमिका! पाकिस्तान की राजनीति पर लगातार नजर रखने वाले विश्लेषकों का मानना है कि पाकिस्तान की सेना, जिसे किसी भी लोकप्रिय नेता का उभरना और राजनीति के शीर्ष पर बने रहना कतई पसंद नहीं है, ने परदे के पीछे से पी.टी.आई. की होने वाली जीत में सर्वाधिक अहम भूमिका निभाई है। यही कारण है कि कई विश्लेषकों ने चुनाव होने से पूर्व ही कहना शुरू कर दिया था कि पाकिस्तान में अगले प्रधानमंत्री का सेलेक्शन तो हो गया है, लेकिन उसको वैध बनाने के लिए इलेक्शन कराए जा रहे हैं। गौरतलब है कि पनामा पेपर्स में नाम आने के बाद से ही पाकिस्तानी सेना ने पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ पर वैंकि कसना शुरू कर दिया था। अब चूँकि पूर्व राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी ने नेशनल असेंबली को राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त करने की शक्ति को संविधान संशोधन द्वारा हटा देने की स्वीकृति पहले ही दे दी थी, इसलिए सेना को नवाज को हटाने के लिए देश की न्यायपालिका का सहारा लेना पड़ा। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि जिस आधार पर देश की सर्वोच्च अदालत ने नवाज को बेदखल किया था, उसके आधार पर किसी भी राजनेता का राजनीतिक भविष्य खत्म किया जा सकता है। नवाज को चुनाव की प्रक्रिया से हटाने के बाद सिक्योरिटी एस्टेब्लिशमेंट ने अपनी पूरी ताकत झोंककर पी.एम.एल.-एन. और पी.पी.पी. के ऐसे नेताओं पर दबाव बनाना शुरू किया जो अपने दम पर भी चुनाव जीत सकते थे। इनमें अधिकतर ने या तो पी.टी.आई. के टिकट पर यह चुनाव लड़ा या स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में। कुछ ने तो उस समय पी.एम.एल.-एन. का साथ छोड़ा जब उनके चुनाव पी.एम.एल.-एन. के टिकट पर चुनाव लड़ने की आधिकारिक घोषणा की जा चुकी थी। यही कारण है कि चुनाव में जीतने वाले स्वतंत्र उम्मीदवारों की संख्या 50 के आकड़े को छू रही है। जो बची-खुची कसर थी वो चुनाव में सेना की भारी तैनाती और अनियमितता ने पूरी कर दी। इन सबका परिणाम हुआ कि देश की राजनीति में अब तक रहे आधार स्तंभ अपने आपको लड़खड़ाने से नहीं बचा पाए। इमरान खान का पाकिस्तान का अगला प्रधानमंत्री बनाना अब मात्र औपचारिकता है। देखना यह है कि वो अपनी भूमिका का निर्वाह किस तरह से करते हैं। दक्षिण एशिया खासकर भारत में सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि इमरान खान के नेतृत्व में पाकिस्तान की विदेश नीति किस करवट बैठेगी? क्या पाकिस्तान अभी भी अफगानिस्तान और भारत के प्रति अपना पुराना रवैया अपनाएगा और आतंकियों की शरणगाह बना रहेगा? अमेरिका के साथ संबंधों में बढ़ती दूरी और चीन से होती निकटता का क्रम जारी रहेगा? वैसे तो इन सवालों के जवाब अभी भविष्य के गर्त में छिपे हैं, लेकिन यह स्पष्ट है कि जिस तरह से पाकिस्तानी सेना और इंटेलीजेंस एजेंसियों ने चुनाव में भूमिका निभाई है, वह उत्पन्न परिस्थितियों का पूरा-पूरा फायदा उठाने का प्रयास भी करेगी। अत: भारत के नीति-निर्माताओं को चाहिए कि अपनी पाकिस्तान और अफगानिस्तान की नीति में न केवल आवश्यक परिवर्तन करें बल्कि आने वाली परिस्थितियों का सही आकलन करते हुए उनसे सफलतापूर्वक निपटने की तैयारी भी पूरी कर लें।

Committed To Excellence

लिए ये असुरक्षा की हालत पैदा करते हैं। इमरान इसको अच्छी तरह से संभाल नहीं पायेंगे।

यही वजह है कि पाकिस्तान की नयी सरकार में स्थिरता का अभाव देखने को मिलेगा। अस्थिर सरकार देश में बढ़ रही अराजकता को नहीं रोक पायेगी। इसका नतीजा हिंसा के रूप में सामने आयेगा। कट्टरवादी पार्टियाँ चुनाव में भले ही बड़े पैमाने पर न जीतें, लेकिन उन्हें जितने भी वोट मिलेंगे, इसका वे दमखम से इस्तेमाल करेंगे कि कम-से-कम उनके पास इतने समर्थक तो हैं।

इन्हें अपना कार्यकर्ता बनाकर देश में अराजकता की स्थिति पैदा करेंगे, क्योंकि उनका तो यही मानना होगा कि उनके समर्थन से सरकार बनी है, तो उनकी मनमानी जायज है। इसलिए हर तरफ से पाकिस्तान चुनाव के बाद इस बात की आशंका ज्यादा नजर आ रही है कि पूरे पाकिस्तान में अराजकता बढ़ेगी. लेकिन यहीं पर यह बात भी देखने को मिलेगी कि पाकिस्तानी सेना को एक चैलेंज भी मिलेगा।

पिछले कुछ साल से विश्व भर में एक ट्रेंड देखने को मिला है कि जो भी पार्टी अत्यंत राष्ट्रवाद की बात करती है, जो सच और झूठ के फर्क को भुलाकर बात करती है, जो लोगों की बुनियादी आशाओं का शोषण करती हैं और धर्म के नाम पर राजनीति करती हैं, वे सत्ता में आती हैं। यही वजह है कि आज अमेरिका कहता है- 'वी विल मेक अमेरिका ग्रेट अगेन।' फ्रांस भी 'ग्रेट फ्रांस' बनाने की बात करता है। भारत में न्यू इंडिया की बात हो ही रही है। इसी तरह से पाकिस्तान में भी इमरान खान अब एक नये पाकिस्तान की बात कर रहे हैं, जिसके दम पर ही वे चुनावों में बढ़त हासिल कर सके हैं।

तथ्यों और नीतियों के आधार पर चुनाव नहीं लड़े जा रहे हैं, बल्कि धर्मांध और सच-झूठ से परे जाकर लोकलुभावनवादी (पॉपुलिस्ट) आधार पर लड़े जा रहे हैं। इसका हश्र सिर्फ और सिर्फ हिंसा और अराजकता ही है। जो भी नया नेता उभरता है, वह पहले के नेताओं, सरकारों और नीतियों को यह कहकर खारिज कर देता है कि वे सब बेकार थे। इमरान खान ने भी इसी नीति का सहारा लिया और नवाज पर भ्रष्टाचार के बहाने से जमकर हमला बोलते रहे। इसके पहले ओबामा और फिर ट्रंप को देखें। भारत में भाजपा के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार और उसके पहले कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार को देखें।

हर जगह यही ट्रेंड देखने को मिलेगा। ऐसे में पाकिस्तान अछूता कैसे रह सकता है। इमरान खान कभी मुशर्रफ का नाम नहीं लेते, पाकिस्तान में लोकतंत्र के ढाँचे को पिछले 70 साल से सेना के जरिये ध्वस्त किया जाता रहा है, इस पर भी इमरान ने कुछ नहीं कहा है। सिर्फ नवाज शरीफ पर ही सारे आरोप लगाते रहे हैं। जाहिर है, पाकिस्तान अब पूरी तरह से फौज के कब्जे में है। अब नयी सरकार वैसे ही काम करेगी, जैसा पाक सेना चाहेगी।

भारत को इमरान खान से बेहतरी की उम्मीद नहीं करनी चाहिए (दैनिक जागरण)

पाकिस्तान तहरीके इंसाफ यानी पीटीआई के प्रमुख इमरान खान पाकिस्तान के नए प्रधानमंत्री बनने को तैयार हैं। हालाँकि पाकिस्तान चुनाव आयोग की वेबसाइट के नाकाम हो जाने के कारण चुनाव नतीजों की आधिकारिक घोषणा होने में देर हो रही है, लेकिन इन पंक्तियों के लिखे जाने तक सामने आए नतीजों के हिसाब से इमरान की पार्टी सबसे बड़े दल

पाकिस्तान का नया निजाम (अमर उजाला)

पाकिस्तान के नेशनल एसेंबली चुनाव में क्रिकेटर से राजनेता बने इमरान की पार्टी पाकिस्तान तहरीक-ए इंसाफ सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी है। जाहिर है, इमरान खान का पाकिस्तान के प्रधानमंत्री बनने का सपना पूरा होने जा रहा है। हालाँकि प्रमुख विपक्षी दलों ने इस नतीजे को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है और चुनाव में भारी धांधली का आरोप लगाया है, जिसे वहाँ के निर्वाचन आयोग ने सिरे से नकारते हुए चुनाव को सौ फीसदी पारदर्शी बताया है।

पाकिस्तान तहरीक-ए इंसाफ के प्रमुख इमरान खान की यह जीत वास्तव में उनको वहाँ की सेना का दिया तोहफा है। जैसा कि मैंने अपने पिछले आलेख में भी कहा था कि पाकिस्तान में जब औपचारिक तौर पर सैन्य शासन नहीं होता, तब भी वहाँ की शासन-व्यवस्था में सेना का गहरा असर होता है। और इस चुनाव में तो सेना और वहाँ की न्यायपालिका ने भी खुलेआम इमरान खान की पार्टी का समर्थन किया और ऐसी परिस्थितियाँ तैयार कीं कि इमरान खान के प्रधानमंत्री बनने में कोई बाधा न आए। जाहिर है, इमरान खान अगर पाकिस्तान में नई सरकार बनाते हैं, तो वह वही करेंगे, जो वहाँ की सेना कहेगी। चुनाव नतीजों से साफ है कि इमरान खान को पूर्ण बहुमत नहीं मिलने वाला है। वह जोड़-तोड़ करके ही सरकार का गठन कर पाएंगे। वहाँ की सेना यही चाहती थी कि मुल्क में एक कमजोर सरकार बने, जिसे वह अपनी उंगलियों के इशारे पर नचा सके। इमरान ने अपनी प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा है कि वह पाकिस्तान को इंसानियत का निजाम बनाना चाहते हैं। उन्होंने कहा, 'इंशाअल्लाह मेरी कोशिश होगी कि मुल्क के निचले तबके के जीवन स्तर को ऊपर उठाएँ। मुल्क की पहचान अमीर लोगों से नहीं होती, बल्कि गरीब लोगों के जीवन स्तर से होती है।' ऐसे में, यह देखने वाली बात होगी कि नया पाकिस्तान बनाने के अपने वायदे पर वह कितना खरा उतर पाएंगे।

इस चुनाव में इमरान खान की पार्टी को जिताने के लिए पाकिस्तान की सेना ने तमाम तरह के हथकंडे अपनाए। नवाज शरीफ की पार्टी (पीएमएलएन) के नेताओं को डराया-धमकाया गया और इमरान खान की पार्टी के चुनाव चिह्न पर चुनाव लड़ने के लिए कहा गया। जिन नेताओं ने ऐसा करने से इन्कार किया, उन्हें कई तरह के आरोप लगाकर प्रताड़ित किया गया। सेना ने इस चुनाव में साढ़े तीन लाख से ज्यादा जवानों को तैनात किया। इस तरह पाकिस्तान की सेना ने इमरान खान को चुनाव जिताने के लिए बेहद अनुकूल माहौल तैयार किया।

अपने चुनावी घोषणा पत्र में इमरान खान ने कहा है कि वह भारत के साथ संबंध सुधारने की कोशिश करेंगे और कश्मीर समस्या का हल तलाशेंगे। नतीजे आने के बाद भी उन्होंने कहा कि 'भारत के साथ हम तिजारती रिश्ते बढ़ाना चाहेंगे।' उन्होंने कश्मीर के मसले पर कहा कि 'सेना से नहीं, बल्कि संवाद से कश्मीर की समस्या का समाधान होगा। दोनों मुल्कों के बीच शांति, दोनों के हित में है।' लेकिन भारत को इस बात की जरा भी उम्मीद नहीं पालनी चाहिए कि अगर इमरान खान पाकिस्तान के प्रधानमंत्री बने, तो अपने पड़ोसी से हमारे रिश्ते सुधर जाएँगे या कश्मीर समस्या का हल हो जाएगा, जैसा कि हर बार पाकिस्तान में कोई नया प्रधानमंत्री बनता है, तो हम उम्मीद पालने लगते हैं। दरअसल पाकिस्तान के किसी भी हुकूमत में इतनी ताकत नहीं रही है कि वह सेना की इच्छा के खिलाफ जाकर भारत से संबंध सुधारने की बात करे या कश्मीर समस्या का समाधान तलाशे। सबसे पहले तो वहाँ की सेना उनसे यही सौदा करेगी कि वे विदेश नीति और सुरक्षा के मामले से अलग रहें। कश्मीर समस्या वहाँ की भारत-विरोधी भावना के मूल में है, जिसकी घुट्टी पाकिस्तान की

Committed To Excellence

के तौर पर उभर आई है। भ्रष्टाचार के आरोप में जेल में कैद पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ की पाकिस्तान मुस्लिम लीग (एन) दूसरे और आसिफ अली जरदारी एवं बिलावल भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी तीसरे स्थान पर रही। एक बड़ी संख्या में छोटी पार्टियों के उम्मीदवार और निर्दलीय भी नेशनल असेंबली यानी पाकिस्तानी संसद पहुँचने में सफल रहे हैं।

जाहिर है कि वे इमरान खान का समर्थन करने के लिए तैयार होंगे। यह काम पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी भी कर सकती है। इस तरह इमरान खान को करीब दो दशक पुराने अपने सपने को साकार करने में आसानी होगी। हालाँकि जब इमरान अपना दल बनाकर राजनीति में कूदे थे तब और उसके बाद भी वह सियासत के प्रति संजीदा नहीं दिखते थे। उन्हें गंभीर राजनेता के तौर पर देखा भी नहीं जाता था। यह सच है कि उनकी राजनीतिक सफलता में सेना का सहयोग है, लेकिन उसकी ओर से कहा यही जाएगा कि उसका पाकिस्तान की राजनीति से कोई लेना-देना नहीं। सेना कुछ भी कहे, हकीकत यही है कि वह पाकिस्तान के सबसे ताकतवर नेता नवाज शरीफ को राजनीतिक तौर पर खत्म करने पर तुली थी।

राजनीतिक रूप से पाकिस्तान के सबसे अहम राज्य पंजाब को नवाज शरीफ का गढ़ माना जाता है। पाकिस्तानी सेना को यह पसंद नहीं कि देश की सुरक्षा एवं विदेश नीति के साथ-साथ भारत संबंधी नीति को कोई नेता अपने हिसाब से चलाए। बतौर प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ऐसा ही करना चाहते थे और वह इसे अपना संवैधानिक अधिकार भी समझते थे। सेना को नवाज शरीफ के पर कतरने का मौका 2016 में तब मिला, जब पनामा पेपर्स मामले में यह सामने आया कि उनके परिवार के लोगों की विदेश में संपत्ति और व्यवसाय है। इसी के बाद वह सेना और अदालतों की घेरेबंदी में आ गए। पहले तो उन्हें राजनीतिक पद धारण करने के अयोग्य ठहराया गया और फिर उन्हें और उनकी बेटी को भ्रष्टाचार के आरोप में सजा सुना दी गई।

राजनीतिक शहादत दिखाने के इरादे से नवाज शरीफ गिरफ्तारी के खतरे के बावजूद बेटी के साथ पाकिस्तान लौटे। उन्हें विमान से सीधे जेल भेज दिया गया और चुनाव प्रचार के दौरान जमानत पर बाहर नहीं आने दिया गया। इसके बाद उनके कई सहयोगी और समर्थक इमरान खान के पाले में चले गए। ऐसा इसलिए भी हुआ, क्योंकि सेना की ऐसी ही मंशा थी। इसके बाद भी तमाम लोग नवाज के साथ खड़े रहे। शायद इसी कारण नेशनल असेंबली के साथ हुए विधान सभा चुनावों में नवाज की पार्टी अपने गढ़ पंजाब को बचाने में सफल रही। इसके बावजूद इस पर यकीन करना कठिन है कि सेना नवाज शरीफ के भाई शहबाज शरीफ या उनके परिवार के किसी अन्य सदस्य को पंजाब का मुख्यमंत्री बनने देगी। यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ शहबाज चुनाव हार गए वहीं उनका बेटा हमजा जीत हासिल करने में समर्थ रहा।

इसमें दो राय नहीं कि प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठने की तैयारी कर रहे इमरान खान अपने गढ़ खैबर पख्तूनख्वा में अपना जनाधार बढ़ाने में सफल रहे। इस प्रांत में उनकी पार्टी 2013 से सत्ता में है, लेकिन जब तक उनका सिक्का पंजाब में नहीं चलता वह पाकिस्तान के वैसे ताकतवर नेता नहीं बन सकते जैसे जुल्फिकार अली भुट्टो थे। सबसे बड़ी पार्टी का नेता बनने के बाद भी उनका राजनीतिक कद नवाज शरीफ जैसा नहीं है। वह तो इसलिए बढ़त हासिल करने में कामयाब रहे, क्योंकि सेना उनके साथ थी और न्यायपालिका ने नवाज शरीफ को जेल भेज दिया। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि इमरान को जहाँ पंजाब में अपेक्षित समर्थन नहीं मिला वहीं सिंध में पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी सरकार बनाने जा रही है। सेना ने वहाँ के लोगों को पिलाई है। भारत-विरोधी भावना ही पाकिस्तान की सेना की प्रमुखता का कारण है। अगर भारत के साथ पाकिस्तान के रिश्ते सुधर गए, तो वहाँ की सेना का शासन-व्यवस्था में वर्षों से चला आ रहा वर्चस्व खत्म हो जाएगा, जिसे सेना किसी भी हालत में होने नहीं देगी।

इमरान खान की सरकार इतनी ताकतवर नहीं होगी कि मुल्क को ठीक ढंग से चला सके, भारत से संबंध सुधारने की बात तो दूर रही। पाकिस्तान में विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के बीच आपस में भेदभाव और मतभेद है। कानून-व्यवस्था की स्थिति ठीक नहीं है। पाकिस्तान के सामने बहुत बड़ी आर्थिक चुनौती है। इन सब क्षेत्रों में सुधार उनके लिए बड़ी चुनौती होगी। मगर विदेश नीति और सुरक्षा के मामले पर सेना का वर्चस्व पहले की तरह ही बना रहेगा और इन मामलों में इमरान खान अपने मन से कोई कदम नहीं उठा पाएंगे। वह वही करेंगे, जिसकी इजाजत वहाँ की सेना उन्हें देगी। जिस दिन उन्होंने सेना की इच्छा के विरुद्ध कोई कदम उठाने की सोची, उसी दिन से उनकी सरकार की उल्टी गिनती शुरू हो जाएगी। इसका सबसे बड़ा उदाहरण नवाज शरीफ हैं, जो एक समय सेना के सबसे चहेते नेता थे, लेकिन सेना के साथ मतभेद बढ़ने पर आज उनका क्या हश्र हुआ, यह सबके सामने है। इसलिए इमरान खान से बहुत उम्मीद पालने की जरूरत नहीं है। उल्टे इस बात की आशंका बढ़ गई है कि इमरान खान के सत्ता में आने के बाद कट्टरपंथियों को काफी राहत मिलेगी। ये कट्टरपंथी भी वहाँ की सेना के ही पाले-पोसे हुए हैं और उन्हें भारत के खिलाफ आतंकवादी कार्रवाइयों के लिए सेना की तरफ से हथियार और आर्थिक सहायता मिलती रही है। इसलिए भारत को सजग और सचेत रहना होगा।

वैसे इमरान खान को वहाँ ईमानदार नेता माना जाता है। वहाँ के लोगों ने इसी उम्मीद में उन्हें चुना होगा कि वे लोगों के टैक्स के पैसे का सदुपयोग करें और मुल्क से गरीबी, बेरोजगारी खत्म कर मुल्क को तरक्की की राह पर आगे ले जाएँ। पाकिस्तान की आधी से ज्यादा आबादी गरीबी में जिंदगी बसर कर रही है और पाकिस्तान की आर्थिक स्थिति बेहद कमजोर है। शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी सुधार के लिए उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ेगी। अब देखना है कि इन सब चुनौतियों से वह कैसे उबरते हैं और कब तक सेना के साथ उनकी जुगलबंदी चलती है!

नतीजों के मायने (पत्रिका)

पाकिस्तान चुनाव के नतीजे संभावनाओं के अनुरूप ही सामने आए, जिन्हें पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ (पीटीआइ) के अलावा प्रायः सभी दलों ने खारिज कर दिया। विवादों में आए चुनाव परिणामों की अंतिम घोषणा में अप्रत्याशित विलंब के कई मायने निकाले जा रहे हैं। चुनाव परिणामों को अदालत में घसीटा जाता है तब भी यह तो तय है कि क्रिकेट की दुनिया का पुराना सितारा इमरान खान पाकिस्तान की राजनीति का नया नायक बन गया है। हालाँकि 'नया पाकिस्तान' का नारा देकर मैदान में आए इमरान खान के दल को सबसे ज्यादा सीटें मिलने के बावजूद किसी को भरोसा नहीं है कि हालात बदलेंगे। वजह साफ है कि इमरान को 'आर्मी बॉय' ही माना जाता है। समझा जा रहा है कि अपना वर्चस्व रखने के लिए 'तालिबान खान' के नाम से मशहूर इमरान को सेना ने समर्थन दिया है ताकि नवाज शरीफ को रास्ते से हटाया जा सके। विदेश व रक्षा मामलों में सेना के विशेषाधिकार को चुनौती देने वाले शरीफ को पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी की तरह लोकतांत्रिक ठप्पा लगाकर ठिकाने लगा दिया गया है।

इमरान पिछले 22 साल से पाकिस्तान की राजनीति में स्थापित होने की कोशिश में थे। पिछले चुनाव में करारी हार का सामना करना पड़ा

अब जब पाकिस्तान में नई सरकार बनने जा रही है तब सबसे अहम सवाल यह है कि आर्थिक और सामाजिक मोर्चे पर गंभीर समस्याओं से दो-चार यह पड़ोसी देश किस रास्ते पर जाएगा? पाकिस्तान में अतिवाद उफान पर है तो आतंकवाद भी बेलगाम ही है। खूंखार आतंकी संगठन लश्करे तैयबा ने राजनीति की भी राह पकड़ ली है। चिंता की बात यह है कि इमरान खान ऐसे संगठनों के प्रति हमदर्दी रखते हैं। उन्होंने चुनाव प्रचार के दौरान नया पाकिस्तान के नाम पर वोट मांगे, लेकिन इसके लिए पाकिस्तान की सोच-समझ में व्यापक बदलाव जरूरी है। अपनी विचारधारा बदलने और भारत से हर क्षेत्र में बराबरी करने के इरादे से मुक्त होकर एक जिम्मेदार देश के तौर पर व्यवहार करने पर ही पाकिस्तान नया पाकिस्तान बन सकता है।

नया पाकिस्तान का यह भी मतलब होगा कि वह आर्थिक और व्यापारिक मामलों में भारत से सहयोग चाहेगा। इमरान खान की पार्टी के घोषणा पत्र में चाहे जो कहा गया हो, उनमें वह क्षमता और योग्यता नहीं नजर आती कि वास्तविक बदलाव की प्रक्रिया शुरू कर सकें। यह तो तय है कि तमाम राजनीतिक ड्रामे के साथ वह कुछ नया करते दिखेंगे, लेकिन इसमें संदेह है कि उसमें कुछ सार्थकता होगी। एक सफल क्रिकेट बनना अलग बात है और प्रधानमंत्री बनकर देश को नई दिशा देना अलग बात। इमरान खान नवाज शरीफ को मोदी का दोस्त बताकर ऐसे नारे के बीच उनकी आलोचना करते रहे हैं- जो मोदी का यार है, वह गद्दार है- गद्दार है।

भारत के बारे में उनके बयान भी यही बताते हैं कि वह सेना की लाइन पकड़े हुए हैं। वह भारत से सभी मसलों पर वार्ता करने के संकेत देंगे, पर बिना किसी नई पहल के। उनके नेतृत्व में पाक अपनी पुरानी सोच को ही दोहराता दिखेगा। भारत के खिलाफ आतंकियों का इस्तेमाल करने की नीति में कोई बदलाव होने के आसार नहीं। अगर इमरान सेना की भारत संबंधी नीति से हटना चाहेंगे तो वह इसे सहन नहीं करेगी। कुल मिलाकर भारत को पाकिस्तान में इमरान खान सरकार से किसी बड़े बदलाव की उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

कुछ समय पहले इमरान खान की दूसरी पत्नी रेहम खान ने अपनी किताब में उनकी सोच और आदतों पर सवाल उठाते हुए काफी कुछ लिखा था, लेकिन उससे इमरान की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ा। पाकिस्तान में लोग यह सोचते हैं कि एक पूर्व पत्नी को ऐसा कुछ लिखना ही नहीं चाहिए। जो भी हो, रेहम खान की किताब इमरान के व्यक्तित्व को सामने लाती है। इमरान खान तमाम दावे कर रहे हैं, लेकिन लगता नहीं कि वह पाकिस्तान को सही दिशा दिखा पाएंगे। पाकिस्तान को मध्ययुगीन माहौल में ले जाने और हिंसा का सहारा लेने वाले किस्म-किस्म के इस्लामी समूह जिस तरह राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं, उससे पाकिस्तान गलत राह पर ही जाता दिख रहा है। हालाँकि पाकिस्तान ने आतंकी सरगना हाफिज सईद के राजनीतिक दल को मान्यता नहीं दी, लेकिन उसके समर्थक चुनाव लड़ने में समर्थ रहे। यह पाकिस्तान ही नहीं, पूरे क्षेत्र के लिए एक खतरनाक संकेत है।

सरकार नई, नीति वही (बिजनेस स्टैंडर्ड)

पाकिस्तान की नेशनल असेंबली के चुनाव में सब कुछ उम्मीद के मुताबिक हुआ। यानी हिंसा, धोखाधड़ी का आरोप और इमरान खान की तहरीक ए इंसाफ (पीटीआई) का सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरना। खान का प्रधानमंत्री बनना तय है। पाकिस्तान के 70 वर्ष के इतिहास में यह दूसरा मौका है जब देश में शांतिपूर्ण और असैन्य तरीके से सत्ता का था। इस बार बढ़त के बाद उन्होंने चीन से काफी कुछ सीखने की बात भले ही कही हो, पर ऐसा लगता है कि भारत के पिछले चुनाव से उन्होंने काफी कुछ सीख लिया। नरेंद्र मोदी की अगुवाई में भाजपा ने 'नया भारत' का नारा देते हुए तत्कालीन यूपीए सरकार के भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाया था और पाकिस्तान के खिलाफ '56 इंच के सीने' का जोर-शोर से प्रचार था। इमरान ने भी लगभग ऐसा ही रवैया दिखाते हुए भारत व मोदी को निशाने पर रखा। भारत से संबंध सुधारने की मंशा दिखाने वाले शरीफ के खिलाफ उनका नारा काफी लोकप्रिय हुआ कि- 'मोदी जिसका यार है, पाकिस्तान का गद्दार है।' इमरान में पाकिस्तानी सेना प्रमुख कमर जावेद बाजवा को वैसी ही संभावना नजर आई जैसे जिया उल हक को नवाज शरीफ के रूप में दिखी थी।

इमरान को कट्टरपंथियों का फायदा जरूर मिला है, लेकिन भारत के लिए सबसे खतरनाक आतंकी जमात के सरगना हाफिज सईद परिवार की शर्मनाक हार बताती है कि पाकिस्तानी जनता ने ऐसी जमात का राजनीति में आना नामंजूर कर दिया। सेना और उसकी खुफिया एजेंसी उनका इस्तेमाल जरूर करती हैं, पर अपना आका बनने का मौका नहीं देना चाहती। चुनाव में आतंकियों का उतरना भी नवाज की पाकिस्तान मुस्लिम लीग (एन) के वोट काटने की सेना की सफल रणनीति ही थी। सेना की दूसरी रणनीति इमरान को एक हद से ज्यादा मजबूत होकर न उभरने देने की थी, क्योंकि त्रिशंकु असेंबली में सेना जब चाहे अपना खेल दिखा सकती है। इसलिए आर्मी चीफ बाजवा के 'टेस्ट ट्यूब बेबी' या सेना, न्यायपालिका और चरमपंथियों का 'कॉकटेल' बनकर पैदा हुए इमरान से भारत को ज्यादा उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। यदि वह भारत से संबंध सुधारने की पहल करते हैं तो दुनिया स्वागत को तैयार बैठी है।

इमरान खान कैसे ले जाएँगे भविष्य की ओर पाकिस्तान?

(बिजनेस स्टैंडर्ड)

वर्ष 1990 के दशक में पाकिस्तानी पत्रकारों को भारत आने की छूट थी। उस दौरान भारत की एक समाचार पत्रिका ने पाकिस्तान के सर्वाधिक सम्मानित राजनीतिक टिप्पणीकारों में से एक और बेहतरीन इंसान एम बी नकवी से इमरान खान के बारे में लिखने का आग्रह किया। दरअसल पाकिस्तान की सर्वाधिक चर्चित एवं रंगीन शख्सियतों में से एक इमरान की मंत्रमुग्ध करने वाली जिंदगी को लेकर भारतीय खासे आकर्षित थे। इमरान अपनी मां के नाम पर एक कैंसर अस्पताल बनाने में लगे हुए थे और राजनीति में भी कदम रख चुके थे। हालाँकि इमरान का एजेंडा उदार और अक्सर दुविधा का शिकार नजर आता था।

नकवी ने पत्रिका से अविश्वास भरे लहजे में कहा, 'इमरान खान? आप इमरान खान का प्रोफाइल लिखवाना चाहते हैं? लेकिन वह तो निरा मूर्ख है।' लेकिन आज तस्वीर बदल चुकी है। इमरान ने अपनी छवि को पूरी तरह बदल दिया है। मौजमस्ती वाले अपने सोशलाइट अतीत को दफन करने में वह काफी हद तक सफल रहे हैं और एक ऐसे शख्स के तौर पर सामने आए हैं जो पाकिस्तान को भविष्य की ओर ले जाएगा। इमरान ने 'नया पाकिस्तान' बनाने को लेकर जो भी वादे किए हों लेकिन उन्हें चुनाव आयोग के सामने दायर उस अर्जी पर भी जवाब देना होगा जिसमें उनकी ही पार्टी के पूर्व सहयोगी अकबर एस. बाबर ने गैरकानूनी तरीके से पार्टी फंड में 30 लाख डॉलर जमा करने की शिकायत की है। बाबर ने कहा है कि इमरान के दस्तखत से विदेश में पंजीकृत दो कंपनियों के जरिये यह रकम गैरकानूनी 'हुंडी' के जरिये पश्चिम एशिया से पार्टी फंड में जमा कराई गई है। लगता है कि यह रकम हवाला के जरिये 'पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ' (पीटीआई) के खाते में जमा कराई गई थी।

Committed To Excellence

हस्तांतरण हुआ है। खान अपने देश की राजनीति में 20 वर्ष से अधिक वक्त से सक्रिय हैं लेकिन शुरुआती 15 वर्ष तक तो वह हाशिये पर ही रहे। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उनकी भ्रष्टाचार विरोधी और उदार इस्लाम की राजनीति उनकी सुर्खियों में बनी रहने वाली निजी जिंदगी से मेल नहीं खाती थी। वर्ष 2011 में हालात बदले। लाहौर में उनके कार्यक्रम में आई भीड़ ने उनके विरोधियों को चौंका दिया। एक लोकप्रिय खिलाड़ी और पठान, पहचान और विरासत की राजनीति से मुक्त उनकी छवि ने उनके पक्ष में काम किया। वह देश के दो अन्य परिवारवादी दलों के सामने एकदम अलग नजर आए। एक बड़ा मोड़ 2013 में आया जब चुनाव में कमजोर प्रदर्शन के बाद उदारवाद कम होने लगा और दुनिया भर की खुफिया एजेंसियों ने तत्काल पाकिस्तान सैन्य और खुफिया तंत्र के साथ उनकी करीबी पर ध्यान दिया।

प्रधानमंत्री बनते ही खान के सामने पहली चुनौती होगी पाकिस्तान को सामाजिक और आर्थिक स्थिरता प्रदान करना। वित्त वर्ष 2018 में देश की अर्थव्यवस्था बमुश्किल एक फीसदी विकसित हुई। उसका चालू खाते का घाटा उसके जीडीपी के 5.7 फीसदी के बराबर है। निर्यात में नाम मात्र का इजाफा हुआ है और पाकिस्तानी रुपये के मूल्य में 18 फीसदी की गिरावट आई है। ऐसे में इस घाटे की भरपाई होना मुश्किल है। इस बीच पिछले पाँच वर्ष में विदेशी कर्ज 76 फीसदी बढ़कर 92 अरब डॉलर हो चुका है जो जीडीपी के 30 फीसदी के बराबर है। यह स्थिति तब है जबकि देश चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारे के निर्माण के ऋण का पुनर्भुगतान करने के लिए संघर्ष कर रहा है। माना जा रहा था कि इस गलियारे के बनने के बाद पाकिस्तान की आर्थिक तस्वीर बदल जाएगी। तमाम संकेतक इस बात की ओर इशारा करते हैं कि पाकिस्तान सन 1980 के दशक के बाद से 13वीं बार बेल आउट के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शरण में जाएगा। यह स्पष्ट नहीं है कि खान इन बातों से परिचित हैं या नहीं। जिन पत्रकारों ने आर्थिक पहलुओं को लेकर उन पर सवाल उठाए थे उनके मुताबिक वह विस्तृत ब्योरों में काम नहीं करते। उनकी पार्टी का एजेंडा पश्चिमी शैली के लोककल्याण का है जिसका बोझ अर्थव्यवस्था फिलहाल नहीं उठा सकती।

एक प्रश्न यह है कि क्या भारत को यह उम्मीद करनी चाहिए कि खान के प्रधानमंत्री बनने के बाद रिश्तों में कुछ बदलाव आएगा? यह सच है कि खान के ऑक्सफोर्ड और क्रिकेट के दिनों से भारत में उनके कई मित्र हैं लेकिन यह मानना ठीक नहीं होगा कि उनके प्रधानमंत्री बनने से भारत और पाकिस्तान के रिश्तों में कोई बड़ा बदलाव आएगा। बीते पाँच साल में उनकी रूढ़िवादिता बढ़ी है। उनके वक्तव्यों में पैगंबर की प्रधानता मुखर हुई है और ईशनिंदा कानून को समर्थन बताता है कि वह सेना और आईएसआई की भारत विरोधी और जिहाद समर्थक सोच पर चलेंगे, भले ही इस बीच देश अमेरिका से हटकर चीन पर निर्भर हो रहा हो। इस उम्मीद की कोई बड़ी वजह नहीं कि दोनों देशों के रिश्ते सुधरेंगे। खान का चुनाव भारत के प्रति पाकिस्तानी नीति में कोई बदलाव नहीं लाएगा। वह सेना से ही संचालित रहेगी। भारत के लिए बेहतर होगा कि वह पाकिस्तान के नए प्रधानमंत्री के साथ रिश्तों को लेकर खुलापन रखे।

गौर करने वाली बात यह है कि पिछले महीनों में पाकिस्तान के सत्ता प्रतिष्ठान ने पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के खिलाफ न्यायपालिका की कार्यवाही में काफी तेजी दिखाई है लेकिन इमरान के खिलाफ चल रहे मामलों में वैसी सक्रियता नजर नहीं आई है। लेकिन अब यह पुरानी खबर हो चुकी है। आज के समय में इमरान के सामने सबसे बड़ी चुनौती अर्थव्यवस्था के बेहतर प्रबंधन की है, ताकि वह इसे दोबारा पटरी पर ला सकें। पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था की खराब हालत को दुनिया से बहुत ही छिपाकर रखा हुआ है। पाकिस्तानी रुपये के लगातार होते अवमूल्यन और विदेशी मुद्रा भंडार में गिरावट के साथ ही बेलगाम होता जा रहा चालू खाता घाटा (करीब 12.5 अरब डॉलर) भी एक राष्ट्र के तौर पर पाकिस्तान के लिए बेचैनी और आत्म-सम्मान की क्षति का सबब है। हाल में ऐसी खबरें आई हैं कि चीन-पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर के निर्माण में लगे ठेकेदारों को दिए गए चेकों का फंड के अभाव में भुगतान नहीं हो सका। यह पाकिस्तान की खस्ता माली हालत को बयां करने के लिए काफी है। अगर यह मान लें कि अतिरिक्त बहुस्तरीय एवं द्विस्तरीय वित्तपोषण से इस आर्थिक संकट से निपटा जा सकता है तो उसके लिए भी पाकिस्तान को करीब 10 अरब डॉलर की जरूरत पड़ेगी। उसके लिए पाकिस्तान की नई सरकार के पास अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) से संपर्क साधने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाएगा।

साफ है कि आईएमएफ से यह रकम शर्तों के साथ ही मिलेगी। पाकिस्तान का जीडीपी के बरअक्स कर राजस्व अनुपात फिलहाल 14 फीसदी है और उसकी केवल एक चौथाई आबादी ही कर दायरे में है (20.7 करोड़ की आबादी में से 5.6 करोड़ लोग ही कर चुकाते हैं)। ऐसे में कर सुधारों का लागू होना लाजिमी है। कर अनुपालन से बचने के चक्कर में पूंजी का पाकिस्तान से फौरी निकासी की आशंका दिख रही है। अगर ऐसा होता है तो निकट भविष्य में पाकिस्तान का आर्थिक संकट गहरा भी सकता है। आईएमएफ पाकिस्तान से सरकारी स्वामित्व वाली इकाइयों के पुनर्गठन एवं निजीकरण की भी मांग कर सकता है। पाकिस्तान इंटरनेशनल एयरलाइंस, पाकिस्तान स्टील मिल्स, पाकिस्तान रेलवे और स्थानीय बिजली वितरण कंपनियों के निजीकरण की बात रखी जा सकती है।

इमरान की सरकार में वित्त मंत्रालय का जिम्मा संभवत: असद उमर संभालेंगे। स्थानीय मीडिया के मुताबिक उमर पाकिस्तानी कॉर्पोरेट इतिहास के बेहद चर्चित मुख्य कार्याधिकारियों (सीईओ) में से एक रहे हैं। सबसे बड़ी पाकिस्तानी कंपनी एन्ग्रो कॉर्पोरेशन से सेवानिवृत्ति ले चुके उमर ने कनाडा में एक्सॉन के साथ भी काम किया है। वह सब कुछ छोड़कर पाकिस्तान लौट आए और राजनीति में हाथ आजमाने लगे। इमरान की पार्टी की ऊर्जा, औद्योगिक एवं दक्षता विकास नीतियों का खाका तैयार करने में उनकी अहम भूमिका रही है। इसके अलावा उमर ने पीटीआई की वृहद आर्थिक एवं गरीबी उन्मूलन नीतियों को भी बनाने में दो बार के सांसद जहाँगीर खान तरीन के साथ मिलकर काम किया। पहले तरीन को ही वित्त मंत्रालय का सबसे तगड़ा दावेदार माना जा रहा था लेकिन लंदन की अपनी एक संपत्ति के बारे में जानकारी छिपाने के चलते उन्हें चुनाव लड़ने के अयोग्य करार दे दिया गया था।

उमर पाकिस्तान के आर्थिक संकट की सघनता का अहसास कराने के लिए दुनिया के सामने खुलकर अपनी बात रखने के पक्षधर हैं। वह चाहते हैं कि आईएमएफ चौथे अध्याय में वर्णित प्रावधानों के मुताबिक पाकिस्तान के साथ संपर्क रखे ताकि अर्थव्यवस्था के बारे में सटीक जानकारी दुनिया के सामने रखी जाए और फिर इसे पटरी पर लाने के लिए जरूरी उपायों के बारे में बहुस्तरीय एजेंसियों से मदद ली जाए। हालाँकि पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आईएसआई और करीबी दोस्त के तौर पर उभरे चीन की उदार नजर के बीच पाकिस्तान एकदम गलत रास्ते पर जा भी नहीं सकता है। कौन कहता है कि पाकिस्तान एक लोकतंत्र नहीं है?

GS World
Committed To Excellence

सारांश

- 270 सीटों पर हुए चुनाव में सरकार बनाने के लिए किसी भी राजनीतिक दल या दलों के गठबंधन को 137 सीटों पर जीत हासिल करना जरूरी है। रुझानों के अनुसार इमरान खान की पीटीआई ने नेशनल असेंबली की 119 सीटों पर अजेय बढ़त बना ली है, वहीं नवाज शरीफ की पाकिस्तान मुस्लिम लीग-नवाज (पीएमएल-एन) को मात्र 63 सीटें मिलती दिख रही हैं।
- आसिफ अली जरदारी और बिलावल भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी (पीपीपी) 38 सीटों पर सिमटती लग रही है। पाँच धार्मिक राजनीतिक दलों के गठबंधन मुत्तहिदा मजलिस-ए-अमल (एमएमए) को केवल 9 सीटों पर बढ़त हासिल है। अन्य छोटे-मोटे दल और स्वतंत्र उम्मीदवार 50 से अधिक सीटों पर दबदबा बनाए हुए हैं।
- पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री शाहिद खाकन अब्बासी, पंजाब प्रांत के मुख्यमंत्री शाहबाज शरीफ, खान अब्दुल गफ्फार खान के वंशज और आवामी नेशनल पार्टी (एएनपी) के राष्ट्रीय अध्यक्ष अफ्सांदयार खान और ख्वाजा आसिफ सहित देश के कई बड़े नेताओं को चुनाव में हार का सामना करना पड़ा है।
- नवाज शरीफ के करीब सारे मंत्री चुनाव हार गए। वे सेना पर आरोप लगाते हुए खुद को बेदाग साबित करने की कोशिश करते रहे और उन्हें उम्मीद थी कि लोग अपने वोटों से उन्हें इंसाफ दिलाएंगे, पर वह उनकी गलतफहमी साबित हुई।
- इमरान खान की पार्टी पाकिस्तान तहरीके इंसाफ यानी पीटीआई की इस जीत को कोई दूसरा दल मानने को तैयार नहीं दिख रहा। 2013 के आम चुनाव में इमरान खान एकमात्र ऐसे शख्स थे, जिन्होंने चुनावी नतीजों को खारिज किया था। इस बार भी वह एकमात्र ऐसे नेता है, जो इस नतीजे को स्वीकार कर रहे हैं।
- इमरान खान के नए वजीर-ए-आजम बनने के कयास चुनाव के पहले से ही लगाए जा रहे थे। उनके लिए पाकिस्तानी फौज ने पिच तैयार की थी। जाहिर है, जीत इमरान की पीटीआई की ही होनी थी। डीप स्टेट वहाँ की फौज व खुफिया एजेंसी आईएसआई के हुक्मरानों का वह गुट है, जो हुकूमत पर हावी रहता है।
- काफी संख्या में निर्दलीय उम्मीदवारों ने भी जीत हासिल की है। नियमों के तहत, उन्हें किसी न किसी पार्टी में शामिल होना होगा
- यह तय है कि सीनेट (ऊपरी सदन) में कम से कम तीन वर्षों तक पीटीआई को बहुमत नहीं मिलने वाला।
- इमरान खान की जीत में उनकी भारत-विरोधी छवि का भी योगदान है, जबकि पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ नई दिल्ली के साथ अच्छे संबंध के हिमायती दिखते थे।
- मुंबई हमलों के सरगना और लश्कर-ए-तैयबा के मुखिया आतंकी हाफिज सईद के मंसूबे बुलंद थे। उसने कुल दो सौ बहत्तर सीटों में से दो सौ पैंसठ पर अपने उम्मीदवार चुनाव मैदान में उतारे थे। उसने चुनाव आयोग से अपनी पार्टी मिल्ली मुस्लिम लीग को मान्यता न मिलने के बाद अल्लाह-ओ-अकबर पार्टी के बैनर तले अपने उम्मीदवार खड़े किए थे।
- पाकिस्तान चुनाव में बड़े पैमाने पर जोड़-तोड़ हुई है। इसमें शुरू से ही सीधा-सीधा फौज का हाथ रहा है। यह सिर्फ चुनावों की बात नहीं है, बल्कि बहुत पहले, जब टिकट दिये जा रहे थे, तब नवाज शरीफ की पाकिस्तान मुस्लिम लीग-नवाज (पीएमएल-एन) या फिर दूसरी कई पार्टियों के नेताओं को डरा-धमकाकर चुनाव लड़ने से सेना ने रोक दिया था, या उनको मजबूर किया कि इमरान खान की पार्टी या उनके समर्थन वाली किसी पार्टी से वे चुनाव लड़ें। इन सब घटनाओं के मद्देनजर वहाँ चुनाव का माहौल ऐसा बना दिया गया था कि लगे कि हर आदमी इमरान खान की पार्टी (पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ यानी पीटीआई) का समर्थन कर रहा है। रणनीति यह थी कि पीटीआई ज्यादा से ज्यादा सीटें ले आये, और बाकी समर्थन के लिए धार्मिक पार्टियों से समर्थन मिल जायेगा.
- जब नवाज शरीफ देश में लौटे थे, तब शायद पाकिस्तान के इतिहास में पहली बार हुआ था कि 'ये जो दहशतगर्दी है, इसके पीछे वर्दी है' जैसे नारे लगाये गये थे।
- बीस-बीस साल पुराने मामले निकालकर पीपीपी और पीएमएल-एन के उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोक दिया गया। कई जगहों पर, खासकर पंजाब के क्षेत्रों में, जान-बूझकर चुनावों में और परिणामों में देरी की गयी, क्योंकि पंजाब क्षेत्र में नवाज शरीफ का बड़ा वोटबैंक है।
- पिछले कुछ साल से विश्व भर में एक ट्रेंड देखने को मिला है कि जो भी पार्टी अत्यंत राष्ट्रवाद की बात करती है, जो सच और झूठ के फर्क को भुलाकर बात करती है, जो लोगों की बुनियादी आशाओं का शोषण करती हैं और धर्म के नाम पर राजनीति करती हैं, वे सत्ता में आती हैं।
- यही वजह है कि आज अमेरिका कहता है- 'वी विल मेक अमेरिका ग्रेट अगेन।' फ्रांस भी 'ग्रेट फ्रांस' बनाने की बात करता है। भारत में न्यू इंडिया की बात हो ही रही है। इसी तरह से पाकिस्तान में भी इमरान खान अब एक नये पाकिस्तान की बात कर रहे हैं, जिसके दम पर ही वे चुनावों में बढ़त हासिल कर सके हैं।

- इमरान ने 'नया पाकिस्तान' बनाने को लेकर जो भी वादे किए हों लेकिन उन्हें चुनाव आयोग के सामने दायर उस अर्जी पर भी जवाब देना होगा जिसमें उनकी ही पार्टी के पूर्व सहयोगी अकबर एस. बाबर ने गैरकानूनी तरीके से पार्टी फंड में 30 लाख डॉलर जमा करने की शिकायत की है। बाबर ने कहा है कि इमरान के दस्तखत से विदेश में पंजीकृत दो कंपनियों के जरिये यह रकम गैरकानूनी 'हुंडी' के जरिये पश्चिम एशिया से पार्टी फंड में जमा कराई गई है।
- तीन बार प्रधानमंत्री रह चुके नवाज शरीफ, जिन्हें पाकिस्तान की सर्वोच्च अदालत ने अयोग्य घोषित कर दिया था, को हाल ही में नेशनल अकाउंटेबिलिटी कोर्ट ने आय से अधिक संपत्ति के मामले में 10 साल की सजा सुनाई थी। इसके बाद उन्होंने वतन वापसी की और जेल जाना स्वीकार किया।
- पूर्व राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी ने नेशनल असेंबली को राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त करने की शक्ति को संविधान संशोधन द्वारा हटा देने की स्वीकृति पहले ही दे दी थी, इसलिए सेना को नवाज को हटाने के लिए देश की न्यायपालिका का सहारा लेना पड़ा।

पाकिस्तान

- वित्त वर्ष 2018 में देश की अर्थव्यवस्था बमुश्किल एक फीसदी विकसित हुई। उसका चालू खाते का घाटा उसके जीडीपी के 5.7 फीसदी के बराबर है।
- निर्यात में नाम मात्र का इजाफा हुआ है और पाकिस्तानी रुपये के मूल्य में 18 फीसदी की गिरावट आई है। ऐसे में इस घाटे की भरपाई होना मुश्किल है। इस बीच पिछले पाँच वर्ष में विदेशी कर्ज 76 फीसदी से बढ़कर 92 अरब डॉलर हो चुका है जो जीडीपी के 30 फीसदी के बराबर है।
- यह स्थिति तब है जबकि देश चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे के निर्माण के ऋण का पुनर्भुगतान करने के लिए संघर्ष कर रहा है। माना जा रहा था कि इस गलियारे के बनने के बाद पाकिस्तान की आर्थिक तस्वीर बदल जाएगी।
- तमाम संकेतक इस बात की ओर इशारा करते हैं कि पाकिस्तान सन 1980 के दशक के बाद से 13वीं बार बेल आउट के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शरण में जाएगा।
- पाकिस्तान का जीडीपी के बरअक्स कर राजस्व अनुपात फिलहाल 14 फीसदी है और उसकी केवल एक चौथाई आबादी ही कर दायरे में है (20.7 करोड़ की आबादी में से 5.6 करोड़ लोग ही कर चुकाते हैं)।
- पाकिस्तान 20 करोड़ की आबादी के साथ ये दुनिया का छठा बड़ी आबादी वाला देश है। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ उर्दू, पंजाबी, सिंधी, बलूची और पश्तो हैं। पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद और अन्य महत्त्वपूर्ण नगर कराची, लाहौर एवं रावलपिंडी हैं।
- पाकिस्तान के चार सूबे हैं: पंजाब, सिंध, बलोचिस्तान और खैबर-पख्तुनख्वा। कबाइली इलाके और इस्लामाबाद भी पाकिस्तान में शामिल हैं। इन के अलावा पाक अधिकृत कश्मीर (तथाकथित आजाद कश्मीर) और गिलगित-बल्तिस्तान भी पाकिस्तान द्वारा नियंत्रित हैं हालाँकि भारत इन्हें अपना भाग मानता है।
- सर्वप्रथम सन् 1930 में कवि मुहम्मद इकबाल ने द्विराष्ट्र सिद्धान्त का जिक्र किया था (हालाँकि 1923 में सावरकर द्वारा लिखी पुस्तक हिंदुत्व में भी द्विराष्ट्र का सिद्धांत पेश किया गया था) उन्होंने भारत के उत्तर-पश्चिम में सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब तथा अफगान (सूबा-ए-सरहद) को मिलाकर एक नया राष्ट्र बनाने की बात की थी। सन् 1933 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र चौधरी रहमत अली ने पंजाब, सिन्ध, कश्मीर तथा बलोचिस्तान के लोगों के लिए पाक्स्तान (जो बाद में पाकिस्तान बना) शब्द का सृजन किया।
- पाकिस्तान एक विकासशील देश है। सन् 2007 तक पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था 7 प्रतिशत की वार्षिक दर से घट रही थी। सन् 2005 तक पाकिस्तान पर 240 अरब अमेरिकी डॉलर का विदेशी कर्ज था जो अमेरिका द्वारा दिए गए ऋणमाफी और अन्य संस्थाओं द्वारा दिए गए वित्तीय मदद के कारण कम होता जा रहा है, पर अब अमेरिका पाकिस्तान की कोई सहायता नही करेगा।
- यहाँ की अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान कम होता जा रहा है। आज कृषि सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 2 फीसदी हिस्सा है जबकि 3 फीसदी सेवा क्षेत्र से आता है। अगस्त 2017 के आँकड़ों के अनुसार पाकिस्तान की कुल जनसंख्या 20,77,74,520 है (लगभग 20.7 करोड़) पाकिस्तान का स्थान विश्व में छठा है
- यहाँ का प्रमुख धर्म इस्लाम है और लगभग 96 प्रतिशत लोग मुस्लिम हैं (77 प्रतिशत सुन्नी और 20 प्रतिशत शिया)। इसके अलावा 1.85 प्रतिशत हिन्दू और 1.6 प्रतिशत ईसाई यहाँ के प्रमुख अल्पसंख्यक हैं।
- क्षेत्रफल के हिसाब से यह विश्व में 36वें स्थान पर है। अरब सागर से लगी इसकी सामुद्रिक सीमा रेखा कोई 1046 किलोमीटर लम्बी है। इसकी जमीनी सीमारेखा कुल 6,744 किलोमीटर लम्बी है- उत्तर-पश्चिम में 2430 कि.मी. अफगानिस्तान के साथ, दक्षिण पूर्व में 909 किमी ईरान के साथ, उत्तर-पूर्व में 512 कि.मी. चीन के साथ (गुलाम कश्मीर से लगी सीमा) तथा पूर्व में 2912 कि.मी. भारत के साथ है।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. पाकिस्तान के संदर्भ में 'मिलबस' प्राय: समाचारों में रहता है, संबंधित है:-
   (a) सेना से
   (b) राजनीतिक पार्टियों से
   (c) आतंकी शिविरों से
   (d) आई.एस.आई. से

   (उत्तर-A)

2. निम्नलिखित में किस पार्टी ने हालिया सम्पन्न चुनावों में हिस्सा नहीं लिया?
   (a) पाकिस्तान मुस्लिम लीग-नवाज
   (b) पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी
   (c) मजलिस-ए-अमल
   (d) पाकिस्तान तहरीक पार्टी

   (उत्तर-D)

3. भारत-पाकिस्तान की सीमा रेखा की लंबाई कितनी है?
   (a) 2900 कि.मी.
   (b) 3100 कि.मी.
   (c) 2600 कि.मी.
   (d) 2100 कि.मी.

   (उत्तर-A)

4. निम्नलिखित में से किस अंतर्राष्ट्रीय संगठन में पाकिस्तान सदस्य राष्ट्र नहीं है?
   (a) ब्रिक्स
   (b) सार्क
   (c) आसियान
   (d) यू.एन.ओ.

   (उत्तर-C)

5. पाकिस्तान में सत्ता परिवर्तन के बाद आई नई सरकार भारत के साथ विवादों को किस तरह निपटा पाएगी? चर्चा करें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. रेडिक्लिफ समिति नियुक्त हुई थी:-
   (a) भारत के अल्पसंख्यकों की समस्या के समाधान के लिए
   (b) स्वतंत्रता विधेयक को प्रभावी बनाने के लिए
   (c) भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमाओं के पुनर्गठन के लिए
   (d) पूर्वी बंगाल में दंगों की जाँच के लिए

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2014, उत्तर-C)

2. निम्नलिखित देशों पर विचार करें:-
   1. चीन
   2. फ्रांस
   3. भारत
   4. इजरायल
   5. पाकिस्तान

   उपर्युक्त में से कौन परमाणु हथियार सम्पन्न राज्य हैं और परमाणु आयुद्ध अप्रसार संधि के तहत चिन्हित हैं, जिसे सामान्यतया परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी) कहा जाता है।
   (a) केवल 1, 2
   (b) केवल 1, 3, 4, 5
   (c) केवल 2, 4, 5
   (d) 1, 2, 3, 4, 5

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-A)

3. आतंकवादी गतिविधियों और परस्पर अविश्वास ने भारत-पाकिस्तान संबंधों को धूमिल बना दिया है। खेलों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसी मृदु शक्ति किस सीमा तक दोनों देशों के बीच सद्भाव उत्पन्न करने में सहायक हो सकती है? उपयुक्त उदाहरणों के साथ चर्चा कीजिए। (200 शब्द)

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

4. चीन और पाकिस्तान ने एक आर्थिक गलियारे के विकास के लिए समझौता किया है। यह भारत की सुरक्षा के लिए क्या खतरा प्रस्तुत करता है? समालोचनापूर्वक परीक्षण कीजिए। (200 शब्द)

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2014)

GS World
Committed To Excellence

संरक्षण-गृहों की शर्मनाक सच्चाई

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (सामाजिक न्याय) से संबंधित है।

हाल में मुजफ्फरपुर एवं देवरिया स्थित बालिका-संरक्षण-गृहों में बालिकाओं के शोषण को लेकर जो तथ्य सामने आए हैं, उन्होंने हमारे समाज की असलियत एवं स्थिति को लेकर एक शर्मनाक सच्चाई को जाहिर किया है। हमारे समाज की मूल अवधारणा के आधार ही खतरे में दिखाई दे रहे हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'दैनिक ट्रिब्यून', 'प्रभात खबर', 'नवभारत टाइम्स', 'जनसत्ता', 'नई दुनिया' तथा 'पत्रिका' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

समाजसेवा के नाम पर समाज विरोधी काम

(दैनिक जागरण)

बिहार के मुजफ्फरपुर के बाद उत्तर प्रदेश का देवरिया जिन शर्मनाक कारणों से चर्चा में है उससे यही पता चल रहा है कि अपने देश में बालिका अथवा नारी संरक्षण गृह चलाने का काम धूर्त और लंपट किस्म के लोग भी कर रहे हैं। इससे भी चिंताजनक बात यह है कि ऐसे समाज विरोधी तत्त्व पहुँच वाले भी साबित हो रहे हैं। जैसे यह साफ है कि मुजफ्फरपुर के बालिका आश्रय गृह का संचालन एक खराब छवि और दागदार अतीत वाले शख्स के हाथों में थी वैसे ही यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि देवरिया के नारी संरक्षण गृह की कमान भी संदिग्ध किस्म के लोगों के हाथ पहुँच गई थी। वे समाजसेवा के नाम पर किस तरह समाज विरोधी काम करने में लगे हुए थे, इसका पता इससे चलता है कि देवरिया के नारी संरक्षण गृह के बारे में लगातार मिल रही शिकायतों के कारण उसे बंद करने के निर्देश देने पड़े थे।

जिले के अधिकारियों ने इस निर्देश की अनदेखी करके नाकारापन का परिचय देने के साथ ही यह संदेह भी पैदा किया कि कहीं उन्होंने ढोंगी समाजसेवियों से साठ-गांठ तो नहीं कर ली थी? सच्चाई जो भी हो, यह अच्छा हुआ कि उत्तर प्रदेश सरकार ने बिना किसी देरी के देवरिया के जिला अधिकारी समेत अन्य संबंधित अधिकारियों के खिलाफ सख्ती दिखाई और भी अच्छा होगा यदि उन्हें उनकी नाकामी के लिए कुछ और दंड दिया जाए। तबादले या निलंबन को यथोचित दंड नहीं कहा जा सकता। समाज और देश को शर्मिंदा करने वाले ऐसे मामलों में सबक सिखाने वाली कार्रवाई की जानी चाहिए-न केवल संरक्षण गृह चलाने वालों के खिलाफ, बल्कि संबंधित अधिकारियों के खिलाफ भी।

यह शासन-प्रशासन की नाकामी ही है कि ऐसे तत्त्व आश्रय स्थल चलाते पाए जा रहे हैं जो एक तरह से सभ्य समाज के लिए शत्रु हैं। आखिर जिला प्रशासन इतने नाकारा कैसे हो सकते हैं कि वे संदिग्ध गतिविधियों वाले किसी संरक्षण गृह की हकीकत न जान सकें? इससे लज्जाजनक और कुछ नहीं हो सकता कि बालिका अथवा नारी संरक्षण गृह में आश्रय लेने वाली लड़कियों और महिलाओं को देह व्यापार में धकेल दिया जाए।

यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि मुजफ्फरपुर और देवरिया के संरक्षण गृहों की शर्मिंदा करने वाली तस्वीर सामने आने के बाद बिहार और उत्तर प्रदेश ही नहीं, देश के अन्य राज्य भी इस तरह के आश्रय स्थलों की गहन निगरानी करना सुनिश्चित करें। यह इसलिए आवश्यक

यौन हिंसक समाज में स्त्री (अमर उजाला)

किसी भी समाचार का केंद्रीय विषय बलात्कार बन जाए, तो यह मनोचिकित्सकों और सभ्य नागरिकों के लिए चिंता का विषय है। छोटी-छोटी बच्चियों से बलात्कार और उनकी हत्या समाज के कुछ लोगों में बढ़ती हैवानियत का प्रमाण है। सरकारी आँकड़ों पर ही विश्वास करें, तो वर्ष 2014 में कुल 3,39,954, वर्ष 2015 में 3,29,243 और 2016 में 3,38,954 स्त्रियों के साथ अपराध के मामले पंजीकृत हुए हैं।

इनमें से बलात्कार के आँकड़े प्रति वर्ष 35 से 36 हजार के लगभग हैं और सर्वाधिक शिकार 18 से 30 वर्ष की महिलाएँ हैं। आज शोहदों के डर से लड़कियाँ कॉलेज जाना छोड़ रही हैं। वे घर से अकेले निकलने में डरती हैं।

थॉमसन रॉयटर्स फाउंडेशन के अनुसार, औरतों के लिए भारत सबसे खतरनाक देश है। 2011 में भारत चौथा सबसे खतरनाक देश था। इस आकलन को सरकार ने गलत बताया है। संभव है, सरकार का कहना सही हो, परंतु इस नतीजे पर पहुँचने वाली संस्था ने पाँच बिंदुओं पर गहन सर्वेक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला है। सर्वेक्षण का पहला बिंदु यह है कि समाज में महिलाओं का स्वास्थ्य कैसा है? स्वास्थ्य का मानव जीवन स्तर से गहरा नाता होता है। ऐसे में अगर वहाँ स्त्रियाँ स्वस्थ हैं, तो निश्चय ही समाज का जीवन स्तर बेहतर है। बेहतर जीवन स्तर अपराध को कम करता है।

दूसरा, आर्थिक संसाधनों के मामलों में महिलाओं के साथ भेदभाव का स्तर क्या है? आर्थिक संसाधन स्त्री को स्वावलंबी बनाते हैं और वह अकारण अनुचित दबावों से मुक्त रह सकती है।

तीसरा मानक यह है कि समाज विशेष के रीति-रिवाजों में महिलाओं को कितनी समानता मिली हुई है? रीति-रिवाज, घर और समाज की संस्कृतियों को दर्शाते हैं। अगर वहाँ स्त्री को समान अधिकार प्राप्त है, उसके साथ भेदभाव नहीं किया जा रहा, तो इसका मतलब है कि समाज में स्त्री पुरुष के समान सहकर्मी है।

चौथा बिंदु यह कि उस समाज में यौन अपराध के आँकड़े क्या तस्वीर प्रस्तुत करते हैं? और अंतिम बिंदु यह कि स्त्रियों के प्रति अन्य अपराध के आँकड़े (घरेलू हिंसा, उनकी तस्करी और अपहरण) क्या तस्वीर प्रस्तुत करते हैं? उपरोक्त बिंदुओं के मूल्यांकन में कुल मिलाकर दुनिया में हमारी छवि प्रभावित हुई है, जो हमारे लोकतांत्रिक देश के लिए बदनुमा दाग से कम नहीं है।

है, क्योंकि ऐसे स्थल आम तौर पर उपेक्षित ही अधिक होते हैं। दुर्भाग्य से इन स्थलों के प्रति उपेक्षा का भाव शासन-प्रशासन में ही नहीं बल्कि समाज में भी है।

यह संभव नहीं जान पड़ता कि संरक्षण गृह में घोर अनुचित काम होते रहें और आसपास के लोगों को उनके बारे में कुछ भनक न लगे। किन्हीं कारणों से संरक्षण या आश्रय गृहों में गुजर-बसर करने वाले बच्चों, लड़कियों और महिलाओं को गरिमामय जीवन जीने का अवसर मिले, इसकी चिंता सरकारों के साथ समाज को भी करनी चाहिए। अगर शासन के साथ समाज अपने हिस्से की जिम्मेदारी सही तरह निभा रहा होता तो शायद मुजफ्फरपुर और देवरिया में शर्मसार करने वाले मामले सामने नहीं आए होते।

शर्मसार इंसानियत (दैनिक ट्रिब्यून)

निश्चित रूप से यह मानवता के प्रति अपराध ही है कि जिस आश्रय स्थल पर किस्मत की मारी लड़कियाँ सिर छिपाने के लिये पहुँचीं वहीं उनकी अस्मिता से खिलवाड़ किया गया। यूं तो हरियाणा समेत कई राज्यों में बालिका संरक्षण गृहों में संगठित रूप से शारीरिक शोषण की खबरें आती रही हैं मगर बिहार के मुजफ्फरपुर में समाज कल्याण विभाग के संरक्षण में एक समाजसेवी संस्था द्वारा चलाये जा रहे बालिका गृह में 44 में से 34 लड़कियों की मेडिकल जाँच के बाद यौन शोषण की आशंका पुलिस जता रही है। यहाँ तक कि विरोध करने वाली बच्चियों को यातनाएं दी गई। एक ऐसी बच्ची की हत्या करके गाड़ देने के आरोप बालिका गृह की एक लड़की न लगाये। जिस पर बालिका गृह के परिसर में खुदाई भी की गई। चिंता की बात यह है कि वर्ष 2013 से 2018 के बीच छह लड़कियाँ गायब हुई। यह मामला तब उजागर हुआ जब टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज की तरफ से सोशल ऑडिट हुआ। तेरह साल से 18 साल की लड़कियों के साथ गलत काम होने की आशंका के बाद समाज कल्याण विभाग की ओर से मुजफ्फरपुर में रिपोर्ट लिखाई गई। इस मामले में बालिका गृह के संचालक के साथ दस लोगों को गिरफ्तार किया गया है, जिनमें सात महिलाएँ शामिल हैं।

इस घटनाक्रम का एक दुखद पहलू यह भी है कि एक बच्ची ने एक महिला कर्मचारी तक पर शोषण का आरोप लगाया है। अभी इस मामले की परतें खुलेंगी तो कई सफेदपोश सामने आएंगे। यह मामला इसलिए गंभीर है क्योंकि जिस बालिका गृह पर बालिकाओं के यौन शोषण व उत्पीड़न के आरोप लगे हैं, वह सरकार की मदद से चल रहा था। कभी किसी संस्था ने यह पता लगाने की कोशिश नहीं की कि लाचारी की मारी बच्चियों के साथ क्या हो रहा है। जैसी की उम्मीद थी, इस मुद्दे पर जमकर राजनीति हो रही है। संसद से सड़क तक इस मुद्दे पर नीतीश सरकार को लपेटकर राजनीति की जा रही है। मगर सवाल यह है कि पुलिस कार्रवाई से पहले ये राजनीतिक दल कहाँ थे और कोई नेता इन बच्चियों को नरक से मुक्त कराने क्यों नहीं आया। निश्चित रूप से यह संचालकों द्वारा संचालित संगठित अपराध तो है ही मगर सवाल आर्थिक मदद देने वाले सरकारी विभागों का भी है कि क्यों उन्होंने समय-समय पर जाँच कर बच्चियों के साथ होने वाले अत्याचार का संज्ञान नहीं लिया। बिहार में कई और ऐसे बालिका सुधार गृहों से यौन शोषण व उत्पीड़न की खबरें आ रही हैं। अब इस मुद्दे को लेकर पटना हाई कोर्ट में दो याचिकाएँ दायर की गई हैं।

बलात्कार की बढ़ती घटनाओं और यौन हिंसा को महज कानून बनाकर खत्म नहीं किया जा सकता। शहर से लेकर गांव-देहातों में जो अशिक्षित और गैरबराबरी का समाज निर्मित हो रहा है, वहाँ हैवानियत पर नियंत्रण के सामाजिक बंधन टूट रहे हैं। गाँव-देहातों में थानों के सहारे कानून का पालन कम होता है और स्थानीय कारक ज्यादा प्रभावी होते हैं। ऐसे में समाज को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने के लिए सामाजिक न्याय स्थापित करने की दिशा में तेजी से काम करना होगा।

सरकार ने बारह साल तक की बच्चियों से बलात्कार करने वाले को मृत्युदंड देने का विधेयक तैयार किया है, जो शायद इसी मानसून सत्र में पारित भी हो जाए, मगर हमें यह भी सोचना होगा कि समाज के अंदर पनपती इस विकृत सोच से निपटने के लिए हम क्या कर सकते हैं। देश के समाज सुधारकों, बुद्धिजीवियों, मनोचिकित्सकों और साहित्यकारों, सभी के साथ मिल-बैठकर इस सामाजिक विकार को शीघ्र दूर करने की पहल करनी चाहिए, अन्यथा दुनिया की नजरों में हम बहुत घिनौने बन जाएँगे।

यह दाग अच्छा नहीं है (प्रभात खबर)

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने मुजफ्फरपुर में बालिका गृह में दुष्कर्म मामले में सीबीआइ जाँच का उचित फैसला लिया है, जिसे सराहा जाना चाहिए. इससे उनकी मंशा स्पष्ट होती है कि वह इस मामले में कुछ दबाना-छुपाना नहीं चाहते, जबकि बिहार पुलिस के बयानों से ऐसा लग रहा था कि वह सीबीआई जाँच के पक्ष में नहीं थी। कुछ दिन पहले ही बिहार के पुलिस महानिदेशक ने कहा था कि वह पुलिस जाँच से पूरी तरह संतुष्ट हैं और उन्हें इसमें कोई खामी नजर नहीं आ रही है, इसलिए सीबीआई या अन्य किसी एजेंसी से इसकी जाँच किये जाने की जरूरत नहीं है। सीबीआइ जाँच के फैसले के बाद उम्मीद की जा रही है कि जो भी अपराधी हैं, वे जल्द ही सलाखों के पीछे होंगे, ताकि लोगों तक यह स्पष्ट संदेश जाए कि ऐसे घृणित अपराध करने वाले लोग बच कर निकल नहीं सकते.

मुजफ्फरपुर की घटना सिर्फ कानून-व्यवस्था से जुड़ा मामला नहीं है। यह घटना समाज के पतन को भी दर्शाती है। आपने देखा होगा, आए दिन देश के किसी-न-किसी हिस्से से दुष्कर्म की खबर सामने आती है, लेकिन सबसे चिंताजनक बात यह है कि समाज में इसको लेकर खास प्रतिक्रिया नहीं होती है। मौजूदा दौर में नैतिकता का पतन हो गया है, लोगों ने संस्कार और मूल्यों को तिलांजलि दे दी है। बेसहारा बच्चियों से दुष्कर्म समाज में बढ़ती संवेदनहीनता और अवमूल्यन को दर्शाता है। यह घटना पूरे बिहार के दामन पर एक दाग है। ऐसे संवेदनशील विषय पर राजनीति नहीं होनी चाहिए. यह बिहार की प्रतिष्ठा से जुड़ा मामला है। सभी राजनीतिक दलों और सर्वसमाज को इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि कैसे यह वर्षों तक चलता रहा और इसकी भनक तक नहीं लगी। सूचनाक्रांति के इस दौर में भी इसका सामने न आना अचंभित करता है। जब मुंबई की संस्था टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइसेंज के एक दल ने मुजफ्फरपुर के बालिका गृह का सोशल ऑडिट किया, तब लड़कियों के यौन शोषण का खुलासा हुआ। इस घटना की गंभीरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि बालिका गृह की 42 में से 34 बच्चियों से दुष्कर्म की बात सामने आयी है। दुष्कर्म की घटना ऐसी जगह पर हुई है, जो अनाथ और बेसहारा बच्चियों का आश्रय स्थल था, जहाँ सरकार और एनजीओ की मदद से उनको अपने पैरों पर खड़े होने में मदद की जानी थी।

GS World
Committed To Excellence

सख्त कानून के साथ चुस्त कार्रवाई जरूरी

(दैनिक ट्रिब्यून)

किशोरियों से बलात्कार के अपराध में दोषियों को मृत्युदंड देने संबंधी केन्द्रीय कानून अभी लोकसभा से पारित हुआ है। इसी बीच बिहार के मुजफ्फरपुर में बालिका गृह में किशोरियों के साथ लंबे समय तक बलात्कार और उनका गर्भपात कराने का मामला चर्चा में आ गया है। निर्भया कांड के बाद कठोरतम सजा देने के प्रावधान के बावजूद आज तक ऐसे जघन्य अपराधों की संख्या में कमी नहीं आई है।

कठुआ में आठ साल की बच्ची और इसी दौरान उ.प्र. के उन्नाव में एक महिला से बलात्कार की घटना के बाद एक अध्यादेश जारी किया गया था। अब सरकार ने लोकसभा में अपराध कानून (संशोधन) विधेयक पारित किया है जो इस अध्यादेश का स्थान लेगा। सरकार ने कानून में बदलाव करके ऐसे अपराधों की जाँच दो महीने के भीतर पूरी करने और छह महीने में फैसला सुनाने की व्यवस्था की है लेकिन इसके लिये पर्याप्त संख्या में समुचित जाँच अधिकारियों, लोक अभियोजकों की नियुक्ति करनी होगी और यह काम राज्य सरकार को करना होगा।

इस कानून में 12 साल की आयु तक की बच्चियों से बलात्कार के अपराध में कम से कम 20 साल की कैद और इस आयु वर्ग की बच्चियों से सामूहिक बलात्कार के अपराध में जीवन पर्यंत कैद या मृत्युदंड का प्रावधान किया गया है। इसी तरह से 16 साल से कम आयु की किशोरी से बलात्कार के जुर्म में कम से कम दस साल की सजा का प्रावधान है, जिसकी अवधि 20 साल अथवा उसे बढ़ाकर जीवनपर्यंत कैद की जा सकती है।

इस बीच, थोड़ा संतोष देने वाली खबर मध्य प्रदेश से मिली है जहाँ ग्वालियर और कटरी की त्वरित अदालतों ने आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल होने के मात्र 36 और 46 दिन के भीतर ही सुनवाई पूरी की और इन सभी को मौत की सजा सुनाई। इतनी तेजी से सुनवाई पूरी होने में निश्चित ही पुलिस की तत्परता से जाँच पूरी करने का भी योगदान रहा है। अगर पुलिस इतनी संवेदनशीलता से बच्चों और किशोरियों के साथ होने वाले यौन अपराधों की जाँच करने लगे तो निश्चित ही ऐसे अपराधों में कमी आ सकती है।

मध्य प्रदेश के बाद राजस्थान और हरियाणा में बच्चियों और 12 साल तक की किशोरियों से बलात्कार के अपराध में मौत की सजा का प्रावधान करने के बाद केन्द्र सरकार ने भी इस तरह के अपराध के लिए मृत्युदंड संबंधी एक अध्यादेश अप्रैल में जारी किया था। इसके बावजूद विकृत मानसिकता वाले आपराधिक तत्त्वों पर इसका कोई असर नजर नहीं आया बल्कि यौन हिंसा की शिकार बच्चियों की हत्याओं का सिलसिला बढ़ गया है। पिछले दो-तीन साल के दौरान बच्चियों और किशोरियों के यौन शोषण और उनके साथ सामूहिक बलात्कार की घटनाओं में जिस तरह से वृद्धि हुई है, उसे देखते हुए ऐसा लगता है कि ऐसे आरोपियों पर त्वरित मुकदमा चलाने और उन्हें सजा देने की जरूरत है।

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ का नारा धीरे-धीरे शर्मिंदगी का सबब बनता जा रहा है क्योंकि आँकड़े बताते हैं कि 2014 से बच्चियों से बलात्कार और यौन हिंसा के अपराध निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो ने हालाँकि अभी तक 2017 के आँकड़े जारी नहीं किये हैं लेकिन 2018 में ऐसे अपराधों में तेजी से हो रही वृद्धि बेहद चिंताजनक तस्वीर पेश कर रही है। वर्ष 2018 के पहले छह महीनों में कठुआ, जींद, पानीपत, सूरत तथा राजस्थान के झालावाड़ जिलों में बच्चियों के साथ बेहद घृणित और बर्बर तरीके से हुए अपराध किसी भी सभ्य समाज को शर्मिंदा करने के लिये पर्याप्त हैं।

देश में बच्चों के खिलाफ हिंसा और यौन शोषण के मामलों पर गौर करें, तो वे चिंतित करते हैं। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के 2015 के आँकड़ों के अनुसार बच्चों के खिलाफ हिंसा के कुल 94,172 मामले दर्ज किये गये। इनमें से एक तिहाई मामलों में बच्चों को दुष्कर्म के लिए निशाना बनाया गया था। विशेषज्ञों का मानना है कि यह संख्या और अधिक हो सकती है, क्योंकि ऐसे अनेक मामले भय, पारिवारिक प्रतिष्ठा और जानकारी के अभाव में दर्ज ही नहीं होते हैं। 2015 के आँकड़ों के अनुसार महाराष्ट्र में सर्वाधिक 13,921, मध्य प्रदेश में 12,859 और उत्तर प्रदेश में 11,420 ऐसे अपराध के मामले दर्ज किये गये। कुछ साल पहले केंद्रीय महिला एवं बाल कल्याण विभाग ने एक अध्ययन में पाया था कि अधिकांश मामलों में शोषण करने वाला परिचित व्यक्ति ही होता है। यह तथ्य भी सामने आया है कि यौन शोषण के लिए बड़ी संख्या में बालक भी निशाना बनाये जाते हैं।

बाल कल्याण विभाग के अध्ययन में पता चला कि विभिन्न प्रकार के शोषण में पाँच से 12 वर्ष तक की उम्र के छोटे बच्चे सबसे अधिक शिकार होते हैं। इसमें शारीरिक, यौन और भावनात्मक शोषण शामिल है। आमतौर पर माना जाता है कि बाल शोषण का मतलब होता है बच्चों के साथ शारीरिक दुर्व्यवहार और यौन शोषण, लेकिन बच्चे के साथ किया गया हर ऐसा व्यवहार भावनात्मक शोषण के दायरे में आता है, जिससे उसके ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता हो अथवा जिससे बच्चा मानसिक रूप से भी प्रताड़ित महसूस करता हो। भारत में भावनात्मक शोषण को लेकर असंवेदनशीलता की स्थिति है और इसे सिरे से ही नकार दिया जाता है। पुरानी पीढ़ी के लोग अक्सर कहते मिल जायेंगे कि मारपीट ही बच्चों को सुधारने का एकमात्र तरीका है, जबकि जमाना बदल गया है। भावनात्मक शोषण को बच्चियां खास तौर से महसूस करती हैं। उनकी पढ़ाई-लिखाई से लेकर स्वास्थ्य तक की परिवार अनदेखी करते हैं और बालकों को प्रमुखता दी जाती है। महिला एवं बाल कल्याण विभाग के अध्ययन में पाया गया है कि बालक और बालिकाओं, दोनों ने भावनात्मक शोषण का सामना करने की बात स्वीकार की. अध्ययन के 83 प्रतिशत मामलों में बच्चों ने माता-पिता पर भावनात्मक शोषण का आरोप लगाया। 48.4 प्रतिशत लड़कियों ने कहा कि अगर वे लड़का होतीं, तो अच्छा होता।

कुछ समय पहले महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने प्लान इंडिया की ओर से तैयार की गयी रिपोर्ट जारी की। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में महिलाओं के लिए सबसे सुरक्षित राज्य गोवा है। सुरक्षा के मामले में इसके बाद केरल, मिजोरम, सिक्किम और मणिपुर आते हैं। चिंता की बात यह कि जिन राज्यों में महिलाएँ सबसे अधिक असुरक्षित हैं, उनमें बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश और देश की राजधानी दिल्ली शामिल हैं। राज्यों के लिए लिंग भेद सूचकांक यानी जेंडर वल्नरेबिलिटी इंडेक्स (जीवीआई) तैयार किया और उस कसौटी पर सभी राज्यों को कसा गया। इसके नतीजों के अनुसार गोवा महिलाओं के लिए सबसे सुरक्षित राज्य है, जबकि देश की राजधानी को महिलाओं की सुरक्षा की दृष्टि से खराब राज्यों में से एक है। गोवा का स्थान न सिर्फ महिलाओं की सुरक्षा की दृष्टि से सबसे ऊपर है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका के मामले में भी वह अव्वल है। केरल दूसरे नंबर पर है। महिला सुरक्षा के मामले में बिहार काफी पीछे है। इस रिपोर्ट के अनुसार बिहार में महिलाएँ और बेटियां अन्य राज्यों की तुलना में सबसे असुरक्षित और कम स्वस्थ पायी गयीं. शिक्षा के मामले में भी वे पिछड़ी हैं। रिपोर्ट के मुताबिक 39 फीसदी लड़कियों की शादी विवाह की वैधानिक उम्र (18 वर्ष) से पहले शादी हो जाती है और लगभग 12 फीसदी 15 से 19 वर्ष की उम्र में या तो गर्भवती हो जाती हैं या फिर मां बन जाती हैं, लेकिन यह भी सही

Committed To Excellence

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आँकड़ों के अनुसार बच्चियों से अपराध की घटनाओं में 2016 में जबरदस्त वृद्धि हुई। इस दौरान यौन अपराध से बच्चों का संरक्षण कानून (पोक्सो) के तहत 19765 मामले दर्ज किये गये जबकि 2015 में इस अवधि में भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और पोक्सो कानून के अंतर्गत 10,854 बलात्कार के मामले दर्ज हुए थे। बच्चियों से बलात्कार और यौन हिंसा के मामले में मध्य प्रदेश सबसे आगे है जबकि इसके बाद उत्तर प्रदेश, ओडिशा और तमिलनाडु का स्थान रहा है।

साथ ही सरकार को अश्लील वीडियो क्लिप और विकृत मानसिकता वाली सामग्री पेश करने वाली वेबसाइट्स पर यथाशीघ्र प्रतिबंध लगाने के बारे में तेजी से निर्णय लेना चाहिए। इस मामले में उच्चतम न्यायालय भी काफी सख्त रूख अपनाये हुए है। उम्मीद की जानी चाहिए कि लोकसभा में पारित अपराध कानून (संशोधन) विधेयक संसद के मानसून सत्र के दौरान ही पारित हो जायेगा।

स्त्री का भय (जनसत्ता)

सरकारें महिला सुरक्षा के दावे करती नहीं थकतीं, पर हकीकत यह है कि महिला शोषण, हिंसा और बलात्कार जैसी जघन्य घटनाएँ रुकने का नाम नहीं ले रहीं। हालाँकि स्त्री के साथ किसी भी तरह के दुर्व्यवहार के खिलाफ कड़े कानून हैं, फिर भी इस प्रवृत्ति पर अंकुश नहीं लग पा रहा। हरियाणा में चलती कार में नाबालिग लड़की के साथ हुआ कथित बलात्कार इसका ताजा उदाहरण है। इस घटना के बाद पीड़िता सदमे में है। पर पुलिस का कहना है कि जिस आरोपी ने लड़की के साथ कथित तौर पर बलात्कार किया, वह लड़की का फेसबुक पर दोस्त था और उसने लड़की को एक मंदिर के पास मिलने को बुलाया था। जब लड़की मिलने गई, तो उसने उसे खींच कर कार में बिठा लिया और उसके साथ जबर्दस्ती की। हालाँकि पुलिस ने आरोपी को गिरफ्तार कर लिया है। यह पहला मामला नहीं है, जब कुछ अपराधी किस्म के लोग इस तरह लड़कियों को दोस्त बनाते और फिर उनका शोषण करते हैं। हरियाणा में महिलाओं के साथ इस तरह की घटनाएँ रुकने का नाम नहीं ले रहीं। हरियाणा वह प्रदेश है, जहाँ से बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान की शुरुआत हुई थी और भरोसा जगा था कि वहाँ महिलाएँ सुरक्षित महसूस कर सकेंगी।

विचित्र है कि ऐसी घटनाओं में पुलिस प्राय: रसूखदार आरोपियों के पक्ष में जाँच रिपोर्ट पेश कर देती या फिर पीड़िता पर दबाव डाल कर समझौता करने को विवश करती है। हालाँकि यह प्रवृत्ति केवल हरियाणा तक सीमित नहीं है, पर इससे वहाँ की सरकार को ऐसी घटनाओं से पल्ला झाड़ने का अवसर नहीं मिल जाता। हैरानी की बात यह भी है कि जब भी ऐसी घटना होती है, सरकारें तत्काल दलील देने लगती हैं कि ऐसा पहले की सरकारों के समय भी होता आया है। यह बहुत लचर और किसी भी रूप में स्वीकार न की जा सकने वाली दलील है। पिछली सरकारों ने जो कुछ गलत काम किए उन्हें सुधारने के लिए ही लोगों ने नई सरकार को विश्वासमत दिया। अगर वह भी वही करने लगे, जो पिछली सरकारें करती आई हैं, तो फिर उनमें और नई सरकार में क्या अंतर रह जाएगा! हरियाणा में भी नई सरकार आने के बाद लोगों को उम्मीद बनी थी कि वह कानून-व्यवस्था, महिलाओं की सुरक्षा आदि के मामले में बेहतर काम करेगी, पर उसका रवैया भी ढीला-ढाला ही बना हुआ है!

कानून-व्यवस्था राज्य सरकारों का मामला है। वे इसमें विफलता का ठीकरा किसी और के सिर पर नहीं फोड़ सकतीं। हरियाणा में महिलाओं की सुरक्षा को लेकर कोई उत्साहजनक पहल नहीं दिखाई दे रही, तो इसके लिए वह पिछली सरकारों की गलतियों की आड़ नहीं ले सकती। वहाँ शुरू में दावा किया गया था कि बलात्कार जैसी घटनाओं में आरोपी चाहे है कि महिलाओं और बेटियों को लेकर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार बेहद संवेदनशील हैं और बिहार सरकार उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य को लेकर अनेक कार्यक्रम चला रही है। हालाँकि इस सर्वेक्षण में इसके परिणाम दिखायी नहीं देते हैं, लेकिन उम्मीद है कि आगामी सर्वेक्षणों में सरकार के प्रयासों के सकारात्मक परिणाम दिखने लगेंगे.

यह सरकारी नरक (नवभारत टाइम्स)

बिहार के मुजफ्फरपुर शहर में स्थित सरकारी बालिका गृह में असहाय लड़कियाँ जो नरक भुगत रही थीं, उसके ब्यौरे उजागर होने के साथ ही हर भारतीय नागरिक का सिर शर्म से झुकता जा रहा है। बरसों से यह सरकारी बालिका गृह नियम-कानूनों को ठेंगा दिखाते हुए चलाया जाता रहा और निगरानी व निरीक्षण इसके लिए निरर्थक शब्द ही बने रहे। किसी भी स्तर पर कभी जरा सी भनक तक नहीं लगी कि छोटी-छोटी बच्चियों को वहाँ किस दुर्दशा से गुजरना पड़ रहा है।

इसके संचालक की ऊंची राजनीतिक पहुँच पूरे सरकारी तंत्र पर इस कदर हावी रही कि न केवल उसका बालिका गृह का टेंडर सुरक्षित रहा, बल्कि नए-नए ठेके भी उसे बेरोक-टोक मिलते रहे। इस बालिका गृह की असलियत का खुलासा टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज (टिस) के उन छात्रों ने खोली, जिनकी रिपोर्ट- संचालकों के मुताबिक- ध्यान देने लायक ही नहीं है। हैरत की बात यह है कि इस रिपोर्ट के बाद बालिका गृह में रह रही लड़कियों ने जज के सामने बयान देकर इसकी सच्चाई पर अपनी मुहर लगा दी, लेकिन सरकार के संज्ञान में होने के बावजूद यह रिपोर्ट इसी संचालक को पटना में भिखारियों के उद्धार का एक और ठेका हथियाने से नहीं रोक पाई। खबर सार्वजनिक होने के बाद ही इस ठेके को रद्द किया गया। समाज में अनाथ लड़के-लड़कियाँ, वृद्ध, अपाहिज आदि अनेक ऐसे समूह हैं जो बेहद अमानवीय स्थितियों में जीवन बिताने को मजबूर हैं।

मगर जब इनके उद्धार के नाम पर बनी और सरकारी पैसों से चलने वाली संस्थाएं भी इनके साथ ऐसा सलूक करने लग जाएँ तो उम्मीद के लिए कोई जगह ही नहीं बचती। जब सरकारी संरक्षण में रह रही सात-आठ साल की बच्चियों को भी 'गंदे काम' से खुद को बचाने के लिए अपने आपको घायल करना पड़े, तो इस संस्था का संचालन करने वाली सरकार के पास अपने बचाव में कहने को क्या रह जाता है? और हाँ, ऐसे मामले सिर्फ एक शहर या एक राज्य तक सीमित नहीं हैं। लिहाजा कम से कम अब से राजनीतिक गुणा-भाग छोड़कर निराश्रित बच्चों, खासकर बच्चियों की देख-रेख के लिए जिम्मेदार देश की सभी संस्थाओं के माहौल की पुख्ता जाँच कराई जाए, ताकि सेक्स स्लेव बनना उनकी नियति न बने और हमें भी इस समाज में जिंदा रहने पर शर्मिंदगी न महसूस हो।

संरक्षण गृह में शोषण (अमर उजाला)

मुजफ्फरपुर के एक 'संरक्षण गृह' में 44 में से 34 नाबालिग लड़कियों के साथ हुए बलात्कार की खबर हमारे सामने कई प्रश्न प्रस्तुत करती है। क्या समाज हमेशा इतना क्रूर था या वर्तमान में क्रूरता बढ़ी है? पहले जो कुछ होता था, उसकी छूट समाज और सत्ता-तंत्र की ओर से दी जाती थी। बड़े लोग किसी के साथ कुछ भी कर सकते थे। पर कानून में लाए गए परिवर्तनों के बाद कुछ नियंत्रण लगाए गए। ऐसा हमारे देश में भी हुआ। जबकि हमारी परंपरा में दंड तय करने के लिए अपराध किसके साथ हुआ और अपराधी कौन है, यह देखना जरूरी समझा जाता था। संविधान इस सोच को समाप्त करने के लिए बना था। उसमें दर्ज समानता के सिद्धांत

जितना रसूख वाला हो, उसे किसी भी कीमत पर बख्शा नहीं जाएगा। तब लगा था कि इससे लोगों में भय पैदा होगा और महिलाएँ सुरक्षित महसूस करेंगी। मगर ऐसा नहीं हो पाया। वहाँ बलात्कार की घटनाएँ रुक नहीं पा रहीं, एक भी ऐसा मामला सामने नहीं आया जिसमें आरोपी के साथ सख्त कानूनी कदम उठाया गया हो। प्रशासन जब किसी आरोपी के साथ पक्षपातपूर्ण या नरम रुख अपनाता है, तो दूसरे अपराधियों का मनोबल बढ़ता है। इसलिए अगर समय रहते हरियाणा सरकार ने बलात्कार जैसी घटनाओं के खिलाफ कड़ाई नहीं की, तो इनके रुकने का दावा नहीं किया जा सकता। इससे महिलाओं में व्याप्त भय और बढ़ेगा।

देर आयद (जनसत्ता)

बिहार के मुजफ्फरपुर में स्थित बालिका गृह में चौंतीस बच्चियों से बलात्कार का मामला सामने आने के बाद इस पर सड़क से लेकर राज्य विधान सभा और देश की संसद तक हर तरफ व्यापक आक्रोश जाहिर किया गया। लेकिन राज्य के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने इस पर कोई प्रतिक्रिया जाहिर करना जरूरी नहीं समझा। यह बेवजह नहीं है कि इस मसले पर होने वाले तमाम विरोध प्रदर्शनों में आम जनता से लेकर विपक्षी दलों की ओर से उन्हें निशाने पर लिया गया और उनसे जवाब देने की मांग की गई। अब देर से सही, नीतीश कुमार ने पहली बार चुप्पी तोड़ते हुए इसे एक शर्मसार कर देने वाली घटना बताया है। उन्होंने कहा कि मैं सबको आश्वस्त करना चाहूंगा कि इस मामले में किसी के प्रति उदार रवैया नहीं अपनाया जाएगा। जो भी दोषी होगा, उसे कड़ी सजा मिलेगी। इस मसले की गंभीरता पर उनका यह स्वीकार कम से कम आगे की कानूनी-प्रक्रिया के निर्बाध चलने को लेकर उम्मीद जगाता है। लेकिन हैरानी की बात यह है कि लाचार बच्चियों के लिए आश्रय-स्थल में जहाँ उनकी सुरक्षा और देखभाल की एक व्यवस्थित प्रणाली सबसे पहली शर्त होनी चाहिए, वहाँ इतनी बड़ी घटना के बाद ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के लिए संबंधित विभागों से परामर्श के साथ संस्थागत प्रणालियां विकसित करने को कहा जा रहा है।

दरअसल, घटना की प्रकृति को देखते हुए राज्य का प्रमुख होने के नाते यह मुख्यमंत्री की जवाबदेही बनती थी कि वे शुरुआत में ही इस मसले पर लोगों को आश्वस्त करते कि बिना किसी के रसूख का खयाल किए कानून अपना काम करेगा। लेकिन उनकी चुप्पी ने कई तरह की आशंकाओं को बल दिया। इस बीच, समूचे मामले में मुख्य आरोपी ब्रजेश ठाकुर के राजनीति से लेकर प्रशासन तक में बैठे लोगों से ताल्लुकात और उसकी आमदनी के स्रोतों को लेकर जो ब्योरे सामने आए, उनसे साफ है कि सरकारी महकमों में उसकी गहरी पैठ रही है। किसी काम का ठेका हासिल करने से लेकर अपने अखबार के लिए सरकारी विज्ञापन हासिल करने तक में ब्रजेश ठाकुर को कभी कोई दिक्कत पेश नहीं आई तो इसके पीछे सरकारी महकमों से मिले संरक्षण के सिवा और क्या कारण हो सकता है! मुख्यमंत्री को उन लोगों से भी जवाब मांगना चाहिए जिन्होंने बालिका-गृह की रिपोर्ट आने और 31 मई को उसके खिलाफ एफआइआर दर्ज होने के बाद भी ब्रजेश ठाकुर को समाज कल्याण विभाग से एक नए काम का ठेका जारी किया। सवाल है कि सरकारी मदद से चलने वाली उसकी तमाम गतिविधियों की जाँच या उन पर निगरानी रखने की जरूरत संबंधित विभागों के किसी भी अधिकारी को क्यों नहीं महसूस हुई!

यह कैसे संभव हुआ कि बालिका-गृह खोलने और उसके संचालन के लिए जाँच और निगरानी की एक व्यवस्थित प्रक्रिया होने के बावजूद वहाँ लंबे समय तक इतनी बड़ी तादाद में बच्चियों से बलात्कार और उन्हें यातना देने का काम निर्बाध चलता रहा? अगर किन्हीं स्थितियों में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज ने अपनी जाँच के दौरान वहाँ की त्रासद हकीकत का यही अर्थ है कि हर अपराध की सजा सामान्य होगी। इसका कुछ असर समाज में दिखने लगा था। पिछले कुछ वर्षों में हम पीछे जाने लगे हैं। अपराधी कौन है, अपराध किसके साथ हुआ है, यह फिर महत्त्वपूर्ण हो गया है। मीडिया, खासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, का रुख भी पिछले कुछ वर्षों में बहुत बदल गया है। निर्भया के साथ हुई बर्बरता के खिलाफ पूरा मीडिया मैदान में था। पर अब मीडिया भी चयन करने लगा है। अपराधी अगर पादरी है या अपराध मदरसे में हुआ है, तो चौबीस घंटे यह खबर देश भर की आत्मा को झकझोरती रहेगी, जो बुरी बात नहीं। बुरा यह है कि मुजफ्फरपुर की वीभत्स घटना टीवी स्क्रीन से गायब है।

मुजफ्फरपुर में सेवा संकल्प नामक संस्था (एनजीओ) बिहार सरकार के समाज कल्याण विभाग से अनुदान प्राप्त कर दो 'संरक्षण गृह' चला रही थी। इसके सीईओ बृजेश ठाकुर है, जिसकी ऊँची पहुँच है। स्थानीय भाजपा विधायक उसके दोस्त हैं। जिस अखबार की मात्र तीन सौ प्रतियां बिकती हैं, उसे केंद्र से करोड़ों का विज्ञापन मिलता है। संरक्षण गृह में दस से चौदह साल की कई लड़कियाँ मानसिक रूप से विक्षिप्त पाई गईं। इस साल, मुंबई टीआईएसएस की शोध टीम ने संरक्षण गृह का सर्वेक्षण किया और लड़कियों से एकांत में बात की। लड़कियाँ बहुत डरी हुई थीं। उन्होंने अपनी बात नहीं रखी। एक कहती कि दूसरी के साथ गड़बड़ हुई है; दूसरी कहती कि 'अंकल' लोग परेशान करते हैं; तीसरी ने बताया कि रात में कहीं ले जाते हैं और कुछ करते हैं, जिससे पूरे शरीर में दर्द होता है। विगत मई में टीम ने अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को दी और उसने उसके बाद संस्था को एक और किस्त आवंटित की। फुसफुसाहट होने लगी। तथ्य सार्वजानिक होने लगे। सत्तारूढ़ जदयू की समाज कल्याण मंत्री के पति का नाम भी 'अंकल' लोगों में शामिल होने लगा और एफआईआर दर्ज करने की मजबूरी बन गई। मेडिकल जाँच में 44 में से 34 लड़कियों के साथ बलात्कार होना साबित हुआ। बृजेश ठाकुर फरार हो गया। विधान सभा में हल्ला मचा। आखिरकार ठाकुर की गिरफ्तारी हुई और सीबीआई को जाँच भी सौंपी गई।

अभी इस कहानी में बहुत कुछ बाकी है। जिस लड़की ने बृजेश ठाकुर के खिलाफ गवाही दी थी, वह गायब हो गई है; ठाकुर द्वारा संचालित दूसरे गृह से सभी ग्यारह लड़कियाँ गायब हैं। बृजेश ठाकुर की पत्नी कहती है, संरक्षण गृह में रहने वाली लड़कियाँ बदचलन थीं। ऐसा कहना और मानना समाज को अपराधी भेड़ियों के हवाले करने के बराबर है।

मीडिया से उसकी चुप्पी पर सवाल करना जरूरी है। सरकार से उसके व्यवहार के बारे में सवाल करना जरूरी है। नेता-प्रशासन-सत्ता के अपराधी गठबंधन के बारे में सवाल करना जरूरी है। इन सबका विरोध करना और भी जरूरी है। दो अगस्त को वामपंथी पार्टियों ने महिला और दलित उत्पीड़न के खिलाफ बिहार बंद का आयोजन किया। हम किस पाले में हैं?

शर्मनाक कांड का सामने आए सच (नई दुनिया)

मुजफ्फरपुर बालिका गृह में रह रही लड़कियों से दुष्कर्म का मामला कितना गंभीर है, यह इससे पता चलता है कि इस शर्मनाक कांड का संज्ञान सुप्रीम कोर्ट ने भी ले लिया है। यह शर्मनाक घटना सरकारी सिस्टम की विफलता का नतीजा है। ऐसी ही विफलता नब्बे के दशक में चारा घोटाला में भी सामने आई थी, लेकिन यह उल्लेखनीय है कि चारा घोटाले की सीबीआई जाँच अदालत के आदेश के कारण हुई थी और उसने जाँच की निगरानी भी की थी। हालाँकि यह सच है कि मुजफ्फरपुर बालिका गृह कांड की सीबीआई जाँच बिहार सरकार की सिफारिश पर हो रही है, लेकिन इस केंद्रीय जाँच एजेंसी के किसी तरह के दबाव में आने या

को अपनी रिपोर्ट में दर्ज नहीं किया होता तो क्या वहाँ सब कुछ पहले की तरह चलता रहता? बिहार में पहली बार सरकार बनाने से लेकर अब तक मुख्यमंत्री का सबसे बड़ा दावा यही रहा है कि वे कानून-व्यवस्था के मोर्चे पर कोई समझौता नहीं करेंगे। लेकिन इस दावे की जमीनी हकीकत बहुत सकारात्मक नहीं रही है। मुख्यमंत्री ने अब अपनी कमी को स्वीकार किया है तो यह ध्यान रखने की जरूरत है कि बालिका-गृह में बच्चियों के खिलाफ हुए अपराध में शामिल तमाम लोगों को सजा के अंजाम तक पहुँचाने को न्याय की कसौटी के रूप में देखा जाएगा।

बालिका गृहों और महिला सदनों में यौन शोषण

(पत्रिका)

गत दिनों सुबह सवेरे समाचार-पत्र खोलते ही मुख्य पृष्ठ पर नजर पड़ते ही तीन कालम की खबर थी यूपी में बालिका गृह से यौन शोषण की शिकार लड़कियाँ छुड़वायी। इन लड़कियों को छुड़वाने के बाद ये पुन: इस पीड़ा से नहीं गुजरेगी यह एक यक्ष प्रश्न है। क्योंकि अब तो नवजात बच्चियाँ भी यौन शोषण का शिकार हो रहीं हैं। तब ये लावारिस बालिकाएँ अलग-अलग कारणों से बालिका गृहों तक पहुँचती हैं।

यह खबर पढ़ते ही मुझे यकायक याद आया वर्ष 1982, जब हम ताजे-ताजे पत्रकारिता में आये थे और काम करते वक्त एक कॉलम लिखा वो महिला सदन के दरवाजे तक कैसे पहुँची। जिसमें मैंने महिला सदन की लड़कियों के महिला सदन तक पहुचनें की व्यथा का वर्णन उनके साक्षात्कारों के माध्यम से किया था। तब महिला सदनों से इस तरह की खबरें दबी आवाज में सुनायी देती थीं। किन्तु यहाँ तक पहुँची लड़कियाँ और महिलाऐ इस तरह के हादसों से गुजर कर ही बालिका गृहों में या सदन के दरवाजों तक पहुँचती थी।एक तरफ घरों से बेघर लड़कियों के लिये बनाये गये यह सुरक्षालय ही उनके लिये असुरक्षित हो जाते हैं। इन सदनों की संचालिकाओं की भी समय-समय पर शिकायतें आती रहती हैं पर दबी जुबान में ही दब कर रह जाती हैं। इन सदनों के अन्दर का माहौल भी अच्छा कहाँ होता है? यहाँ भी औरतें यौन शोषण से पीड़ित की जाती हैं हाँ, सच्चाई यदाकदा आती हैं। उसके अलावा महिलाएँ अमानवीय व्यवहार से भी पीड़ित रहती हैं। सतायी हुई और ना सतायी जाये इसके लिये जरूरी है मानवीय दृष्टिकोण। गत वर्षों में महिलाओं की यौन समस्याओं के प्रकार जिस कदर बढ़ गये हैं वो दिल दहलाने वाले हैं।

इनमें तेजाब डालने वाली घटनाएँ हो या घरेलू हिंसा की हो या बलात्कार की इन सब के लिये जितने कानून बनते जा रहे हैं उतनी ही घटनाएँ भी बढ़ती जा रही हैं। हम सदियों से वेश्यावृत्ति, गोली प्रथा आदि विभिन्न समस्याओं के हल ढूँढते- ढूँढते ऐसी ही नयी समस्याओं में फँसते चले जा रहे हैं। अब काल गर्ल्स ,बार गर्ल्स , कास्टिग काउच जैसी घटनाओं से ग्रस्त लड़कियाँ होने लगी हैं।कहने का तात्पर्य है कि समस्या का नाम बदल गया पर समस्याएं तस की तस हैं। विभिन्न नामों और तरीकों से देह व्यापार के धन्धे चल रहे हैं। जो विकास की धारा के साथ-साथ अलग-अलग नामों से फूल फलरहे हैं।

क्योंकि आज भी लड़कियों के जन्म से लेकर पालन-पोषण, शिक्षा दीक्षा सब दोयम दर्जे का होता है। आज भी औरत को उसके बौद्धिक स्तर से नहीं शारीरिक डीलडौल के तराजू में तौला जाता है। परन्तु हमें औरतों की शिक्षा के साथ साथ आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनाना तो जरूरी है। किन्तु समाज में इन प्रैक्टिस को रोकने के लिये हर पुरुष को पुरुषत्व की परिभाषा को बदलना होगा। समाज के अब एक शरत चन्द की नहीं हर घर में ,हर कदम पर शरत चन्द की जरूरत है, तभी ऐसी समस्यायएँ कम हो सकेंगीं।

फिर अन्य किसी कारण से जाँच सही तरीके से न हो पाने के खतरे से बचने के लिए बेहतर यही होगा कि जाँच अदालत की निगरानी में हो।

ध्यान रहे कि देश का ध्यान आकर्षित करने वाले मामलों में आरोपितों को सजा मिलने से ही आम लोगों का सिस्टम पर भरोसा बढ़ता है। मुजफ्फरपुर बालिका गृह में घटी घटनाएँ बताती हैं कि शासन तंत्र के संबंधित लोगों ने इस बालिका गृह के संचालक का उसके घृणित कार्यों में या तो सहयोग किया या फिर इन कार्यों की जान-बूझकर अनदेखी की। इस बालिका गृह की 44 में से 34 लड़कियों के साथ दुष्कर्म की बात सामने आई है। क्या यह संभव है कि बालिका गृह के पड़ोसी पीड़ित लड़कियों की चीख-पुकार सुन लें, लेकिन प्रशासन के कान पर जूं तक न रेंगे? आखिर इसे सिस्टम की विफलता नहीं कहा जाएगा तो और क्या कहेंगे?

अब तक की जानकारी के अनुसार मुजफ्फरपुर बालिका गृह में इसलिए अनर्थ होता रहा, क्योंकि कई सत्ताधारी नेताओं, संबंधित अफसरों, कर्मचारियों को बस एक कीमत चाहिए थी, जो उन्हें किसी न किसी रूप में मिलती गई। शायद इसी कारण बालिका गृह के संचालक की गिरफ्तारी के तत्काल बाद से ही पुलिस पर दबाव पड़ने लगा था। इस घिनौने कांड में जो लोग आरोपों के घेरे में हैं, उनमें अफसर, पत्रकार, कथित समाजसेवी और सत्ताधारी नेता तक शामिल बताए जाते हैं।

इस मामले में सीबीआई जाँच का नतीजा कुछ भी हो, बिहार के कुछ चर्चित मामलों की जाँच में सीबीआई की भूमिका कोई बहुत अच्छी नहीं रही। इनमें वर्ष 1975 में ताकतवर केंद्रीय मंत्री ललित नारायण मिश्र की हत्या का मामला और 1983 में सनसनीखेज बॉबी हत्याकांड प्रमुख है। ललित बाबू हत्याकांड में तो सीबीआई ने अज्ञात कारणों से जाँच को एक ऐसा मोड़ दे दिया कि दिवंगत मिश्र के परिजनों का भी इस जाँच एजेंसी पर से भरोसा उठ गया।

गौरतलब है कि उस वक्त बिहार पुलिस ने ललित बाबू की हत्या में शामिल दो लोगों को गिरफ्तार कर लिया था। इन लोगों ने न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने यह स्वीकार भी कर लिया था कि उन्होंने किस प्रभावशाली हस्ती के कहने पर ललित बाबू की हत्या की, परंतु उसके बाद जब सीबीआई ने केस अपने हाथ लिया तो इन दोनों संदिग्धों को छोड़ दिया। बाद में इस जाँच एजेंसी ने आनंद मार्ग के कुछ लोगों पर केस चलाया। ऐसा तब हुआ, जब ललित बाबू के भाई और पुत्र ने अदालत में कहा कि आनंद मार्गियों का ललित बाबू से कोई बैर नहीं था।

इसी तरह वर्ष 1983 में पटना के चर्चित बॉबी हत्याकांड में भी सीबीआई की भूमिका भरोसा बढ़ाने वाली नहीं रही। आम धारणा यही है कि किसी दबाव के चलते श्वेतनिशा त्रिवेदी उर्फ बॉबी की हत्या को आत्महत्या करार देकर रफा-दफा कर दिया गया। उन दिनों के एक कांग्रेसी विधायक ने अजीब ढंग से यह तर्क दिया था कि यदि बॉबी कांड को हम रफा-दफा नहीं करवाते, तो लोकतंत्र खतरे में पड़ जाता।

गौरतलब है कि बिहार विधान सभा सचिवालय की महिला टाइपिस्ट बॉबी को जहर दिया गया था, जिसकी वजह से 7 मई, 1983 को उसकी मौत हो गई। उस समय यह चर्चा जोरों पर थी कि किसके कहने पर किसने उसे जहर दिया गया? बॉबी बिहार विधान परिषद की सभापति और कांग्रेसी नेत्री राजेश्वरी सरोज दास की गोद ली हुई बेटी थी। उसकी मौत सभापति के पटना स्थित सरकारी आवास में ही हुई थी। हड़बड़ी में उसकी लाश को दफना दिया गया। इतना ही नहीं, दो डॉक्टरों से उसके निधन के कारणों से संबंधित जाली सर्टिफिकेट भी ले लिए गए। एक डाक्टर ने लिखा कि आंतरिक रक्तस्राव की वजह से बॉबी की मृत्यु हुई।

संरक्षण गृह या व्यापार केंद्र? (अमर उजाला)

मुजफ्फरपुर और देवरिया में यौन शोषण की घटनाओं ने साबित किया है कि नौकरशाही और जेजे ऐक्ट यानी जुवेनाइल जस्टिस (केयर ऐंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) ऐक्ट के अधीन स्थापित संस्थाएँ सफेद हाथी बन गई हैं। वाजपेयी सरकार के समय बने जेजे ऐक्ट में देश के प्रत्येक जिले में चार तरह के बाल गृह बनाने का प्रस्ताव था तथा केंद्र की इंटीग्रेटेड चाइल्ड प्रोटेक्शन स्कीम (आईसीपीएस) में 75 प्रतिशत अनुदान का प्रावधान भी रखा गया। मनमोहन सरकार के समय किसी जिले में बाल गृह निर्मित नहीं किए गए।

मुजफ्फरपुर और देवरिया के उदाहरणों से साबित हुआ है कि अनाथ बच्चियों के देह व्यापार में स्थानीय प्रशासन और राजनेता शामिल हैं। इसलिए राज्य सरकारों से केंद्र को सरकारी बाल गृह स्थापित करने के प्रस्ताव ही न के बराबर आए। राज्य अनाथ बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी से जान-बूझकर अनजान बने रहे। ऐसे में बाल संरक्षण के नाम पर देह व्यापार की दुकानें फल-फूल रही हैं।

मोदी सरकार के समय संशोधित जेजे ऐक्ट में सरकारी बाल गृह बनाने की योजना खत्म कर बाल गृह बनाने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर डाल दी गई है। जबकि संयुक्त राष्ट्र के प्रोटोकॉल पर दस्तखत कर अनाथ बच्चों के संरक्षण की जिम्मेदारी भारत सरकार ने ली थी। अगर राज्य सरकारें आईसीपीएस का लाभ नहीं उठा रहीं, तो केंद्र को खुद राज्यों से जमीन लेकर बाल गृह बनाने चाहिए थे। पर इस जिम्मेदारी से पीछे हटकर निजी बाल गृहों को तरजीह दी गई। कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों को भी सरकारी सुधार गृह के बजाय निजी बाल गृहों को सौंपने का प्रावधान किया गया है।

जेजे ऐक्ट में बनी चार तरह की निगरानी कमेटियां भी बाल गृहों की निगरानी नहीं कर पा रहीं। राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग और जिला बाल कल्याण समितियों को भी इन बाल गृहों की निगरानी की जिम्मेदारी है। पर मुजफ्फरपुर और देवरिया में इन संस्थाओं ने अपना काम नहीं किया। केंद्र को चाहिए कि टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज को देश के सभी बाल गृहों की सोशल ऑडिटिंग की जिम्मेदारी दे। पूरे देश में चाइल्ड हेल्प लाइन 1098 टाटा इंस्टीट्यूट ही चला रहा है। गौरतलब है कि बिहार पर उसकी पूरी रिपोर्ट अभी सामने नहीं आई है, जिसमें राज्य के कम से कम 15 जिलों के बाल गृहों में बच्चियों के यौन शोषण का खुलासा है। बिहार सरकार उस रिपोर्ट पर कुंडली मारकर बैठी है।

बिहार के बाल अधिकार संरक्षण आयोग की अध्यक्ष डॉ. हरपाल कौर ने विगत नवंबर में मुजफ्फरपुर के इस शेल्टर होम का निरीक्षण किया था। जेजे ऐक्ट की नियमावली की धारा 29 में शेल्टर होम की भौतिक संरचना का जिक्र है, जिसे यह होम पूरा नहीं करता था। हरपाल कौर ने जिलाधीश और समाज कल्याण विभाग को बाल गृह को तुरंत वहाँ से हटाने की सिफारिश की थी। पर नौकरशाही इस रिपोर्ट को दबाकर बैठी रही। जब यह बाल गृह जेजे ऐक्ट के प्रावधानों को पूरा नहीं करता था, तो समाज कल्याण विभाग ने इसे मान्यता कैसे दी? उसे तो सरकारी अनुदान भी दिया जा रहा था, जो केंद्र से वसूला जाता है।

ऐसे ही देवरिया में एक लड़की ने थाने में जाकर यौन शोषण का खुलासा किया। राज्य के महिला और बाल कल्याण मंत्रालय ने जुलाई, 2017 में लड़कियों को कहीं और हटाकर इसे तुरंत बंद करने की सिफारिश की थी, क्योंकि सीबीआई ने इसमें भारी घपलेबाजी पकड़ी थी, पर जिलाधीश मंत्रालय की रिपोर्ट दबाए बैठे रहे।

वहीं दूसरे डॉक्टर ने बॉबी की मौत का कारण अचानक हृदय गति थमना बताया। बाद में पटना के एसएसपी किशोर कुणाल ने बॉबी की लाश निकलवाकर पोस्टमार्टम कराया। बिसरा में मेलेथियन जहर पाया गया। इसके बाद सभापति के आवास में रहने वाले दो युवकों को पकड़कर पुलिस ने जल्दी ही पूरे केस का रहस्योद्घाटन कर दिया। खुद राजेश्वरी सरोज दास ने अदालत में बताया कि बॉबी को कब और किसने जहर दिया था।

इस कांड में प्रत्यक्ष और परोक्ष ढंग से कई छोटे-बड़े नेता संलिप्त पाए गए थे। इन नेताओं को बिहार पुलिस गिरफ्तार करने ही वाली थी कि तत्कालीन मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्र ने केस को सीबीआई को सौंप दिया और उसने मामले को एक तरह से दफना दिया। उसने हत्या के इस मामले को आत्महत्या साबित कर दिया।

माना जाता है कि बॉबी की मौत के मामले में सीबीआई जाँच के आदेश इसीलिए दिए गए थे, क्योंकि पटना के एसएसपी किशोर कुणाल किसी दबाव में नहीं आ रहे थे। आज के लोगों को इस कांड का स्मरण नहीं होगा, लेकिन उस जमाने के लोग अच्छे से जानते हैं कि यह मामला कैसे एक स्त्री की भावनाओं से अनेक महाप्रभुओं द्वारा खेले जाने और बाद में उसे खत्म कर देने की कहानी बयान कर गया।

हाल के उन मामलों को देखें, जिन्हें सीबीआई को सौंपा गया है तो भागलपुर के चर्चित सृजन घोटाले की जाँच में भी यह एजेंसी तीन प्रमुख आरोपियों को गिरफ्तार नहीं कर पाई है। इसी तरह मुजफ्फरपुर के ही नवरूणा हत्याकांड में वह अपनी जाँच को आगे नहीं बढ़ा पा रही है। इन मामलों के विपरीत चारा घोटाले की जाँच अदालत की निगरानी में होने के कारण ही सीबीआई तत्कालीन प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल के दबाव को भी नजरअंदाज कर सकी थी। उस समय के सीबीआई निदेशक जोगिंदर सिंह ने अपनी किताब में लिखा था कि उन्होंने प्रधानमंत्री गुजराल को लिखित आदेश करने की सलाह दी थी। इससे वह पीछे हट गए थे। इसी तरह यह भी एक तथ्य है कि चारा घोटाले की जाँच करने वाले अफसर यानी सीबीआई के संयुक्त निदेशक यूएन विश्वास पर जब-जब राजनीतिक या गैर-राजनीतिक दबाव पड़ा, तब-तब पटना हाई कोर्ट की निगरानी बेंच ने उनका बचाव किया। इसी कारण चारा घोटाला केस को तार्किक परिणति तक पहुँचाया जा सका।

इस पर हैरानी नहीं कि बिहार के लोग इस वक्त यही उम्मीद कर रहे हैं कि शर्मसार करने वाले मुजफ्फरपुर बालिका गृह कांड की सीबीआई जाँच अदालत की निगरानी में हो। चूँकि यह मामला बहुत गंभीर है, इसलिए बिहार सरकार ने भी यह अपेक्षा व्यक्त की है कि मामले की जाँच अदालत की निगरानी में हो। बेहतर है कि ऐसा होना सुनिश्चित हो। ऐसे होने पर ही यह उम्मीद बंधेगी कि मुजफ्फरपुर के महापापी बच नहीं पाएंगे।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. बाल-संरक्षण गृहों की निगरानी की जिम्मेदारी किसकी होती है?

(a) जिला कलक्टर

(b) जिला पुलिस

(c) महिला आयोग

(d) बाल एवं महिला मंत्रालय

(उत्तर-A)

2. थॉमसन रॉयटर्स फाउंडेशन के अनुसार, औरतों के लिए सबसे खतरनाक देश कौन-सा है?

(a) भारत

(b) पाकिस्तान

(c) सीरिया

(d) नाईजीरिया

(उत्तर-A)

3. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने प्लान इंडिया की ओर से तैयार की गई रिपोर्ट जार की है। इसके मुताबिक भारत मं महिलाओं के लिए सबसे सुरक्षित राज्य है:-

(a) केरल (b) गोवा

(c) महाराष्ट्र (d) गुजरात

(उत्तर-B)

4. थॉमसन रॉयटर्स फाउंडेशन की औरतों के लिए खतरनाक देशों की रिपोर्ट के आधार में निम्नलिखित में से कौन-सा बिंदु नहीं हैं?

(a) समाज में महिलाओं का स्वास्थ्य

(b) आर्थिक संसाधों में महिलाओं के साथ भेदभाव

(c) यौन अपराध के आँकड़े

(d) रोजगार क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति

(उत्तर-D)

5. भारत में बाल-संरक्षण गृहों की देख-रेख एवं निगरानी व्यवस्था पर प्रकाश डालें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन-से भारत के संविधान में शोषण के विरुद्ध अधिकार द्वारा परिकल्पित है?

1. मनुष्यों के व्यापार एवं बंधुआ मजदूरी पर प्रतिबंध।
2. अस्पृश्यता का उन्मूलन।
3. अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण।
4. फैक्टरी एवं माइनों में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध।

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुने:-

(a) केवल 1, 2, 4 (b) केवल 2, 3, 4

(c) केवल 1 4 (d) 1, 2, 3, 4

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2017, उत्तर-C)

2. प्रथम फैक्टरी अधिनियम जिसने महिलाओं एवं बच्चों के कार्य अवधि को समिति करने के लिए स्थानीय सरकारों को अधिकृत किया, किसके समय में स्वीकृत किया गया था?

(a) लॉर्ड लिटन (b) लॉर्ड बैंटिक

(c) लॉर्ड रिपन (d) लॉर्ड कैनिंग

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2009, उत्तर-C)

3. महिलाओं को परम्परागत एवं गैर-परम्परागत क्षेत्रों में प्रशिक्षण एवं कौशल उपलब्ध कराने के लिए कौन-सी योजना है?

(a) किशोर शक्ति योजना (b) राष्ट्रीय महिला कोष

(c) स्वयसिद्ध (d) स्वावलम्बन

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2008, उत्तर-D)

4. भारत में एक मध्यम-वर्गीय कामकाजी महिला की अवस्थिति को पितृतंत्र (पेट्रिआर्की) किस प्रकार प्रभावित करता है? (150 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

5. भारत में महिलाओं पर वैश्वीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर चर्चा कीजिए। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2015)

6. महिलाएँ जिन समस्याओं का सार्वजनिक एवं निजी दोनों स्थलों पर सामना कर रही हैं, क्या राष्ट्रीय महिला आयोग उनका समाधाान निकालन की रणनीति बनाने में सफल रहा है? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कीजिए। (250 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2017)

GS World
Committed To Excellence

सारांश

- सरकारी आँकड़ों पर ही विश्वास करें, तो वर्ष 2014 में कुल 3,39,954, वर्ष 2015 में 3,29,243 और 2016 में 3,38,954 स्त्रियों के साथ अपराध के मामले पंजीकृत हुए हैं।
- इनमें से बलात्कार के आँकड़े प्रति वर्ष 35 से 36 हजार के लगभग हैं और सर्वाधिक शिकार 18 से 30 वर्ष की महिलाएँ हैं।
- थॉमसन रॉयटर्स फाउंडेशन के अनुसार, औरतों के लिए भारत सबसे खतरनाक देश है। 2011 में भारत चौथा सबसे खतरनाक देश था।
- इस नतीजे पर पहुँचने वाली संस्था ने पाँच बिंदुओं पर गहन सर्वेक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला है। सर्वेक्षण का पहला बिंदु यह है कि समाज में महिलाओं का स्वास्थ्य कैसा है?
- दूसरा, आर्थिक संसाधनों के मामलों में महिलाओं के साथ भेदभाव का स्तर क्या है? आर्थिक संसाधन स्त्री को स्वावलंबी बनाते हैं और वह अकारण अनुचित दबावों से मुक्त रह सकती है।
- तीसरा मानक यह है कि समाज विशेष के रीति-रिवाजों में महिलाओं को कितनी समानता मिली हुई है? रीति-रिवाज, घर और समाज की संस्कृतियों को दर्शाते हैं।
- चौथा बिंदु यह कि उस समाज में यौन अपराध के आँकड़े क्या तस्वीर प्रस्तुत करते हैं? और अंतिम बिंदु यह कि स्त्रियों के प्रति अन्य अपराध के आँकड़े (घरेलू हिंसा, उनकी तस्करी और अपहरण) क्या तस्वीर प्रस्तुत करते हैं?
- यूं तो हरियाणा समेत कई राज्यों में बालिका संरक्षण गृहों में संगठित रूप से शारीरिक शोषण की खबरें आती रही हैं मगर बिहार के मुजफ्फरपुर में समाज कल्याण विभाग के संरक्षण में एक समाजसेवी संस्था द्वारा चलाये जा रहे बालिका गृह में 44 में से 34 लड़कियों की मेडिकल जाँच के बाद यौन शोषण की आशंका पुलिस जता रही है। संरक्षण गृह में दस से चौदह साल की कई लड़कियाँ मानसिक रूप से विक्षिप्त पाई गई।
- मुजफ्फरपुर में सेवा संकल्प नामक संस्था (एनजीओ) बिहार सरकार के समाज कल्याण विभाग से अनुदान प्राप्त कर दो 'संरक्षण गृह' चला रही थी।
- विरोध करने वाली बच्चियों को यातनाएं दी गईं। एक ऐसी बच्ची की हत्या करके गाड़ देने के आरोप बालिका गृह की एक लड़की ने लगाये। जिस पर बालिका गृह के परिसर में खुदाई भी की गई। चिंता की बात यह है कि वर्ष 2013 से 2018 के बीच छह लड़कियाँ गायब हुईं।
- मामला तब उजागर हुआ जब टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज की तरफ से सोशल ऑडिट हुआ। तेरह साल से 18 साल की लड़कियों के साथ गलत काम होने की आशंका के बाद समाज कल्याण विभाग की ओर से मुजफ्फरपुर में रिपोर्ट लिखाई गई। इस मामले में बालिका गृह के संचालक के साथ दस लोगों को गिरफ्तार किया गया है, जिनमें सात महिलाएँ शामिल हैं।
- यह मामला इसलिए गंभीर है क्योंकि जिस बालिका गृह पर बालिकाओं के यौन शोषण व उत्पीड़न के आरोप लगे हैं, वह सरकार की मदद से चल रहा था। घटना की गंभीरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि बालिका गृह की 42 में से 34 बच्चियों से दुष्कर्म की बात सामने आयी है
- बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने मुजफ्फरपुर में बालिका गृह में दुष्कर्म मामले में सीबीआइ जाँच का उचित फैसला किया है, बिहार के पुलिस महानिदेशक ने कहा था कि वह पुलिस जाँच से पूरी तरह संतुष्ट हैं और उन्हें इसमें कोई खामी नजर नहीं आ रही है, इसलिए सीबीआइ या अन्य किसी एजेंसी से इसकी जाँच किये जाने की जरूरत नहीं है।
- नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के 2015 के आँकड़ों के अनुसार बच्चों के खिलाफ हिंसा के कुल 94,172 मामले दर्ज किये गये। इनमें से एक तिहाई मामलों में बच्चों को दुष्कर्म के लिए निशाना बनाया गया था।
- 2015 के आँकड़ों के अनुसार महाराष्ट्र में सर्वाधिक 13,921, मध्य प्रदेश में 12,859 और उत्तर प्रदेश में 11,420 ऐसे अपराध के मामले दर्ज किये गये। कुछ साल पहले केंद्रीय महिला एवं बाल कल्याण विभाग ने एक अध्ययन में पाया था कि अधिकांश मामलों में शोषण करने वाला परिचित व्यक्ति ही होता है। यह तथ्य भी सामने आया है कि यौन शोषण के लिए बड़ी संख्या में बालक भी निशाना बनाये जाते हैं।
- बाल कल्याण विभाग के अध्ययन में पता चला कि विभिन्न प्रकार के शोषण में पाँच से 12 वर्ष तक की उम्र के छोटे बच्चे सबसे अधिक शिकार होते हैं। इसमें शारीरिक, यौन और भावनात्मक शोषण शामिल है। आमतौर पर माना जाता है कि बाल शोषण का मतलब होता है बच्चों के साथ शारीरिक दुर्व्यवहार और यौन शोषण, लेकिन बच्चे के साथ किया गया हर ऐसा व्यवहार भावनात्मक शोषण के दायरे में आता है, जिससे उसके ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता हो अथवा जिससे बच्चा मानसिक रूप से भी प्रताड़ित महसूस करता हो।
- महिला एवं बाल कल्याण विभाग के अध्ययन में पाया गया है कि बालक और बालिकाओं, दोनों ने भावनात्मक शोषण का सामना करने

की बात स्वीकार की। अध्ययन के 83 प्रतिशत मामलों में बच्चों ने माता-पिता पर भावनात्मक शोषण का आरोप लगाया। 48.4 प्रतिशत लड़कियों ने कहा कि अगर वे लड़का होतीं, तो अच्छा होता।

- कुछ समय पहले महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने प्लान इंडिया की ओर से तैयार की गयी रिपोर्ट जारी की. इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में महिलाओं के लिए सबसे सुरक्षित राज्य गोवा है। सुरक्षा के मामले में इसके बाद केरल, मिजोरम, सिक्किम और मणिपुर आते हैं। चिंता की बात यह कि जिन राज्यों में महिलाएँ सबसे अधिक असुरक्षित हैं, उनमें बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश और देश की राजधानी दिल्ली शामिल हैं।
- राज्यों के लिए लिंग भेद सूचकांक यानी जेंडर वल्नरेबिलिटी इंडेक्स (जीवीआई) तैयार किया और उस कसौटी पर सभी राज्यों को कसा गया। इसके नतीजों के अनुसार गोवा महिलाओं के लिए सबसे सुरक्षित राज्य है, जबकि देश की राजधानी को महिलाओं की सुरक्षा की दृष्टि से खराब राज्यों में से एक है
- रिपोर्ट के मुताबिक 39 फीसदी लड़कियों की शादी विवाह की वैधानिक उम्र (18 वर्ष) से पहले शादी हो जाती है और लगभग 12 फीसदी 15 से 19 वर्ष की उम्र में या तो गर्भवती हो जाती हैं या फिर माँ बन जाती हैं,
- किशोरियों से बलात्कार के अपराध में दोषियों को मृत्युदंड देने संबंधी केन्द्रीय कानून अभी लोकसभा से पारित हुआ है। कठुआ में आठ साल की बच्ची और इसी दौरान उ.प्र. के उन्नाव में एक महिला से बलात्कार की घटना के बाद एक अध्यादेश जारी किया गया था। अब सरकार ने लोकसभा में अपराध कानून (संशोधन) विधेयक पारित किया है जो इस अध्यादेश का स्थान लेगा। सरकार ने कानून में बदलाव करके ऐसे अपराधों की जाँच दो महीने के भीतर पूरी करने और छह महीने में फैसला सुनाने की व्यवस्था की है
- इस कानून में 12 साल की आयु तक की बच्चियों से बलात्कार के अपराध में कम से कम 20 साल की कैद और इस आयु वर्ग की बच्चियों से सामूहिक बलात्कार के अपराध में जीवन-पर्यंत कैद या मृत्युदंड का प्रावधान किया गया है। इसी तरह से 16 साल से कम आयु की किशोरी से बलात्कार के जुर्म में कम से कम दस साल की सजा का प्रावधान है, जिसकी अवधि 20 साल अथवा उसे बढ़ाकर जीवनपर्यंत कैद की जा सकती है।
- राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आँकड़ों के अनुसार बच्चियों से अपराध की घटनाओं में 2016 में जबरदस्त वृद्धि हुई। इस दौरान यौन अपराध से बच्चों का संरक्षण कानून (पोक्सो) के तहत 19765 मामले दर्ज किये गये जबकि 2015 में इस अवधि में भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और पोक्सो कानून के अंतर्गत 10,854 बलात्कार के मामले दर्ज हुए थे। बच्चियों से बलात्कार और यौन हिंसा के मामले में मध्य प्रदेश सबसे आगे है जबकि इसके बाद उत्तर प्रदेश, ओडिशा और तमिलनाडु का स्थान रहा है।

भारत में महिलाएँ

- विद्वानों का मानना है कि प्राचीन भारत में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा हासिल था। पतंजलि और कात्यायन जैसे प्राचीन भारतीय व्याकरणविदों का कहना है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी।
- ऋग्वेदिक ऋचाएँ यह बताती हैं कि महिलाओं की शादी एक परिपक्व उम्र में होती थी और संभवत: उन्हें अपना पति चुनने की भी आजादी थी। ऋग्वेद और उपनिषद जैसे ग्रंथ कई महिला साध्वियों और संतों के बारे में बताते हैं जिनमें गार्गी और मैत्रेयी के नाम उल्लेखनीय हैं।
- समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति में मध्ययुगीन काल के दौरान और अधिक गिरावट आयी जब भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह पर रोक, सामाजिक जिंदगी का एक हिस्सा बन गयी थी।
- भारतीय उपमहाद्वीप में मुसलमानों की जीत ने परदा प्रथा को भारतीय समाज में ला दिया। राजस्थान के राजपूतों में जौहर की प्रथा थी। भारत के कुछ हिस्सों में देवदासियाँ या मंदिर की महिलाओं को यौन शोषण का शिकार होना पड़ा था। बहुविवाह की प्रथा हिन्दू क्षत्रिय शासकों में व्यापक रूप से प्रचलित थी। कई मुस्लिम परिवारों में महिलाओं को जनाना क्षेत्रों तक ही सीमित रखा गया था।
- रजिया सुल्तान दिल्ली पर शासन करने वाली एकमात्र महिला सम्राज्ञी बनीं। गोंड की महारानी दुर्गावती ने 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ खान से लड़कर अपनी जान गँवाने से पहले पंद्रह वर्षों तक शासन किया था। चांद बीबी ने 1590 के दशक में अकबर की शक्तिशाली मुगल सेना के खिलाफ अहमदनगर की रक्षा की।
- जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ ने राजशाही शक्ति का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया और मुगल राजगद्दी के पीछे वास्तविक शक्ति के रूप में पहचान हासिल की। मुगल राजकुमारी जहाँआरा और जेबुन्निसा सुप्रसिद्ध कवियित्रियाँ थीं और उन्होंने सत्तारूढ़ प्रशासन को भी प्रभावित किया। शिवाजी की माँ जीजाबाई को एक योद्धा और एक प्रशासक के रूप में उनकी क्षमता के कारण क्वीन रीजेंट के रूप में पदस्थापित किया गया था।
- भक्ति आंदोलन ने महिलाओं की बेहतर स्थिति को वापस हासिल करने की कोशिश की और प्रभुत्व के स्वरूपों पर सवाल उठाया।[16] एक महिला संत-कवयित्री मीराबाई भक्ति आंदोलन के सबसे महत्त्वपूर्ण चेहरों में से एक थीं।

- इस अवधि की कुछ अन्य संत-कवयित्रियों में अक्का महादेवी, रामी जानाबाई और लाल देद शामिल हैं। हिंदुत्व के अंदर महानुभाव, वरकारी और कई अन्य जैसे भक्ति संप्रदाय, हिंदू समुदाय में पुरुषों और महिलाओं के बीच सामाजिक न्याय और समानता की खुले तौर पर वकालत करने वाले प्रमुख आंदोलन थे।
- सिक्खों के पहले गुरु, गुरु नानक ने भी पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता के संदेश को प्रचारित किया। उन्होंने महिलाओं को धार्मिक संस्थानों का नेतृत्व करने; सामूहिक प्रार्थना के रूप में गाये जाने वाले वाले कीर्तन या भजन को गाने और इनकी अगुआई करने; धार्मिक प्रबंधन समितियों के सदस्य बनने; युद्ध के मैदान में सेना का नेतृत्व करने; विवाह में बराबरी का हक और अमृत (दीक्षा) में समानता की अनुमति देने की वकालत की।
- अंग्रेजी शासन के दौरान राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, आदि जैसे कई सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिये लड़ाइयाँ लड़ीं। हालाँकि इस सूची से यह पता चलता है कि राज युग में अंग्रेजों का कोई भी सकारात्मक योगदान नहीं था, यह पूरी तरह से सही नहीं है क्योंकि मिशनरियों की पत्नियाँ जैसे कि मार्था मौल्ट नी मीड और उनकी बेटी एलिजा काल्डवेल नी मौल्ट को दक्षिण भारत में लडकियों की शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये आज भी याद किया जाता है
- 1829 में गवर्नर-जनरल विलियम केवेंडिश-बेंटिक के तहत राजा राम मोहन राय के प्रयास सती प्रथा के उन्मूलन का कारण बने। विधवाओं की स्थिति को सुधारने में ईश्वरचंद्र विद्यासागर के संघर्ष का परिणाम विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1956 के रूप में सामने आया। कई महिला सुधारकों जैसे कि पंडिता रमाबाई ने भी महिला सशक्तीकरण के उद्देश्य को हासिल करने में मदद की।
- कर्नाटक में कित्तूर रियासत की रानी, कित्तूर चेन्नम्मा ने समाप्ति के सिद्धांत (डाक्ट्रिन ऑफ लैप्स) की प्रतिक्रिया में अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया। तटीय कर्नाटक की महारानी अब्बक्का रानी ने 16वीं सदी में हमलावर यूरोपीय सेनाओं, उल्लेखनीय रूप से पुर्तगाली सेना के खिलाफ सुरक्षा का नेतृत्व किया।
- झाँसी की महारानी रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के भारतीय विद्रोह का झंडा बुलंद किया। आज उन्हें सर्वत्र एक राष्ट्रीय नायिका के रूप में माना जाता है। अवध की सह-शासिका बेगम हजरत महल एक अन्य शासिका थी जिसने 1857 के विद्रोह का नेतृत्व किया था।
- 1929 में मोहम्मद अली जिन्ना के प्रयासों से बाल विवाह निषेध अधिनियम को पारित किया गया, जिसके अनुसार एक लड़की के लिये शादी की न्यूनतम उम्र चौदह वर्ष निर्धारित की गयी थी।
- भारत की आजादी के संघर्ष में महिलाओं ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। भिकाजी कामा, डॉ. एनी बेसेंट, प्रीतिलता वाडेकर, विजयलक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृत कौर, अरुना आसफ अली, सुचेता कृपलानी और कस्तूरबा गाँधी कुछ प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानियों में शामिल हैं।
- अन्य उल्लेखनीय नाम हैं- मुथुलक्ष्मी रेड्डी, दुर्गाबाई देशमुख आदि। सुभाष चंद्र बोस की इंडियन नेशनल आर्मी की झाँसी की रानी रेजीमेंट कैप्टेन लक्ष्मी सहगल सहित पूरी तरह से महिलाओं की सेना थी।
- भारत का संविधान सभी भारतीय महिलाओं को सामान अधिकार (अनुच्छेद-14), राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं करने (अनुच्छेद-15 (1)), अवसर की समानता (अनुच्छेद-16), समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद-39 (घ)) की गारंटी देता है।
- इसके अलावा यह महिलाओं और बच्चों के पक्ष में राज्य द्वारा विशेष प्रावधान बनाए जाने की अनुमति देता है (अनुच्छेद-15(3)), महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने (अनुच्छेद-51(ए)(ई)) और साथ ही काम की उचित एवं मानवीय परिस्थितियाँ सुरक्षित करने और प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने की अनुमति देता है (अनुच्छेद-42)।
- भारत में नारीवादी सक्रियता ने 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध के दौरान रफ्तार पकड़ी। महिलाओं के संगठनों को एक साथ लाने वाले पहले राष्ट्रीय स्तर के मुद्दों में से एक मथुरा बलात्कार का मामला था।
- 1990 के दशक में विदेशी दाता एजेंसियों से प्राप्त अनुदानों ने नई महिला-उन्मुख गैरसरकारी संगठनों (एनजीओ) के गठन को संभव बनाया। स्वयं-सहायता समूहों एवं सेल्फ इम्प्लॉयड वुमेन्स एसोसिएशन (सेवा) जैसे एनजीओ ने भारत में महिलाओं के अधिकारों के लिए एक प्रमुख भूमिका निभाई है।
- भारत सरकार ने 2001 को महिलाओं के सशक्तीकरण (स्वशक्ति) वर्ष के रूप में घोषित किया था।[16] महिलाओं के सशक्तीकरण की राष्ट्रीय नीति 2001 में पारित की गयी थी।
- पिछली जनगणना के मुताबिक देश में प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 933 थी जो एक दशक में बढ़कर अब 940 हो गयी है, आबादी में पुरुषों की संख्या 51.54 फीसदी और महिलाओं की संख्या 48.46 फीसदी है।
- जनगणना के ताजा आँकड़ों के मुताबिक, देश में पुरुषों की संख्या अब 62.37 करोड़ और महिलाओं की संख्या 58.64 करोड़ है।

नई संभावनाओं के तौर पर ब्रिक्स

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

अमरीका द्वारा जारी व्यापार-युद्ध एवं इससे जुड़ी अपेक्षाओं की कसौटी पर दुनिया की उम्मीदों पर ब्रिक्स को देखा जा रहा है जो सम्भवतः एक विकल्प प्रस्तुत कर सकता है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'जनसत्ता', 'अमर उजाला' तथा 'राष्ट्रीय सहारा' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

संरक्षणवाद से सामना (नवभारत टाइम्स)

जोहांसबर्ग में 10वें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन का आयोजन ऐसे समय में हो रहा है जब पूरा विश्व अमेरिकी संरक्षणवाद के खतरे का सामना कर रहा है। हर तरफ चिंता है कि विश्व व्यापार पर इसका क्या असर पड़ेगा? जाहिर है, अभी ब्रिक्स के सामने व्यापार युद्ध के असर से खुद को और पूरी दुनिया को बचाने की जिम्मेदारी है।

हाल में ब्यूनस आयर्स में आयोजित जी-20 के वित्त मंत्रियों के सम्मेलन के बाद चीन ने ब्राजील, रूस, भारत और दक्षिण अफ्रीका से आग्रह किया था कि वे ट्रेड वॉर के खिलाफ एक मोर्चा बनाकर उसकी धार पलटने का प्रयास करें। अभी चीन के खिलाफ खुलकर और भारत पर छिटपुट हमलों की शक्ल में अमेरिका का ट्रेड वॉर चल रहा है। रूस पर अमेरिका के कई तरह के प्रतिबंध पहले से ही जारी हैं। ब्राजील से अमेरिका का अच्छा व्यापारिक रिश्ता कभी रहा ही नहीं। देखना है, इस सम्मेलन में ब्रिक्स देश अमेरिका के इस आक्रामक रवैये को लेकर क्या रणनीति अपनाते हैं। दुनिया के कई और व्यापारिक ब्लॉक भी ब्रिक्स से उम्मीद लगाए बैठे हैं। यहाँ जो रणनीति बनेगी उसी के अनुरूप वे भी अमेरिका की संरक्षणवादी नीतियों के खिलाफ कदम उठाएंगे। इस दृष्टि से यह सम्मेलन काफी अहम हो गया है। आर्थिक मुद्दों के अलावा आतंकवाद को समाप्त करने में सभी देशों का सहयोग, संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे में सुधार, साइबर सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा और वैश्विक व क्षेत्रीय मुद्दों पर भी इस समिट में चर्चा होगी।

भारत ने एक ब्रिक्स रेटिंग एजेंसी की स्थापना का प्रस्ताव रखा है। इस चिंता के तहत कि एस. एंड पी, फिच और मूडीज जैसी आला अमेरिकी रेटिंग एजेंसियां विकासशील देशों के खिलाफ पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाती हैं। 2016 में भारत ने इस पर एक स्टडी भी पेश की थी पर अन्य सदस्य देशों ने ज्यादा उत्साह नहीं दिखाया। इस बार भारत नए सिरे से इस मुद्दे को उठा सकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा है कि ब्रिक्स आतंकवाद से लड़ने के लिए रणनीति बनाए। भारत के लिए यह बहुत बड़ा मुद्दा है। ब्रिक्स के सभी देश पूरी ताकत से मनी लॉन्ड्रिंग और आतंकवादियों को मिलने वाले धन के खिलाफ संयुक्त कार्रवाई करें और साइबर स्पेस में कट्टरपंथी प्रभाव पर नजर रखें तो इससे आतंकवाद से संघर्ष में काफी सहायता मिलेगी। 2017 में चीन में आयोजित ब्रिक्स समिट में भारत को एक बड़ी कामयाबी मिली थी, जब इसके घोषणापत्र में पाकिस्तान स्थित आतंकी संगठनों लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद का नाम शामिल किया गया था। आशा है कि इस बार पिछली बार से कहीं ज्यादा जोरदार ढंग से खुली और समावेशी विश्व अर्थव्यवस्था की मांग दोहराई जाएगी

अमेरिकी धौंस और ब्रिक्स की भूमिका (हिन्दुस्तान)

दुनिया की अर्थव्यवस्था में ब्रिक्स देशों की भूमिका क्या बदलने वाली है? यह सवाल शुक्रवार को खत्म हुए ब्रिक्स के 10वें शिखर सम्मेलन के बाद कहीं ज्यादा प्रासंगिक हो गया है। इस संगठन के सभी सदस्य देशों (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) की गिनती उभरती आर्थिक ताकतों में होती है और इन्हें आर्थिक उदारीकरण का खासा लाभ भी मिला है। मगर अब अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों की 'संरक्षणवादी नीतियों' का शिकार यही देश सबसे ज्यादा हो रहे हैं। संभवतः इसीलिए ब्रिक्स सम्मेलन में सभी सदस्य देश उदारीकरण से इतर नीतियाँ तलाशने और वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी नई जगह बनाने पर राजी हुए हैं।

इस समय दुनिया के कारोबार को संरक्षणवाद और 'ट्रेड वार' खासा प्रभावित कर रहे हैं। खासतौर से संरक्षणवाद कई देशों में जड़े जमाता जा रहा है। शरणार्थी समस्या के बाद यूरोप इन नीतियों की ओर बढ़ा था और अपने दरवाजे दूसरे देशों के लिए बंद करने की वकालत की थी। बाद में, अमेरिका ने इसे भरपूर हवा दी, जबकि वह वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण का अगुवा देश रहा है। यह सच है कि अमेरिका में बेरोजगारी बढ़ी है, लेकिन यह भी समझना होगा कि किन्हीं उदार आर्थिक नीतियों ने नहीं, बल्कि घरेलू नीतियों ने अमेरिका में रोजगार संकट को बढ़ाया है।

'ट्रेड वार' भी इसी दरम्यान पनपा है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपने मुल्क को आर्थिक मुश्किलों से निकालने के लिए चीन के खिलाफ टैरिफ (अतिरिक्त शुल्क) लगाए हैं। चीन भी अपने तईं जवाब दे रहा है और इस मसले को विश्व व्यापार संगठन में ले गया है। फिलहाल तो यह जंग अमेरिका और चीन के बीच सिमटी हुई है, लेकिन इससे हमारा व्यापार भी प्रभावित हो रहा है। चीन के मुकाबले विनिर्माण क्षेत्र (मैन्युफैक्चरिंग) में हमारी भागीदारी कम होने के बाद भी इसकी आँच हम तक पहुँची है। नतीजतन, हमने भी जवाबी शुल्क लगाए हैं और विश्व व्यापार संगठन में अर्जी दी है।

ऐसे में ब्रिक्स देशों की जिम्मेदारी कहीं ज्यादा बढ़ जाती है। अभी तक ये देश वैश्वीकरण से मिलने वाले फायदों का ही गुणा-भाग कर रहे थे। मगर अब जब ब्रिटेन यूरोपीय संघ से बाहर निकल चुका है, यूरोप की आर्थिक प्रगति ठहर चुकी है, इटली-यूनान जैसे देश मुश्किल हालात में हैं और पश्चिमी देश तमाम तरह की कारोबारी बंदिशें लगा रहे हैं, तब यह जरूरी हो जाता है कि ब्रिक्स आगे बढ़कर इन चुनौतियों को स्वीकारे और अपने लिए नई राह तलाशे। जोहांसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में शुक्रवार को खत्म हुई बैठक में इसी पर सहमति बनी है कि किन-किन देशों पर भरोसा करके ब्रिक्स देश आगे बढ़ें। इसमें सफलता की उम्मीद ज्यादा है,

और विश्व को दृढ़तापूर्वक यह संदेश दिया जाएगा कि कारोबार में सिर्फ अपना-अपना हित देखने के घातक प्रभाव होंगे। बहुध्रुवीय दुनिया का निर्माण ब्रिक्स के घोषित लक्ष्यों में एक है, लिहाजा एकाधिकारवादी प्रवृत्ति का मुकाबला तो उसे हर हाल में करना ही होगा।

ब्रिक्स के हासिल (जनसत्ता)

दक्षिण अफ्रीका की राजधानी जोहांसबर्ग में संपन्न हुए ब्रिक्स देशों के दसवें सम्मेलन में भारत ने औद्योगिक और डिजिटल तकनीक के इस्तेमाल से नई और बेहतर दुनिया बनाने की जो बात कही है, वह अफ्रीकी देशों के लिए एक बड़ा संदेश लिए हुए है। भारत के प्रधानमंत्री का यह आह्वान इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि डिजिटल तकनीक ही उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं की नींव है। तीसरी दुनिया के गरीब देश जिस विकास की बाट जोह रहे हैं, उसका सपना डिजिटल और औद्योगिक तकनीक के बिना पूरा नहीं हो सकता। डिजिटल क्रांति ने विकास और निवेश के जो दरवाजे खोले हैं, उसमें तीसरी दुनिया के देशों को भागीदारी बनाना वक्त की जरूरत है। इसीलिए भारत ने ब्रिक्स के मंच से कृत्रिम बौद्धिकता यानी रोबोट की दुनिया, औद्योगिक तकनीक का विकास, कौशल विकास जैसे पक्षों पर जोर दिया। ब्रिक्स देश आज दुनिया की तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था हैं। भारत, चीन और रूस परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र हैं। रूस और चीन जैसे देश दुनिया की महाशक्ति हैं। दो सदस्य रूस और चीन सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य हैं, जिन्हें वीटो का अधिकार हासिल है। सबसे बड़ी बात यह कि इन पाँचों राष्ट्रों के पास विशाल बाजार है। इसलिए ब्रिक्स देशों का यह सम्मेलन आपसी सहयोग के अलावा बड़े बाजार तलाशने की भी कवायद बना रहा।

पिछले कुछ सालों में ब्रिक्स देशों का समूह दुनिया में एक बड़ी ताकत के रूप में उभरा है। इसमें शामिल देश दुनिया की इकतालीस फीसद आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर आर्थिकी के हिसाब से देखें तो इन पाँचों देशों की साझा अर्थव्यवस्था चालीस लाख करोड़ डॉलर से भी ज्यादा बैठती है। इन देशों के पास साढ़े चार लाख करोड़ डॉलर का साझा विदेशी मुद्रा भंडार है। यानी ब्रिक्स ऐसे ताकतवर समूह के रूप मौजूद है जो अमेरिका सहित पश्चिमी देशों के लिए चुनौती पेश कर रहा है। जी-7 जैसे समूह को अपना विस्तार कर जी-20 बनाने की दिशा में सोचना पड़ा। इसलिए ब्रिक्स के मंच से अगर कोई बात दुनिया में पहुँचती है तो उसके अपने नीहितार्थ होते हैं।

भारत के प्रधानमंत्री ने ब्रिक्स सम्मेलन में जाने से पहले अफ्रीका के दो देशों- रवांडा और युगांडा की यात्रा की। किसी भारतीय प्रधानमंत्री का इन देशों का यह पहला दौरा था। भारत ने रवांडा में जल्द ही भारतीय उच्चायोग खोलने की घोषणा भी की। रवांडा और युगांडा जाकर प्रधानमंत्री ने यह संदेश दिया है कि भारत अफ्रीकी मुल्कों के विकास में हर तरह से सहयोग देने को तैयार है। रवांडा को भारत ने बीस करोड़ डॉलर कर्ज भी दिया और एक रक्षा सहयोग समझौता भी किया। पूर्वी अफ्रीकी देशों के साथ भारत के रिश्ते वक्त की जरूरत हैं। चीन ने भी तेजी से अफ्रीकी देशों की ओर रुख किया है। अफ्रीकी देश भारत और चीन के लिए बड़ा बाजार और निवेश का ठिकाना तो हैं ही, साथ ही इनका रणनीतिक महत्त्व भी है। चीन पूर्वी अफ्रीकी देशों के साथ मिलकर वहाँ सैन्य अड्डे बनाने की जुगत में है और इसके जरिये वह हिंद महासागर में पैठ बनाने की कोशिश कर रहा है। यह भारत के लिए बड़ी चुनौती है। ब्रिक्स में चीन और भारत दोनों के हित हैं। पर दोनों देशों के बीच सीमा विवाद और चीन का पाकिस्तान प्रेम एक बड़ी बाधा है। ऐसे में भारत के लिए यह आसान नहीं है कि वह चीन के साथ ऐसे समूह में रहे भी और उसकी चुनौतियों से भी निपटे।

क्योंकि तमाम देशों की सहमति पूर्व में विश्व व्यापार संगठन को लेकर रही है। जलवायु परिवर्तन के मसले पर ही जिस तरह फ्रांस, यूरोप और ब्रिक्स देश आगे बढ़े थे, उससे लगता है कि इस बार भी बात बन जाएगी। हाँ, यूरोप को साथ लाने की कोशिश हमें छोड़नी नहीं चाहिए, चाहे वह अभी संरक्षणवाद की कितनी भी वकालत क्यों न कर रहा हो?

जरूरत जल्द से जल्द क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (आरसीईपी) को मूर्त रूप देने की है। यह 16 देशों (10 आसियान राष्ट्र और छह एशिया-पैसिफिक देश) के बीच एक प्रस्तावित मुक्त व्यापार समझौता है। इस पर सहमति मिलने के बाद न सिर्फ हमारे व्यापार को नई दिशा मिलेगी, बल्कि कुशल श्रमिक व पेशेवरों को भी रोजगार के नए अवसर हासिल होंगे। हमारी कोशिश मुक्त व्यापार की संकल्पना को एशिया में साकार करने की भी होनी चाहिए। इससे 'ट्रेड वार' के गति पकड़ने पर हम ज्यादा प्रभावित नहीं होंगे। हालाँकि हमें यह काम चीन के साथ कोई गुट बनाए बिना करना होगा, वरना लंबी अवधि में यह हमारे लिए नुकसानदेह हो सकता है।

चौथी औद्योगिक क्रांति की चर्चा भी ब्रिक्स सम्मेलन की उपलब्धि मानी जाएगी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इसकी चर्चा अपने भाषण में की। अगर ब्रिक्स देश इस दिशा में आगे बढ़ते हैं, तो हम आने वाले वर्षों में कई सारे बदलाव के गवाह बनेंगे। चौथी औद्योगिक क्रांति में कौशल व डिजिटल विकास का दिमागी शक्ति से मिलन होगा। इसका हमें काफी फायदा मिल सकता है, क्योंकि भारत सॉफ्टवेयर सर्विस में तेजी से आगे बढ़ा है। हमारी कई सेवाएँ अमेरिकी और पश्चिमी देशों को मिलती रही हैं। मगर जिस तरह से हमारे पेशेवरों के सामने वीजा संबंधी दुश्वारियां खड़ी की गई हैं, उसमें बेहतर विकल्प यही है कि ब्रिक्स के दूसरे सदस्य देशों या विकासशील मुल्कों के साथ साझेदारी करके हम आगे बढ़ें। ब्रिक्स में इसकी चर्चा होने से भारतीय कंपनियां इस दिशा में सक्रिय हो सकेंगी।

ब्रिक्स सम्मेलन में आतंकवाद भी एक बड़ा मसला था। वहाँ आतंकवाद के खिलाफ हरसंभव लड़ाई लड़ने पर भी सहमति बनी है। अभी तक चीन जैसे सदस्य देश पाकिस्तान को मदद देकर परोक्ष रूप से इस लड़ाई में अपनी पूरी भागीदारी नहीं निभा पा रहे थे। मगर जिस तरह से अब बीजिंग पर आतंकी जमातों के हिमायती होने का आरोप लगने लगा है, मौजूदा तस्वीर बदलने की उम्मीद बढ़ गई है। पाकिस्तान में भी सत्ता-परिवर्तन हुआ है। इमरान खान वहाँ के नए वजीर-ए-आजम बनने वाले हैं। उन्होंने अपने हालिया भाषणों में पाकिस्तान को एक स्वच्छ मुल्क बनाने की बात कही है, जिससे लगता है कि वह आतंकी जमातों के खिलाफ कुछ ठोस काम करेंगे। हालाँकि उन्होंने सीधे-सीधे किसी का नाम नहीं लिया है, पर चीन व अन्य देशों से संबंध आगे बढ़ाने के लिए वह दहशतगर्दों पर नकेल लगा सकते हैं।

बेस्ट प्रैक्टिस फॉलो' पर सहमति बनना भी गौर करने लायक है। इसके तहत एक-दूसरे देशों की अच्छी आदतों या कार्यक्रमों को अपने यहाँ उतारने की बात कही गई है। जैसे, भारत से निकला योग दुनिया के तमाम देशों में फैल गया है। अच्छी बात है कि 'नॉलेज शेयरिंग' (ज्ञान साझा करना) की तरफ ब्रिक्स देशों ने गंभीरता दिखाई है। इसकी वकालत भारत हमेशा से करता रहा है।

इतिहास के अहम मोड़ पर ब्रिक्स (अमर उजाला)

इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण मोड़ पर दसवें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ। हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अटलांटिक गठबंधन को हिलाकर रख दिया है, जो उसके वैश्विक वर्चस्व का प्रमुख

ट्रेड वार पर दिखी एकजुटता (राष्ट्रीय सहारा)

हाल ही में 25 से 27 जुलाई को दक्षिण अफ्रीका के जोहाँसबर्ग में आयोजित दसवें ब्रिक्स (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) शिखर सम्मेलन की ओर पूरी दुनिया की निगाहें लगी हुई थीं। इस सम्मेलन का विशेष महत्त्व इसलिए था, क्योंकि इस समय पूरा विश्व अमेरिकी संरक्षणवाद और नियंत्रण आतंकवाद के खतरे का सामना कर रहा है। ब्रिक्स के सामने व्यापार युद्ध और आतंकवाद के असर से न केवल खुद को वरन पूरी दुनिया को बचाने की जिम्मेदारी है। यह महत्त्वपूर्ण है कि 27 जुलाई को 10वें ब्रिक्स सम्मेलन को जो ब्रिक्स घोषणापत्र ब्रिक्स देशों द्वारा जारी किया गया, उसमें अमेरिकी व्यापार संरक्षणवाद और नियंत्रण आतंकवाद से निपटने के लिए एक समग्र रुख का आह्वान किया गया है। 10वें ब्रिक्स सम्मेलन में ब्रिक्स देशों के बीच इस बात पर सहमति बनी कि विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के नियंत्रण ढाँचे में स्थापित किए गए नियमों के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था ही आगे बढ़ेगी। अब अर्थतंत्र, कारोबार, वित्त, सुरक्षा और मानविकी के क्षेत्र सामूहिकता और सहयोग से ही आगे बढ़ेंगे। अब एकाधिकार और संरक्षणवादी प्रवृत्ति का पुराना दौर दोहराने नहीं दिया जाएगा। शिखर सम्मेलन में जनतंत्र एवं बहुपक्षीय सहयोग की जोरदार वकालत की गई है। 2030 तक भुखमरी की स्थितियों से पूरी तरह निपटने का लक्ष्य रखा गया है। पर्यावरण के अनुकूल एनर्जी सिस्टम को विकसित करने के लिए ब्रिक्स एनर्जी रिसर्च कोऑपरेशन प्लेटफॉर्म बनाने का निर्णय लिया गया है। घोषणापत्र में कट्टरपंथ से निपटने, आतंकवादियों के वित्त पोषण के माध्यमों को अवरुद्ध करने, आतंकी शिविरों को तबाह करने और आतंकी संगठनों द्वारा इंटरनेट के दुरूपयोग को रोकने जैसे मुद्दे प्रमुख रूप से शामिल हैं। ब्रिक्स देशों के समूह ने कहा कि आतंकी कृत्यों को अंजाम देने, उनके साजिशकर्ताओं या उनमें मदद देने वालों को निश्चित रूप से जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए। गौरतलब है कि कई 17 वर्ष पूर्व 2001 में ब्राजील, रूस, भारत और चीन के जिस ब्रिक्स समूह ने अंतर्राष्ट्रीय कारोबारी परिदृश्य में एकजुट होकर आगे बढ़ने के लिए कदम उठाए थे, वही समूह 2011 में दक्षिण अफ्रीका को साथ लेकर ब्रिक्स के नाम से चमकते हुए तेजी से कदम बढ़ा रहा है। ब्रिक्स की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्य देशों की सहायता करना है। ये देश एक-दूसरे के विकास के लिए वित्तीय, तकनीक और व्यापार के क्षेत्र में एक-दूसरे की सहायता करते हैं। ब्रिक्स देशों के पास खुद का एक बैंक भी है। इसका कार्य सदस्य देशों और अन्य देशों को कर्ज के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करना है। ब्रिक्स देशों के पास दुनिया की सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का करीब 30 फीसद हिस्सा है। विश्व का 18 प्रतिशत व्यापार ब्रिक्स देशों की मुट्ठी में है। पिछले 10 वर्षो में इन देशों ने नियंत्रण आर्थिक विकास में 50 प्रतिशत भागीदारी निभायी है। साथ ही पिछले 10 वर्षो में उभरते बाजारों और विकासशील देशों के बीच सहयोग के लिए ब्रिक्स एक महत्त्वपूर्ण मंच बन गया है। ब्रिक्स सदस्य देशों में एशिया, अफ्रीका, यूरोप एवं अमेरिका के देश शामिल हैं एवं जी20 के देश भी शामिल हैं।निश्चित रूप से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 10वें ब्रिक्स सम्मेलन में किया गया संबोधन अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे अमेरिकी संरक्षणवाद और आतंकवाद के मुद्दे को उठाया गया। मोदी ने कहा कि सभी राष्ट्रों को यह जिम्मेदारी लेनी होगी कि वे खुले नियंत्रण व्यापार में बाधक न बनें और उनकी धरती से कोई भी आतंकी गतिविधि न होने पाए। मोदी ने बहुपक्षवाद, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और नियम-आधारित विश्व व्यवस्था के प्रति भारत की प्रतिबद्धता की पुष्टि की। निश्चित रूप से 10वाँ ब्रिक्स सम्मेलन पूरी दुनिया के आधार रहा है। ऐसा तब हुआ, जब ट्रंप ने अपने प्रशासन की अवहेलना करते हुए रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साथ मुलाकात की। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अमेरिका-चीन के मध्य गहराते व्यापार युद्ध को अमेरिका चौतरफा युद्ध में बदल रहा है, ताकि मेड इन चाइना 2025 की रणनीति के सहारे चीन के प्रमुख औद्योगिक शक्ति बनने के प्रयासों को विफल किया जा सके।

ऐसे में भारत जैसे देशों के लिए यह जरूरी है कि वे खुले अवसरों का लाभ उठाएं और यह सुनिश्चित करें कि दो बड़ी शक्तियों के संघर्ष में उन्हें कोई नुकसान न हो। नई दिल्ली ने अब तक बेहतर कूटनीति का परिचय दिया है-इसने वुहान में चीन से बातचीत की और डोकलाम संकट के दौरान बढ़े अनावश्यक तनाव को कम कर दिया। इसने सोची शिखर सम्मेलन के माध्यम से रूस के साथ अपने खराब होते संबंधों को दुरुस्त किया है और इसकी मजबूत प्रतिबद्धता है कि अमेरिका की धमकी में वह मास्को के साथ वक्त की कसौटी पर परखे हुए हथियार हस्तांतरण संधि को खत्म नहीं करेगा। इसने यह भी सुनिश्चित किया है कि अमेरिका के साथ भी वह अपने रिश्ते को बरकरार रखेगा, जिसका संकेत आगामी सितंबर में होने वाली "2+2" वार्ता से मिलता है। इसलिए इस शिखर सम्मेलन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू जोहान्सबर्ग घोषणा या वहाँ दिया गया प्रधानमंत्री का भाषण नहीं है, बल्कि चीन के नेता शी जिनपिंग और रूस के नेता व्लादिमीर पुतिन के साथ उनकी द्विपक्षीय वार्ता है।

यह ब्रिक्स का दसवाँ शिखर सम्मेलन था, पहला शिखर सम्मेलन 2009 में रूस के येकार्टेरिनबर्ग में हुआ था। कई मायनों में ब्रिक्स एक कृत्रिम संगठन है और आज भी यह एक समान देशों का संगठन नहीं है। उनमें से दो-चीन और भारत दुनिया में सबसे ज्यादा आबादी वाले देश हैं। ये दोनों देश दुनिया की कुल आबादी का 40 फीसदी और विश्व के कुल क्षेत्रफल का 30 फीसदी हिस्सा घेरते हैं। इन दोनों देशों का संयुक्त सकल घरेलू उत्पाद अमेरिका और यूरोप के सकल घरेलू उत्पाद को टक्कर देता है। चीन और भारत, दोनों तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाएँ हैं, लेकिन ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका और रूस की अर्थव्यवस्थाएं संघर्ष कर रही हैं और यहाँ तक कि नकारात्मक विकास की दिशा मे आगे बढ़ रही हैं।

वर्षों से उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप में ब्रिक्स की महत्ता बढ़ी ही है। वर्ष 2014 में उभरते देश के विकास एजेंडे को बढ़ावा देने में इसकी गंभीरता के संकेत मिलते हैं, ब्रिक्स ने विश्व बैंक और एशियन डेवलपमेंट बैंक जैसे विकास बैंकों की तर्ज पर एक नया ब्रिक्स बैंक बनाया। 2015 में इन देशों ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की तर्ज पर आकस्मिक रिजर्व व्यवस्था बनाई। ब्रिक्स का इरादा विश्व बैंक, एशियन डेवलपमेंट बैंक या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को चुनौती देना नहीं है, बल्कि ब्रिक्स ने यह संकेत दिया है कि वह इन अमेरिकी और जापानी वर्चस्व वाले निकायों के तौर-तरीके से पूरी तरह से संतुष्ट नहीं है और इसलिए उसका पूरक तैयार कर रहा है। इस अर्थ में एक नई विश्व व्यवस्था का आह्वान करने का उसका इरादा नहीं है, बल्कि मौजूदा में से सर्वोत्तम शर्तों का दोहन करना है।

रूस जैसे देश के लिए, जिसके अमेरिका के साथ रिश्ते बेहतर नहीं हैं और जो क्रीमिया और यूक्रेन के कारण यूरोपीय देशों से प्रतिबंधित है, ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में भाग लेना एक बड़ी बात है, जो यूरोप और मध्य पूर्व में अपने दांव-पेच से अटलांटिक गठबंधन पर दबाव बनाता है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने, जो अगले वर्ष लोकसभा चुनाव का सामना करने वाले हैं, पूरे भारत को एक प्रमुख वैश्विक अर्थव्यवस्था बनाने पर ध्यान केंद्रित किया है, जिन्हें अमेरिका, चीन और रूस के बीच चल रहे भूराजनीतिक संघर्ष में सुखद परिणाम का भरोसा है। जोहान्सबर्ग के शिखर

Committed To Excellence

साथ-साथ भारत के लिए बहुत उपयोगी रहा है। ब्रिक्स सम्मेलन में इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया कि यदि विश्व व्यापार व्यवस्था वैसे काम नहीं करती जैसे कि उसे करना चाहिए तो डब्ल्यूटीओ ही एक ऐसा संगठन है, जहाँ इसे मजबूत किया जा सकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो दुनियाभर में विनाशकारी व्यापार लड़ाइयां ही 21वीं शताब्दी की हकीकत बन जाएँगी। डब्ल्यूटीओ के अस्तित्त्व को बनाए रखने की इच्छा रखने वाले देशों के द्वारा यह बात भी गहराई से आगे बढ़ाई जानी होगी कि विभिन्न देश एक-दूसरे को व्यापारिक हानि पहुँचाने की होड़ की बजाय डब्ल्यूटीओ के मंच से ही वैश्वीकरण के दिखाई दे रहे नकारात्मक प्रभावों का उपयुक्त हल निकालें। इस शिखर सम्मेलन से ट्रेड वॉर के खिलाफ सामूहिक रूप से संगठित होकर ट्रेड वार की धार पलटने का प्रयास हुआ है। चूँकि अभी चीन के खिलाफ खुलकर और भारत पर छिटपुट हमले की शक्ल में अमेरिका का ट्रेड वॉर चल रहा है। रूस पर अमेरिका के कई तरह के प्रतिबंध पहले से ही जारी हैं। ब्राजील से अमेरिका का अच्छा व्यापारिक रिश्ता कभी रहा ही नहीं। ऐसे में सम्मेलन में ब्रिक्स देश अमेरिका के इस आक्रामक रवैये को लेकर रणनीति बनाकर आगे बढ़े हैं। दसवें ब्रिक्स सम्मेलन में आर्थिक मुद्दों के अलावा आतंकवाद को समाप्त करने में सभी बिक्स देशों का सहयोग, संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे में सुधार, साइबर सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा और नियंत्रण व क्षेत्रीय मुद्दों के साथ-साथ आतंकवाद से लड़ने के लिए नई रणनीति बनाना महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस नई रणनीति के तहत अब ब्रिक्स के सभी देश पूरी ताकत से मनी लॉन्ड्रिंग और आतंकवादियों को मिलने वाले धन के खिलाफ संयुक्त कार्रवाई करेंगे और साइबर स्पेस में कट्टरपंथी प्रभाव पर नजर रखेंगे। इससे आतंकवाद से संघर्ष में काफी सहायता मिलेगी। निश्चित रूप से इस बार के शिखर सम्मेलन में पिछली बार के शिखर सम्मेलन से कहीं ज्यादा जोरदार ढंग से खुली और समावेशी विश्व अर्थव्यवस्था की मांग दोहराई गई है और विश्व को दृढ़तापूर्वक यह संदेश दिया गया कि कारोबार में सिर्फ अपना-अपना हित देखने के घातक प्रभाव होंगे। सम्मेलन के माध्यम से दुनिया को यह जोरदार संदेश दिया गया है कि बहुध्रुवीय दुनिया का निर्माण ब्रिक्स के घोषित लक्ष्यों में से एक है, लिहाजा अमेरिका के संरक्षणवादी कदमों और नियंत्रण आतंकवाद की प्रवृत्ति का मुकाबला करने के लिए ब्रिक्स के कदम अब तेजी से आगे बढ़ेंगे।

सामूहिकता और सहयोग (नवभारत टाइम्स)

एकतरफा ट्रेड-वॉर के माहौल में ब्रिक्स देशों ने यह बात दृढ़ता से दोहराई है कि एकाधिकार और संरक्षणवादी प्रवृत्ति वाला पुराना दौर अब वापस नहीं लौटने वाला। दुनिया का कारोबार आपसी सहयोग, समझदारी और सौहार्द से ही चलेगा। सामूहिकता के आधार पर जो भी निर्णय लिए जाएँगे, सबको मानना होगा। दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग में हुए दसवें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में अर्थतंत्र, व्यापार, वित्त, राजनीतिक सुरक्षा और मानविकी के आदान-प्रदान जैसे क्षेत्रों में व्यापक सहयोग करने का फैसला किया गया। ब्रिक्स देशों में इस बात पर सहमति बनी कि संयुक्त राष्ट्र, जी-20 ग्रुप, विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) आदि के ढाँचे में स्थापित नियमों के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की दृढ़ता से रक्षा की जानी चाहिए।

सम्मेलन में चौथी औद्योगिक क्रांति की अवधारणा खूब चर्चा में रही और कहा गया कि अभी विश्व को इस क्रांति के अनुरूप ढलना होगा। इस मौके पर जारी घोषणापत्र में जनतंत्र व बहुपक्षीय सहयोग की वकालत की गई और सदस्य देशों के बीच व्यापार को अधिकाधिक बढ़ाने पर जोर दिया गया। 2030 तक भुखमरी की स्थितियों को पूरी तरह दूर करने के लक्ष्य सम्मेलन में मोदी की भागीदारी सम्मेलन के विषय के संदर्भ में हुई, जो अफ्रीका से संबंधित है। भारत और चीन, दोनों देश अफ्रीकी देशों को लुभा रहे हैं और मोदी ने जहाँ युगांडा और रवांडा का दौरा किया, वहीं शी जिनपिंग ने सेनेगल, रवांडा और मॉरिशस का दौरा किया। चीन अफ्रीका का सबसे बड़ा व्यापार साझेदार है और इन देशों के साथ अपने संबंधों को और आगे बढ़ाने के लिए जोर डाल रहा है।

संभवत: शिखर सम्मेलन में चर्चा का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय अमेरिकी व्यापार युद्ध और उसकी संरक्षणवादी नीति होगी। हालाँकि भारत ने हाल ही में सतह से हवा में मार करने वाली रूसी एस-400 मिसाइल हासिल करने पर अमेरिकी दबाव को कम करने में सफलता पाई है। फिर भी वह वैश्विक व्यापार युद्ध के व्यापार असर से बचने में सक्षम नहीं होगा, खासकर तब, जब उसे अपने निर्यात को काफी हद तक बढ़ाने की जरूरत है। कुछ अनुमानों के मुताबिक, 2020 तक व्यापार युद्ध से दुनिया को दसियों खरब डॉलर का नुकसान हो सकता है।

ब्रिक्स का जोहांसबर्ग घोषणापत्र मानक नीति पर आधारित था। चीन अमेरिका के खिलाफ एक मजबूत बयान चाहता था, लेकिन अभी इसने अपना रुख नरम रखा। भारत ब्रिक्स घोषणापत्र को शियामेन घोषणापत्र के अनुरूप बनाना चाहता, जहाँ पाकिस्तानी आतंकवादी संगठन जैश-ए मोहम्मद और लश्कर-ए तैयबा का नाम संयुक्त घोषणापत्र में शामिल किया गया था। लेकिन इस बार उनका नाम नहीं था, हालाँकि आतंकवाद के खिलाफ काफी मजबूत बयान उसमें है। ईरान के परमाणु मुद्दे से निपटने के लिए ब्रिक्स ने संयुक्त व्यापक कार्ययोजना (जेसीपीओए) पर समर्थन बढ़ाया है और इस मामले में अमेरिका के बजाय ईरान का समर्थन किया, अमेरिका ने इस समझौते से हाथ खींच लिया है। इसी तरह, इसने विश्व व्यापार संगठन के साथ वैश्विक व्यापार व्यवस्था के महत्त्व को दोहराया है।

के प्रति वचनबद्धता दोहराई गई। यह भी कहा गया कि ब्रिक्स देश आपस में और दूसरे देशों के साथ सहयोग करके पेरिस संधि के लक्ष्यों को पूरा करने की कोशिश करेंगे। विकसित देशों से कहा गया कि उन्हें तकनीकी और वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी चाहिए, ताकि विकासशील देश अपने यहाँ पेरिस संधि के अनुरूप वैकल्पिक प्रौद्योगिकी की व्यवस्था कर सकें।

घोषणापत्र में ब्रिक्स देशों के बीच ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया गया है, ताकि वे भी पर्यावरण के अनुकूल एनर्जी सिस्टम विकसित कर सकें और स्वच्छ परिवेश में सामंजस्य कायम कर सकें। इसके लिए ब्रिक्स एनर्जी रिसर्च कोऑपरेशन प्लेटफॉर्म बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। ब्रिक्स ऐग्रिकल्चर रिसर्च प्लेटफॉर्म बनाने के भारतीय प्रस्ताव को सभी देशों ने समर्थन दिया। आतंकवाद से निपटने के लिए एक व्यापक योजना का खाका रखा गया है, जिसमें कट्टरपंथ से निपटने, आतंकवादियों के वित्तपोषण माध्यमों को अवरुद्ध करने, आतंकी शिविरों को तबाह करने और आतंकी संगठनों द्वारा इंटरनेट के दुरुपयोग को रोकने की बात है।

इस मौके पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि चौथी औद्योगिक क्रांति के लिए ब्रिक्स देशों को आपस में सहयोग करना चाहिए। उन्होंने कहा कि दुनिया में विकसित हो रहे डिजिटल तौर-तरीके हमारे लिए अवसर भी हैं और चुनौती भी। हमें सुनिश्चित करना है कि प्रौद्योगिकी में बदलाव की गति को हमारे पाठ्यक्रमों में जगह मिले। दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति रामाफोसा ने भी कहा कि ब्रिक्स देशों को चौथी औद्योगिक क्रांति से मिले अवसरों का लाभ उठाते हुए इसमें सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। जाहिर है, इस शिखर सम्मेलन से यह उम्मीद बढ़ी है कि दुनिया के बारे में तमाम फैसले ताकत से नहीं, बल्कि आपसी सहयोग और मानवीय मूल्यों की रोशनी में किए जाएँगे।

सारांश

- जोहांसबर्ग में 10वें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन का आयोजन ऐसे समय में हो रहा है जब पूरा विश्व अमेरिकी संरक्षणवाद के खतरे का सामना कर रहा है। हर तरफ चिंता है कि विश्व व्यापार पर इसका क्या असर पड़ेगा
- हाल में ब्यूनस आयर्स में आयोजित जी-20 के वित्त मंत्रियों के सम्मेलन के बाद चीन ने ब्राजील, रूस, भारत और दक्षिण अफ्रीका से आग्रह किया था कि वे ट्रेड वॉर के खिलाफ एक मोर्चा बनाकर उसकी धार पलटने का प्रयास करें।
- अभी चीन के खिलाफ खुलकर और भारत पर छिटपुट हमलों की शक्ल में अमेरिका का ट्रेड वॉर चल रहा है। रूस पर अमेरिका के कई तरह के प्रतिबंध पहले से ही जारी हैं। ब्राजील से अमेरिका का अच्छा व्यापारिक रिश्ता कभी रहा ही नहीं।
- आर्थिक मुद्दों के अलावा आतंकवाद को समाप्त करने में सभी देशों का सहयोग, संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे में सुधार, साइबर सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा और वैश्विक व क्षेत्रीय मुद्दों पर भी इस समिट में चर्चा होगी।
- भारत ने एक ब्रिक्स रेटिंग एजेंसी की स्थापना का प्रस्ताव रखा है। इस चिंता के तहत कि एस एंड पी, फिच और मूडीज जैसी आला अमेरिकी रेटिंग एजेंसियां विकासशील देशों के खिलाफ पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाती हैं। 2016 में भारत ने इस पर एक स्टडी भी पेश की थी पर अन्य सदस्य देशों ने ज्यादा उत्साह नहीं दिखाया।
- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा है कि ब्रिक्स आतंकवाद से लड़ने के लिए रणनीति बनाए। भारत के लिए यह बहुत बड़ा मुद्दा है। ब्रिक्स के सभी देश पूरी ताकत से मनी लॉन्ड्रिंग और आतंकवादियों को मिलने वाले धन के खिलाफ संयुक्त कार्रवाई करें और साइबर स्पेस में कट्टरपंथी प्रभाव पर नजर रखें तो इससे आतंकवाद से संघर्ष में काफी सहायता मिलेगी।
- 2017 में चीन में आयोजित ब्रिक्स समिट में भारत को एक बड़ी कामयाबी मिली थी, जब इसके घोषणापत्र में पाकिस्तान स्थित आतंकी संगठनों लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद का नाम शामिल किया गया था।
- इस संगठन के सभी सदस्य देशों (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) की गिनती उभरती आर्थिक ताकतों में होती है और इन्हें आर्थिक उदारीकरण का खासा लाभ भी मिला है। मगर अब अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों की 'संरक्षणवादी नीतियों' का शिकार यही देश सबसे ज्यादा हो रहे हैं।
- अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपने मुल्क को आर्थिक मुश्किलों से निकालने के लिए चीन के खिलाफ टैरिफ (अतिरिक्त शुल्क) लगाए हैं। चीन भी अपने तईं जवाब दे रहा है और इस मसले को विश्व व्यापार संगठन में ले गया है।
- जरूरत जल्द से जल्द क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (आरसीईपी) को मूर्त रूप देने की है। यह 16 देशों (10 आसियान राष्ट्र और छह एशिया-पैसिफिक देश) के बीच एक प्रस्तावित मुक्त व्यापार समझौता है।
- चौथी औद्योगिक क्रांति की चर्चा भी ब्रिक्स सम्मेलन की उपलब्धि मानी जाएगी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इसकी चर्चा अपने भाषण में की। अगर ब्रिक्स देश इस दिशा में आगे बढ़ते हैं, तो हम आने वाले वर्षों में कई सारे बदलाव के गवाह बनेंगे। चौथी औद्योगिक क्रांति में कौशल व डिजिटल विकास का दिमागी शक्ति से मिलन होगा।
- बेस्ट प्रैक्टिस फॉलो' पर सहमति बनना भी गौर करने लायक है। इसके तहत एक-दूसरे देशों की अच्छी आदतों या कार्यक्रमों को अपने यहाँ उतारने की बात कही गई है। जैसे, भारत से निकला योग दुनिया के तमाम देशों में फैल गया है। अच्छी बात है कि 'नॉलेज शेयरिंग' (ज्ञान साझा करना) की तरफ ब्रिक्स देशों ने गंभीरता दिखाई है।
- ब्रिक्स देश आज दुनिया की तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था हैं। भारत, चीन और रूस परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र हैं। रूस और चीन जैसे देश दुनिया की महाशक्ति हैं। दो सदस्य रूस और चीन सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य हैं, जिन्हें वीटो का अधिकार हासिल है। सबसे बड़ी बात यह कि इन पाँचों राष्ट्रों के पास विशाल बाजार है।
- इसमें शामिल देश दुनिया की इकतालीस फीसद आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर आर्थिकी के हिसाब से देखें तो इन पाँचों देशों की साझा अर्थव्यवस्था चालीस लाख करोड़ डॉलर से भी ज्यादा बैठती है। इन देशों के पास साढ़े चार लाख करोड़ डॉलर का साझा विदेशी मुद्रा भंडार है।
- यह ब्रिक्स का दसवां शिखर सम्मेलन था, पहला शिखर सम्मेलन 2009 में रूस के येकार्टेरिनबर्ग में हुआ था। कई मायनों में ब्रिक्स एक कृत्रिम संगठन है और आज भी यह एक समान देशों का संगठन नहीं है।
- उनमें से दो-चीन और भारत दुनिया में सबसे ज्यादा आबादी वाले देश हैं। ये दोनों देश दुनिया की कुल आबादी का 40 फीसदी और विश्व के कुल क्षेत्रफल का 30 फीसदी हिस्सा घेरते हैं। इन दोनों

देशों का संयुक्त सकल घरेलू उत्पाद अमेरिका और यूरोप के सकल घरेलू उत्पाद को टक्कर देता है।

- ब्रिक्स ने विश्व बैंक और एशियन डेवलपमेंट बैंक जैसे विकास बैंकों की तर्ज पर एक नया ब्रिक्स बैंक बनाया। 2015 में इन देशों ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की तर्ज पर आकस्मिक रिजर्व व्यवस्था बनाई। ब्रिक्स का इरादा विश्व बैंक, एशियन डेवलपमेंट बैंक या अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को चुनौती देना नहीं है, बल्कि ब्रिक्स ने यह संकेत दिया है कि वह इन अमेरिकी और जापानी वर्चस्व वाले निकायों के तौर-तरीके से पूरी तरह से संतुष्ट नहीं है और इसलिए उसका पूरक तैयार कर रहा है।
- जोहान्सबर्ग के शिखर सम्मेलन में मोदी की भागीदारी सम्मेलन के विषय के संदर्भ में हुई, जो अफ्रीका से संबंधित है। भारत और चीन, दोनों देश अफ्रीकी देशों को लुभा रहे हैं और मोदी ने जहाँ युगांडा और रवांडा का दौरा किया, वहीं शी जिनपिंग ने सेनेगल, रवांडा और मॉरिशस का दौरा किया। चीन अफ्रीका का सबसे बड़ा व्यापार साझेदार है और इन देशों के साथ अपने संबंधों को और आगे बढ़ाने के लिए जोर डाल रहा है।
- ईरान के परमाणु मुद्दे से निपटने के लिए ब्रिक्स ने संयुक्त व्यापक कार्ययोजना (जेसीपीओए) पर समर्थन बढ़ाया है और इस मामले में अमेरिका के बजाय ईरान का समर्थन किया, अमेरिका ने इस समझौते से हाथ खींच लिया है।
- यह महत्त्वपूर्ण है कि 27 जुलाई को 10वें ब्रिक्स सम्मेलन को जो ब्रिक्स घोषणापत्र ब्रिक्स देशों द्वारा जारी किया गया, उसमें अमेरिकी व्यापार संरक्षणवाद और नियंत्रण आतंकवाद से निपटने के लिए एक समग्र रुख का आह्वान किया गया है। 10वें ब्रिक्स सम्मेलन में ब्रिक्स देशों के बीच इस बात पर सहमति बनी कि विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के नियंत्रण ढाँचे में स्थापित किए गए नियमों के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था ही आगे बढ़ेगी।
- शिखर सम्मेलन में जनतंत्र एवं बहुपक्षीय सहयोग की जोरदार वकालत की गई है। 2030 तक भुखमरी की स्थितियों से पूरी तरह निपटने का लक्ष्य रखा गया है। पर्यावरण के अनुकूल एनर्जी सिस्टम को विकसित करने के लिए ब्रिक्स एनर्जी रिसर्च कोऑपरेशन प्लेटफॉर्म बनाने का निर्णय लिया गया है। घोषणापत्र में कट्टरपंथ से निपटने, आतंकवादियों के वित्त पोषण के माध्यमों को अवरुद्ध करने, आतंकी शिविरों को तबाह करने और आतंकी संगठनों द्वारा इंटरनेट के दुरूपयोग को रोकने जैसे मुद्दे प्रमुख रूप से शामिल हैं।
- गौरतलब है कि कई 17 वर्ष पूर्व 2001 में ब्राजील, रूस, भारत और चीन के जिस ब्रिक्स समूह ने अंतर्राष्ट्रीय कारोबारी परिदृश्य में एकजुट होकर आगे बढ़ने के लिए कदम उठाए थे, वही समूह 2011 में दक्षिण अफ्रीका को साथ लेकर ब्रिक्स के नाम से चमकते हुए तेजी से कदम बढ़ा रहा है। ब्रिक्स की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्य देशों की सहायता करना है। ये देश एक-दूसरे के विकास के लिए वित्तीय, तकनीक और व्यापार के क्षेत्र में एक-दूसरे की सहायता करते हैं।
- ब्रिक्स देशों के पास दुनिया की सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का करीब 30 फीसद हिस्सा है। विश्व का 18 प्रतिशत व्यापार ब्रिक्स देशों की मुट्ठी में है। पिछले 10 वर्षो में इन देशों ने नियंत्रण आर्थिक विकास में 50 प्रतिशत भागीदारी निभाई है। साथ ही पिछले 10 वर्षो में उभरते बाजारों और विकासशील देशों के बीच सहयोग के लिए ब्रिक्स एक महत्त्वपूर्ण मंच बन गया है।
- 2030 तक भुखमरी की स्थितियों को पूरी तरह दूर करने के लक्ष्य के प्रति वचनबद्धता दोहराई गई। यह भी कहा गया कि ब्रिक्स देश आपस में और दूसरे देशों के साथ सहयोग करके पेरिस संधि के लक्ष्यों को पूरा करने की कोशिश करेंगे। विकसित देशों से कहा गया कि उन्हें तकनीकी और वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी चाहिए, ताकि विकासशील देश अपने यहाँ पेरिस संधि के अनुरूप वैकल्पिक प्रौद्योगिकी की व्यवस्था कर सकें।
- ब्रिक्स एनर्जी रिसर्च कोऑपरेशन प्लेटफॉर्म बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। ब्रिक्स ऐग्रिकल्चर रिसर्च प्लेटफॉर्म बनाने के भारतीय प्रस्ताव को सभी देशों ने समर्थन दिया।

ब्रिक्स

- ब्रिक्स (BRICS) उभरती राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के एक संघ का शीर्षक है। इसके घटक राष्ट्र ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका हैं। इन्ही देशों के अंग्रेजी में नाम के प्रथमाक्षरों B, R, I, C व S से मिलकर इस समूह का यह नामकरण हुआ है।
- मूलत: 2010 में दक्षिण अफ्रीका के शामिल किए जाने से पहले इसे 'ब्रिक' के नाम से जाना जाता था। रूस को छोडकर ब्रिक्स के सभी सदस्य विकासशील या नव औद्योगीकृत देश हैं जिनकी अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही है। ये राष्ट्र क्षेत्रीय और वैश्विक मामलों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।
- 'ब्रिक' शब्दावली के जन्मदाता जिम ओश्नील हैं। ओश्नील ने इस शब्दावली का प्रयोग सबसे पहले वर्ष 2001 में अपने शोधपत्र में

किया था। उस शोधपत्र का शीर्षक था, 'बिल्डिंग बेटर ग्लोबल इकोनॉमिक ब्रिक्स।' ओश्नील अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय कंसलटेंसी गोल्डमैन सैक्स से जुड़े हैं। गोल्डमैन सैक्स इसके बाद दो बार इस रिपोर्ट को अपडेट कर चुका है।

- जिम ओश्नील के इस प्रसिद्ध शोधपत्र के आठ साल बाद ब्रिक देशों की पहली शिखर स्तर की आधिकारिक बैठक 16 जून, 2009 को रुस के येकाटेरिंगबर्ग में हुई। लेकिन इससे पहले ब्रिक देशों के विदेश मंत्री मई 2008 में एक बैठक कर चुके थे।
- ब्रिक समूह का पहला औपचारिक शिखर सम्मेलन, येकतेरिनबर्ग, रुस में 16 जून, 2009 लुइज इनासियो लूला डा सिल्वा (ब्राजील), दिमित्री मेदवेदेव (रूस), मनमोहन सिंह(भारत) और हू जिन्ताओ (चीन) की अध्यक्षता में हुआ। शिखर सम्मेलन का मुख्य मुद्दा वैश्विक आर्थिक स्थिति में सुधार और वित्तीय संस्थानों में सुधार का था।
- ब्रिक्स की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्य देशों की सहायता करना है। ये देश एक दूसरे के विकास के लिए वित्तीय, तकनीक और व्यापार के क्षेत्र में एक दूसरे की सहायता करते हैं। ब्रिक्स देशों के पास खुद का एक बैंक भी है।
- न्यू डेवलपमेंट बैंक जिसे पहले ब्रिक्स बैंक के अनौपचारिक नाम से भी जाना जाता था ब्रिक्स समूह के देशों द्वारा स्थापित किए गए एक नए विकास बैंक का आधिकारिक नाम है। 2014 के ब्रिक्स सम्मेलन में 100 अरब डॉलर की शुरुआती अधिकृत पूंजी के साथ नए विकास बैंक की स्थापना का निर्णय किया गया। माना जा रहा है कि इस बैंक और फंड को पश्चिमी देशों के वर्चस्व वाले विश्व बैंक और आईएमएफ जैसी संस्थाओं के टक्कर में खड़ा किया जा रहा है।
- बैंक पाँच उभरते बाजारों के बीच अधिक से अधिक वित्तीय और विकास सहयोग को बढ़ावा के लिए बनाया गया है। बैंक का मुख्यालय शंघाई, चीन में है। विश्व बैंक के विपरीत जिसमे पूंजी शेयर के आधार पर वोट प्रदान करता है ब्रिक्स बैंक में प्रत्येक भागीदार देश को एक वोट आवंटित किया जाएगा, और भागीदार देशों में से किसी के पास वीटो का अधिकार नहीं होगा।
- 2014 की गणनानुसार चार मूल ब्रिक देशों में 3 अरब लोग या दुनिया की आबादी का 41.4 प्रतिशत शामिल है, तीन महाद्वीपों में दुनिया की भूमि क्षेत्र के एक चौथाई से अधिक को घेरते हैं, और वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का 25 प्रतिशत से अधिक के लिए उत्तरदायी हैं।
- ब्रिक्स का अपना कोई संविधान नही है, लेकिन इसके सम्मेलनों के अंत में जारी घोषणापत्रों के आधार पर इसके निम्नलिखित उद्देश्य माने जा सकते है:-
  - विभिन्न क्षेत्रों में सदस्य देशों के बीच पारस्परिक लाभकारी सहयोग को आगे बढ़ाना, जिससे इन देशों में विकास को गति प्रदान की जा सके।
  - एक न्यायपूर्ण तथा समतापूर्ण विश्व व्यवस्था की स्थापना जो किसी एक समूह के प्रभुत्व में न होकर बहुपक्षीय प्रकृति की हो। इसका मन्तव्य पश्चिमी प्रभुत्व वाले वैश्विक व्यवस्था के स्थान पर एक नई बहुपक्षीय व्यवस्था की स्थापना करना है।
  - वर्तमान विश्व के प्रमुख मुद्दों जैसे जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, विश्व व्यापार, आणविक ऊर्जा आदि का न्यायोचित समाधान।
  - विभिन्न वैश्विक मामलों में निर्णय निर्माण की प्रक्रिया का लोकतंत्रीकरण तथा इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में सुधार, उदाहरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में कोटा सुधार की मांग।
- ब्रिक्स शिखर सम्मेलन का 10वाँ संस्करण जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में 25 जुलाई, 2018 को शुरू हुआ। यह 3 दिवसीय लंबा शिखर सम्मेलन है और सभी ब्रिक्स नेता इसमें शामिल होंगे। इस शिखर सम्मेलन का विषय 'BRICS inAfrica: Collaboration for inclusive growth and shared prosperity in the 4th Industrial Revolution' है। इस बार ब्रिक्स सम्मेलन की मेजबानी दक्षिण अफ्रीका कर रहा है।
- ब्रिक्स अफ्रीकी देशों की बैठक में भाग लेने वाले देश हैं- रवांडा, यूगांडा, टोगो, जाम्बिया, नामीबिया, सेनेगल, गैबन, इथोपिया, अंगोला एवं अफ्रीकी यूनियन।
- भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे आतंकवाद के मुद्दे को उठाया गया। प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि सभी राष्ट्रों को यह जिम्मेदारी लेनी होगी कि उनकी धरती से कोई भी आतंकी गतिविधि न होने पाए।
- प्रधानमंत्री मोदी ने बहुपक्षवाद, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और नियम-आधारित विश्व व्यवस्था के प्रति भारत की प्रतिबद्धता की पुष्टि की।
- सहयोगी ब्रिक्स नेताओं के साथ मोदी ने विभिन्न वैश्विक मुद्दों जैसे प्रौद्योगिकी के महत्त्व, कौशल विकास और प्रभावी बहुपक्षीय सहयोग पर एक बेहतर दुनिया बनाने पर अपने विचार साझा किए।
- इस दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन, ब्राजील के राष्ट्रपति मिशेल टेमर और दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति सेरिल रामाफोसा से भी मिले।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. वर्ष 2018 में ब्रिक्स की वार्षिक बैठक कहाँ हुई है?
   (a) जोहांसबर्ग
   (b) डरबन
   (c) प्रिटोरिया
   (d) केपटाउन

(उत्तर-A)

2. हाल ही में ब्रिक्स की सलाना बैठक में एक ब्रिक्स रेटिंग एजेंसी की स्थापना का प्रस्ताव किस देश ने रखा है?
   (a) भारत
   (b) ब्राजील
   (c) दक्षिण-अफ्रीका
   (d) चीन

(उत्तर-A)

3. 'ब्रिक्स बैंक' का औपचारिक नाम क्या है?
   (a) न्यू डेवलपमेंट बैंक
   (b) न्यू ब्रिक्स बैंक
   (c) न्यू अल्टरनेटिव बैंक
   (d) न्यू एनर्जी बैंक

(उत्तर-A)

4. ब्रिक्स के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:-
   1. 2014 में ब्रिक्स सम्मेलन में 100 अरब डॉलर की शुरुआती पूंजी के साथ नए विकास बैंक की स्थापना का निर्णय किया गया।
   2. ब्रिक्स बैंक का मुख्यालय शंघाई (चीन) में स्थित है।

   उपर्युक्त में से कौन-से कथन सही हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) कोई नहीं

(उत्तर-C)

5. वर्तमान में जारी व्यापार-युद्धों के संदर्भ में ब्रिक्स की 2018 की बैठक के उद्देश्यों पर चर्चा करें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. 'फोर्टालेजा घोषणापत्र' जो हाल में समाचारों में था, किससे संबंधित है?
   (a) आसियान
   (b) ब्रिक्स
   (c) ओईसीडी
   (d) डब्लू.टी.ओ.

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-B)

2. देशों के एक समूह जिसे ब्रिक्स कहा जाता है के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें।
   1. ब्रिक्स की पहली बैठक 2009 में रियो डी जिनेरि में हुई थी।
   2. दक्षिण अफ्रीका सबसे अंत में ब्रिक्स समूह में शामिल हुआ है।

   उपर्युक्त में से कौन-से कथन सही है?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) कोई नहीं

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2014, उत्तर-B)

3. भारत ने हाल ही में 'नव विकास बैंक' (NDB) और साथ ही 'एशियाई आधारिक संरचना निवेश बैंक' (AIIB) के संस्थापक सदस्य बनने के लिए हस्ताक्षर किए हैं। इन दो बैंकों की भूमिकाएँ एक-दूसरे से किस प्रकार भिन्न होंगी? भारत के लिए इन दो बैंकों के रणनीतिक महत्त्व पर चर्चा कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2014)

4. विश्व व्यापार संगठन (डबल्यू.टी.ओ.) एक महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संस्था है, जहाँ लिए गए निर्णय देशों को गहराई से प्रभावित करते हैं। डब्ल्यू.टी.ओ. का क्या अधिदेश (मैंडेट) है और उसके निर्णय किस प्रकार बंधनकारी है? खाद्य सुरक्षा पर विचार-विमर्श के पिछले चक्र पर भारत के दृढ़-मत का समालोचनापूर्वक विश्लेषण कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2014)

GS World
Committed To Excellence

राफेल विवाद से जुड़ा सच

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

मौजूदा सरकार के राफेल विमान सौदों ने एक व्यापक भ्रष्टाचार के विरुद्ध मुहिम की शक्ल ले ली है। इनसे निपटने के लिए सरकार को सौदे की सच्चाई को जनता के सामने रखने की जरूरत है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्र 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'अमर उजाला', 'राष्ट्रीय सहारा' तथा 'दैनिक जागरण', में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

असली रक्षा घोटाला (बिजनेस स्टैंडर्ड)

कांग्रेस यह प्रयास कर रही है कि 36 राफेल विमानों के सौदे को भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के लिए बोफोर्स मामले की तरह बना दे। वह चाहती है कि जिस तरह राजीव गांधी बोफोर्स मामले के शिकार हो गए थे, उसी तरह नरेंद्र मोदी इस बार राफेल मामले में घिर जाएँ। परंतु लगता नहीं है कि ऐसा हो पाएगा। इसकी वजह यह प्रश्न नहीं है कि इस मामले में रिश्वत का लेन-देन हुआ या नहीं। दरअसल इस किस्म के लगभग हर सौदे में अलग-अलग स्तरों पर रिश्वत का लेन-देन होता है। यह बात हर कोई जानता है। ऐसे मामलों में निर्णायक तथ्य जुटा पाना मुश्किल होता है। राफेल मामले में भी रिश्वत का कोई सबूत नहीं है।

दोनों मामलों में एक अंतर यह है कि बोफोर्स स्कैंडल की शुरुआत एक स्वीडिश रेडियो प्रसारण से हुई थी और राजीव सरकार ने इससे निपटने में बहुत अधिक घबराहट दिखाई। यह मामला केवल भारत ही नहीं बल्कि स्वीडन में भी स्कैंडल में तब्दील हो गया और वहाँ भी अभियोजन की प्रक्रिया शुरू हो गई। बिना इसके और मीडिया की तहकीकात के रिश्वत की राशि और लाभ पाने वाले लोगों के नाम कभी सामने नहीं आते। फ्रांस में ऐसा कुछ होता नहीं दिख रहा है। राफेल मामले में सारा हो-हल्ला भारत तक ही सीमित है। यहाँ यह स्थापित करने की कोशिश की जा रही है कि मोदी और उनकी सरकार ने जिस सौदे पर हस्ताक्षर किए उसमें प्रत्येक विमान के लिए उस राशि से कहीं अधिक कीमत चुकाई गई है जो पिछली कांग्रेसनीत संप्रग सरकार ने बातचीत में तय की थी। परंतु ऐसे जटिल हथियार सौदों के मामले में तुलना करना असंभव है। इनका विवादरहित होना भी बहुत मुश्किल है।

इस बीच काफी वक्त बीत चुका है और मुद्रास्फीति भी एक पहलू है। विमानों की तादाद अलग है, अनुबंध की प्रकृति भी अलग है। पहले केवल खरीद का सौदा था जबकि अब खरीदने और बनाने की बात है। खरीद के बाद रखरखाव की शर्तें और गारंटी अलग है। अगर मान भी लिया जाए कि रिश्वत का लेन-देन हुआ तो भी उसे साबित करना बहुत मुश्किल होगा। ऐसे में यह समझना मुश्किल है कि सरकार कीमतों को गोपनीय रखने पर क्यों तुली है? कीमतें सार्वजनिक करने में कोई हर्ज नहीं है। खासतौर पर इसलिए कि मोटे आँकड़े हमारे सामने पहले से मौजूद हैं। बात यह है कि अगर सरकार लागत के ब्योरों के बारे में पारदर्शिता बरतती तो भी इस सौदे के बारे में अधिकतर जानकारी को गोपनीय रखना होता और उचित तुलनात्मक आकलन की राह में यह बात भी आड़े आती।

इस बीच एक तथ्य यह भी है कि देश में रक्षा खरीद को लेकर जो कुछ हो रहा है वह सबके सामने है। देश में 126 लड़ाकू विमानों की जरूरत सन 2001 में सामने आई थी लेकिन विमान निर्माताओं से प्रस्ताव 2007 में मंगाए गए। सन 2012 में राफेल का चयन किया गया लेकिन

राफेल विवाद और वायुसेना की मुश्किलें (अमर उजाला)

इन दिनों राफेल विमान की खरीद को लेकर देश में राजनीतिक विवाद जारी है, लेकिन इस विवाद की आड़ में वास्तव में लड़ाकू विमानों की भारी कमी की अनदेखी की जा रही है। यह राष्ट्रीय सुरक्षा के लिहाज से चिंतनीय है।

भारतीय वायुसेना की स्वीकृत क्षमता करीब 39.5 लड़ाकू स्क्वॉड्रन विमानों की थी, हालाँकि दो मोर्चे पर युद्ध की आकस्मिकताएँ पूरी करने के लिए इसे लगभग 42 लड़ाकू स्क्वॉड्रन क्षमता की आवश्यकता है। अभी इसके पास करीब 31 स्क्वॉड्रन हैं और मिग सीरीज लड़ाकू जेट विमान के कम से कम 14 स्क्वॉड्रन 2015 से 2024 के बीच रिटायर होने के लिए निर्धारित हैं। दूसरी ओर, तेजस के करीब 4.5 स्क्वॉड्रन आठ विमानों (आधा स्क्वाड्रन) के साथ वर्ष 2028 तक बेड़े में हर वर्ष शामिल किए जाएँगे। और एसयू -30 एमकेआई के लगभग 2.5 स्क्वॉड्रन का आदेश दिया गया है। इस तरह से लगभग 200 विमानों के विशाल अंतर को देखा जा सकता है।

भारतीय वायुसेना की युद्ध क्षमता के भविष्य के बारे में वायुसेना विशेषज्ञों में व्यापक संदेह दिखाई देता है। उनकी चिंता के केंद्र में बेड़े में लड़ाकू विमानों को शामिल किए जाने की गति और प्रक्रिया है। ये अनिश्चितताएँ वास्तव में सरकार के कारण हैं, जिसने फ्रांस के साथ मात्र 36 विमानों की खरीद के लिए समझौते की प्रक्रिया प्रारंभ की, जिसकी कीमत कई गुना ज्यादा हो रही है। सरकार की ओर से मध्यम दर्जे के बहुभूमिका वाले लड़ाकू विमानों की संख्या 126 से कम करने के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अप्रैल, 2015 में फ्रांस की आधिकारिक यात्रा के दौरान भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा संख्या कम करने का निर्णय लिया गया था और दोनों देश 'विमान की आपूर्ति के लिए एक अंतर सरकारी समझौते को पूरा करने के लिए सहमत हुए।'

सुरक्षा मामले पर केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 8.8 अरब डॉलर के इस राफेल सौदे को प्रधानमंत्री की खरीद की घोषणा के 16 महीने बाद अगस्त, 2016 में मंजूरी प्रदान की। बेशक प्रधानमंत्री के पास ऐसा निर्णय लेने का अधिकार है, मगर सरकार की अपनी प्रक्रियाओं के अनुसार, इसकी सिफारिश करने के लिए एक अधिग्रहण समिति मौजूद है। इस अधिग्रहण समिति की सिफारिश के अभाव में क्या प्रधानमंत्री के लिए मात्र 36 विमानों का ऑर्डर देना उचित है? इस प्रक्रिया में समय की जो बर्बादी हुई, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

मीडिया ने खबर दी कि शीघ्र ही विमान हासिल करने के लिए ऐसा निर्णय लिया गया, लेकिन विडंबना देखिए कि विमान की आपूर्ति सितंबर, 2019 से शुरू होने की उम्मीद है और सब ठीक रहा, तो अप्रैल, 2022 तक सभी विमान मिल जाएँगे।

रिपोर्टों के अनुसार वास्तविक लागत प्रारंभिक लागत से दोगुनी हो गई। मोलभाव में दो साल और बीत गए और तब सरकार बदल गई। उसके एक साल बाद और प्रस्ताव आमंत्रित करने के आठ साल बाद मोदी ने द्विपक्षीय सौदा किया। यह सौदा मूल सात में से दो दस्तों के लिए था। बिना किसी स्पष्टीकरण के वायु सेना के पाँच अतिरिक्त दस्तों की जरूरत को दबा दिया गया।

स्वाभाविक-सी बात है कि वायुसेना के पास विमानों की कमी बनी हुई है। यानी पिछले चयन के एक दशक बाद उसी तरह के विमानों के लिए वही प्रक्रिया फिर शुरू होनी है। संभव है बोलीकर्ता भी वही हों। अगर देश भाग्यशाली हुआ तो पाँच साल में ऑर्डर जारी होगा और उसके कुछ वर्ष बाद विमान मिलने लगेंगे। यानी करीब 2025 तक। यह इकलौता उदाहरण नहीं है। सन 1999 में सरकार ने पारंपरिक पनडुब्बियों का ऑर्डर देने का निर्णय किया। 2012 तक छह पनडुब्बियां प्रचलन में आनी थीं और बाकी उसके बाद। अब तक यानी 2018 तक केवल एक पनडुब्बी परिचालन में है। सेना को भी बोफोर्स के बाद पहली हावित्जर तोप के लिए 30 साल प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसमें कुछ भी गुप्त नहीं है। मीडिया में इस बारे में लेख आते रहे हैं लेकिन रक्षा खरीद प्रणाली एकदम पंगु और बदलाव में अक्षम नजर आ रही है। संसद सरकार को इस मुद्दे पर जवाबदेह क्यों नहीं ठहराती?

राफेल का सच (राष्ट्रीय सहारा)

राफेल विमान सौदा को इतने बड़े विवाद का विषय बना दिया गया है कि कुछ लोगों को इसमें तीन दशक पूर्व घटित बोफोर्स दिखने लगा है। राफेल हमारी वायुसेना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है जिसे वायुसेना प्रमुख ने भी स्वीकार किया है। तो इसे छोड़कर अन्य आरोपों पर आएं इनमें पहला है, महंगा खरीदा जाना। सरकार का दावा है कि राफेल सौदा इसमें शामिल अस्त्र पण्रालियों के साथ संप्रग सरकार द्वारा किए गए मोलभाव से काफी कम में हुआ है। ध्यान रखने की बात है राफेल सौदा आपातकालीन खरीद प्रक्रिया के तहत हुई है। वायुसेना द्वारा लड़ाकू विमानों की आवश्यकता बार-बार जताने के बावजूद खरीदा नहीं गया। संप्रग सरकार 2004 से 2014 तक विमान का सौदा नहीं कर सकी। 2015 आते-आते वायुसेना ने आपातकालीन आवश्यकता जता दी थी। इसलिए इसको टाला जाना हमारी रक्षा स्थिति पर क्या असर डाल सकती थी इसकी कल्पना करिए।जो स्थिति थी या है, उसमें भारत को सीधे शस्त्रास्त्र युक्त उड़ान भरने वाली स्थिति में विमान चाहिए। इसलिए वायुसेना की सहमति से 36 खरीदने का सौदा हुआ, पूर्व सरकार की योजनानुसार 126 का नहीं कांग्रेस का यह आरोप कैसे मान लिया जाए 2012 में 126 राफेल की तय कीमत से ज्यादा दी गई है। जब संप्रग सरकार ने सौदा किया ही नहीं तो तुलना कैसे की जा सकती है। अप्रैल 2015 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने तत्कालीन फ्रांसीसी राष्ट्रपति फ्रांकोइस होलान्डे के साथ जिस स्मारपत्र पर हस्ताक्षर किया उसमें एमएमआरसीए यानी मेडियम मल्टी रोल कॉम्बैट एअरक्राफ्ट की बात है। संप्रग सरकार ने राफेल बनाने वाली दसॉल्ट कंपनी द्वारा दिए गए उस मूल्य को कभी सार्वजनिक नहीं किया जिसके आधार पर जनवरी 2012 में इसे सबसे कम बोली वाली कंपनी घोषित किया गया। सौदा इसलिए लटका रहा क्योंकि यह निर्णय ही नहीं हुआ कि 108 विमान बनाने की जिम्मेवारी हिन्दुस्तान ऐरोनौटिक्स लिमिटेड या एचएएल की होगी या फिर दस्सॉल्ट की। मोदी सरकार आने के बाद भी कुछ समय तक यह गतिरोध जारी रहा। तो सरकार ने नए सिरे से दोनों सरकारों के बीच यानी जीटूजी समझौते का निर्णय लिया। तब तक आपातस्थिति आ गई थी और सरकार ने वायुसेना से पूछकर 36 को सभी आवश्यक शस्त्र प्रणाली के साथ खरीदने का फैसला किया। विमान व इसके अस्त्रों व आवश्यकता के

इस बीच भारतीय वायुसेना की मुश्किलें जारी हैं। खरीद संबंधी घोषणा के तीन साल बाद भी राफेल विमान के बेड़े में शामिल होने संबंधी कोई सूचना न होने की स्थिति में वायुसेना ने अपने तेजी से कमजोर पड़ते बेड़े को भरने की उम्मीद और प्रयास में, लगभग 110 और लड़ाकू जेट, (एक और दो इंजनों वाले) के बारे में सूचना के लिए एक और अनुरोध पत्र जारी किया है। 72 पृष्ठ के इस दस्तावेज की बारीकी से जाँच करने से पता चलता है कि यह 2007 में जारी एमएमआरसीए प्रस्ताव की ही पुनरावृत्ति है। इसके अलावा नए अनुरोध पत्र में एकमात्र महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि 'मूल उपकरण निर्माता (ओईएम) को पर्याप्त स्पष्टता के साथ व्यक्त करना चाहिए, कि उनका प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रस्ताव भारत सरकार के 'मेक इन इंडिया' पहल की दिशा में भारत में विमान के स्वदेशी निर्माण के लिए है।' यह पूरी तरह से अपारदर्शी टाइमलाइन के दायरे में पुन: प्रवेश है।

इस बीच, अप्रैल 2018 में, सरकार ने सुखोई / एचएएल पाँचवीं पीढ़ी के लड़ाकू विमान (एफजीएफए) के सह-विकास और निर्माण से अपने हाथ खींच लिए। लेकिन इससे पहले इस उद्यम में भारत के करीब 29.3 करोड़ डॉलर और 11 महत्त्वपूर्ण वर्ष बर्बाद हो गए। इस परियोजना की चुनौतियों से भारतीय इंजीनियरों को उन्नत डिजाइन अनुभवों के साथ प्रभावित करने की उम्मीद थी। सबसे बड़ी बात, इससे भारतीय वायुसेना के बेड़े में पाँचवीं पीढ़ी के 127 युद्धक विमान जुड़ते।

अप्रैल 2018 में रक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण ने संसद को बताया कि भारत उन्नत मध्यम दर्जे के लड़ाकू विमान (एएमसीए) विकसित करने के लिए 'स्टेल्थ टेक्नोलॉजी' लड़ाकू विमान विकसित करने की योजना बना रहा है और उसके लिए व्यवहार्यता अध्ययन पहले ही पूरा हो चुका है। भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) की एयरोनॉटिकल डेवलपमेंट एजेंसी (एडीए) ने पूर्ण पैमाने पर उत्पादन शुरू करने से पहले एएमसीए प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन चरण शुरू कर दिया था। इसी बीच एडीए ने इस परियोजना में निजी भागीदारी का प्रस्ताव रखा। निजी प्रतिभागियों को दो विमानों का निर्माण, एसेंबलिंग और उसे सुसज्जित करना होगा।

यह एक तरह से नया उदाहरण स्थापित करना था, जिसके तहत पूरे क्षेत्र को विभिन्न चरणों में भाग लेना था, जिसमें विमान की डिजाइनिंग, निर्माण और एसेंबलिंग का काम शामिल था। एडीए का यह मंसूबा एक कल्पना ही है। यह यूटोपिया है, क्योंकि यह निजी प्रतिभागी को पहली एनजीटीडी के लिए केवल 3.5 साल और फ्लाइट परीक्षण के बाद कार्य पूरा करने के लिए कुल छह साल देता है। सबसे बड़ी बात, यह 'मेक इन इंडिया' का उद्यम है। अगर यह संभव भी होता है, तो पहला एएमसीए 2030 में ही उपलब्ध हो सकेगा।

इस बीच वायुसेना को 31 ग्राउंडेड जगुआर लड़ाकू विमानों का सहारा लेना पड़ा, जिन्हें 2007 में रिटायर कर दिया गया था। लेकिन यह जटिल, असुरक्षित एवं समय बर्बाद करने वाला है, क्योंकि इन विमानों को वर्तमान में फ्रेंच एयरबेस में स्मारक की तरह रखा गया है।

राफेल विमान सौदे में घपले को लेकर कांग्रेस ने बनाया चुनावी हथियार (दैनिक जागरण)

इस पर हैरानी नहीं कि कांग्रेस ने राफेल विमान सौदे में कथित गड़बड़ी को चुनावी हथियार बनाने का फैसला किया। खुद राहुल गांधी पिछले कुछ समय से इस सौदे को जिस तरह महँगा सौदा करार देने में लगे हुए थे उससे यह साफ था कि कांग्रेस इस मसले में अपना राजनीतिक हित देख रही है। कांग्रेस राफेल सौदे को शायद इसलिए चुनावी मसला बना रही है, क्योंकि वह इससे अवगत है कि बोफोर्स तोप सौदे में दलाली के मसले के

GS World
Committed To Excellence

अनुरूप परिवर्तन को मिलाकर करीब 75 हजार करोड़ रुपया का सौदा दिखाई देता है। कुछ विशेषज्ञों ने हिंसाब लगाया है कि सभी उपकरणों और परिवर्तनों को मिला दें तो यह संप्रग की तुलना में 59 करोड़ रुपया प्रति यान कम है। रक्षा राज्य मंत्री ने 12 मार्च को इससे जुड़े उपकरणों, भारत के लिए विशेष रूप से किए जा रहे बदलावों, इसके मेन्टनेंस एवं सर्विस आदि को छोड़कर 670 करोड़ रुपये प्रति विमान बताया था। इसमें हवा से हवा में मार करने वाली मेत्योर मिसाइल, हवा से धरती पर मार करने वाली स्कैल्प क्रूज मिसाइल शामिल हैं। ये एमएमआरसीए के मूल समझौते में नहीं थी। इसका अर्थ है कि वायुसेना ने जैसे-जैसे आवश्यकता बताई है वैसे-वैसे उनके जुड़ने से दाम में अंतर आते गए हैं। जब आप दाम सार्वजनिक करेंगे तो आपको यह भी बताना होगा कि किस-किस उपकरण के लिए कितने दाम लगे हैं। क्या यह उचित होगा? राहुल गांधी ने 17 जुलाई को लोकसभा में अविास प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान कहा कि जब हमने फ्रांस के राष्ट्रपति से पूछा कि क्या इसमें कोई गोपनीय सौदा है तो उन्होंने कहा कि ऐसा कोई गोपनीय समझौता नहीं है। इंडिया टुडे ने मैक्रां से साक्षात्कार में पूछा था कि राफेल सौदे को सार्वजनिक क्यों नहीं किया जा सकता है? मैक्रों का जवाब था-सबसे पहले आपके पास ये व्यावसायिक समझौते हैं और स्पष्टत: आपके प्रतिस्पर्धी भी हैं और हम उन्हें व्यावसायिक जानकारी जानने नहीं दे सकते। भारत में और फ्रांस में जब सौदा काफी संवेदनशील है, हम इसे व्यावसायिक कारणों से सार्वजनिक नहीं कर सकते। दूसरे, भारत सरकार इस पर बातचीत कर रही है और उन्हें इस पर विचार करना है कि वे कौन-सी जानकारी संसद और विपक्ष को देना चाहेंगे। मैं इन वार्ताओं में हस्तक्षेप करने वाला कोई नहीं होता और आपको यह समझना होगा कि हमें व्यावसायिक संवेदनशीलता का ध्यान रखना है। इंडिया टुडे का साक्षात्कार और राहुल गांधी के बयान विरोधाभासी हैं। राफेल से जुड़ा एक बड़ा आरोप और है। वह है एचएएल से लेकर यह सौदा एक निजी कंपनी को दे दिया गया और जैसा राहुल गांधी कह रहे हैं। इससे कंपनी को 45 हजार करोड़ रुपये का लाभ हो गया जबकि उनके अनुसार उसने जीवन में एक विमान नहीं बनाया है। अनिल अंबानी का रिलायंस डिफेंस दस्सॉल्ट का भारतीय साझेदार अवश्य बना है लेकिन इसमें राफेल विमान का निर्माण शामिल नहीं है। इसे कंपनी अपने मूल स्थान में ही बनाएगी। सौदे के अनुसार दस्सॉल्ट को राफेल से प्राप्त राशि का 50 प्रतिशत भारत में निवेश करना है तो वह भारतीय कंपनियों के साथ निवेश करेगी। आप दस्सॉल्ट एविएशन का अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि दस्सॉल्ट रिलायंस साझेदारी भारतीय उद्योगों के साथ की गई 72 साझेदारियों में से एक है। इसमें स्नेक्मा एचएएल ऐरोस्पेश इंजन के पुर्जे के लिए, सैम्टेल कॉकपिट डिस्प्ले, गोदरेज, लार्सन एंड टुब्रो, टाटा एडवांस्ट सिस्टम आदि शामिल है। 27 अक्टूबर 2017 को अनिल अंबानी और दस्सॉल्ट के सीईओ एरिक ट्रैप्पिएर ने जिस फैक्ट्री की नींव रखी उसमें दस्सॉल्ट रिलाएंस एरोस्पेश लिमिटेड के तहत फाल्कन जेट के पूर्जे बनाए जाएँगे। हम चाहे न चाहे ऐसी साझेदारी विश्वसनीय कंपनियों के साथ ही होता है। चौथा विवाद यह है कि सौदे के पहले सुरक्षा मामलों की मंत्रिमंडीय समिति यानी सीसीएस का अनुमोदन नहीं लिया गया। रक्षा खरीद प्रक्रिया के अनुसार 3000 करोड़ रुपए से उपर के सारे सौदे का सीसीएस द्वारा अनुमोदन कराना अनिवार्य है। सौदे की घोषणा मोदी द्वारा फ्रांस में कर दी गई एमओयू पर अप्रैल 2015 में हस्ताक्षर हो गया जबकि उसके 16 महीने बाद 24 अगस्त, 2016 को सीसीएस का अनुमोदन हुआ। ध्यान रखने की बात है कि वास्तविक सौदा फ्रांस के रक्षा मंत्री जीन ग्वेस ल द्रिआन और तत्कालीन भारत के रक्षा मंत्री मनोहर परिकर के बीच नई दिल्ली में 23 सितंबर, 2016 को हस्ताक्षरित हुआ। अप्रैल 2015 में विमान खरीदने का इरादा जताया गया था। खरीदने का इरादा जताने के लिए सीसीएस की अनुमति आवश्यक नहीं है।

साथ संप्रग शासन में घपले-घोटालों के मामलों ने उसे कैसे दिन दिखाए? नि:संदेह उच्च स्तर का भ्रष्टाचार सदैव से लोगों का ध्यान आकर्षित करता रहा है, लेकिन यह कहना कठिन है कि आम जनता राफेल सौदे में कथित गड़बड़ी के कांग्रेस के आरोप को भ्रष्टाचार के मसले के तौर पर देखेगी।

कांग्रेस किसी भी मसले को अपनी चुनावी रणनीति का हिस्सा बनाने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन दाल तब गलेगी जब सरकार उस मसले पर रक्षात्मक नजर आएगी या फिर विपक्ष की ओर से उठाए गए सवालों का जवाब देने से बचेगी। राफेल सौदे को लेकर सरकार यह दावा करती चली आ रही है कि इससे बेहतर सौदा और कोई नहीं हो सकता, लेकिन वह गोपनीयता संबंधी प्रावधान का हवाला देकर सारी जानकारी सार्वजनिक करने को तैयार भी नहीं। उसकी मानें तो ऐसा करने से राफेल लड़ाकू विमान की विशेषताएँ दुनिया को पता लग जाएँगी। इस तर्क का अपना महत्त्व है, लेकिन देखना यह होगा कि आम जनता उससे सहमत होती है या नहीं?

इसमें संदेह है कि कांग्रेसी नेताओं के कहने भर से जनता राफेल सौदे में भ्रष्टाचार होने की बात सही मान लेगी, क्योंकि मोदी सरकार ने अपनी यह छवि बनाई है कि वह भ्रष्टाचार को सहन करने के लिए तैयार नहीं। यह एक तथ्य भी है कि सरकार के उच्च स्तर पर भ्रष्टाचार का कोई मामला सामने नहीं आया है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि राफेल सौदे को लेकर पहले खुद रक्षा मंत्री ने यह कहा था कि वह सारी जानकारी सामने रखेंगी। बाद में उन्होंने कहा कि गोपनीयता संबंधी प्रावधान के चलते वह ऐसा नहीं कर सकतीं। अब जब कांग्रेस ने राफेल सौदे को तूल देने का इरादा स्पष्ट कर दिया है तो सरकार को ऐसा कुछ करना होगा जिससे वह इस मसले पर कुछ छिपाती हुई न दिखे।

बेहतर होगा कि वह ऐसे जतन करे जिससे कांग्रेस के आरोपों की हवा भी निकल जाए और राफेल सौदे की गोपनीयता भी न भंग हो। कांग्रेस के लिए भी यह जरूरी है कि वह राफेल सौदे में गड़बड़ी के अपने आरोपों के पक्ष में कुछ प्रमाण सामने रखे। वैसे यदि उसके पास अपनी बात साबित करने के पक्ष में कुछ सूचना-सामग्री है तो वह अदालत का रुख क्यों नहीं करती? अगर कांग्रेस राफेल सौदे को एक बड़ा मसला बनाने को लेकर वास्तव में गंभीर है तो फिर उसे यह भी पता होना चाहिए कि इस सौदे की समीक्षा नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक यानी कैग की ओर से की जा रही है। यदि कैग ने अपनी समीक्षा में इस सौदे को सही पाया तो कांग्रेस के चुनावी हथियार की हवा निकल सकती है।

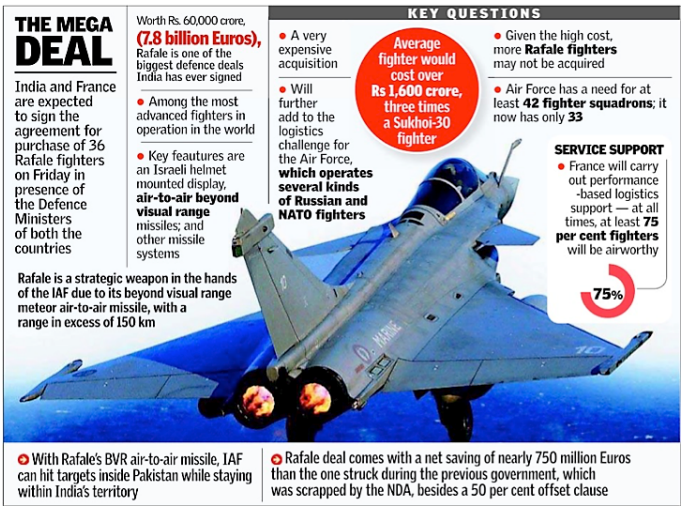

Committed To Excellence

सारांश

- बोफोर्स स्कैंडल की शुरुआत एक स्वीडिश रेडियो प्रसारण से हुई थी और राजीव सरकार ने इससे निपटने में बहुत अधिक घबराहट दिखाई। यह मामला केवल भारत ही नहीं बल्कि स्वीडन में भी स्कैंडल में तब्दील हो गया और वहाँ भी अभियोजन की प्रक्रिया शुरू हो गई।
- राफेल मामले में सारा हो-हल्ला भारत तक ही सीमित है। यहाँ यह स्थापित करने की कोशिश की जा रही है कि मोदी और उनकी सरकार ने जिस सौदे पर हस्ताक्षर किए उसमें प्रत्येक विमान के लिए उस राशि से कहीं अधिक कीमत चुकाई गई है जो पिछली कांग्रेसनीत संप्रग सरकार ने बातचीत में तय की थी।
- इस बीच काफी वक्त बीत चुका है और मुद्रास्फीति भी एक पहलू है। विमानों की तादाद अलग है, अनुबंध की प्रकृति भी अलग है। पहले केवल खरीद का सौदा था जबकि अब खरीदने और बनाने की बात है। खरीद के बाद रखरखाव की शर्तें और गारंटी अलग है।
- देश में 126 लड़ाकू विमानों की जरूरत सन 2001 में सामने आई थी लेकिन विमान निर्माताओं से प्रस्ताव 2007 में मंगाए गए। सन 2012 में राफेल का चयन किया गया लेकिन रिपोर्टों के अनुसार वास्तविक लागत प्रारंभिक लागत से दोगुनी हो गई।
- सन 1999 में सरकार ने पारंपरिक पनडुब्बियों का ऑर्डर देने का निर्णय किया। 2012 तक छह पनडुब्बियाँ प्रचलन में आनी थीं और बाकी उसके बाद। अब तक यानी 2018 तक केवल एक पनडुब्बी परिचालन में है। सेना को भी बोफोर्स के बाद पहली हाविट्जर तोप के लिए 30 साल प्रतीक्षा करनी पड़ी।
- भारतीय वायुसेना की स्वीकृत क्षमता करीब 39.5 लड़ाकू स्क्वॉड्रन विमानों की थी, हालाँकि दो मोर्चे पर युद्ध की आकस्मिकताएं पूरी करने के लिए इसे लगभग 42 लड़ाकू स्क्वॉड्रन क्षमता की आवश्यकता है। अभी इसके पास करीब 31 स्क्वॉड्रन हैं और मिग सीरीज लड़ाकू जेट विमान के कम से कम 14 स्क्वॉड्रन 2015 से 2024 के बीच रिटायर होने के लिए निर्धारित हैं। दूसरी ओर, तेजस के करीब 4.5 स्क्वॉड्रन आठ विमानों (आधा स्क्वाड्रन) के साथ वर्ष 2028 तक बेड़े में हर वर्ष शामिल किए जाएँगे। और एसयू -30 एमकेआई के लगभग 2.5 स्क्वॉड्रन का आदेश दिया गया है। इस तरह से लगभग 200 विमानों के विशाल अंतर को देखा जा सकता है।
- सुरक्षा मामले पर केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 8.8 अरब डॉलर के इस राफेल सौदे को प्रधानमंत्री की खरीद की घोषणा के 16 महीने बाद अगस्त, 2016 में मंजूरी प्रदान की। बेशक प्रधानमंत्री के पास ऐसा निर्णय लेने का अधिकार है, मगर सरकार की अपनी प्रक्रियाओं के अनुसार, इसकी सिफारिश करने के लिए एक अधिग्रहण समिति मौजूद है।
- अप्रैल 2018 में रक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण ने संसद को बताया कि भारत उन्नत मध्यम दर्जे के लड़ाकू विमान (एएमसीए) विकसित करने के लिए 'स्टेल्थ टेक्नोलॉजी' लड़ाकू विमान विकसित करने की योजना बना रहा है और उसके लिए व्यवहार्यता अध्ययन पहले ही पूरा हो चुका है। भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) की एयरोनॉटिकल डेवलपमेंट एजेंसी (एडीए) ने पूर्ण पैमाने पर उत्पादन शुरू करने से पहले एएमसीए प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन चरण शुरू कर दिया था।
- ध्यान रखने की बात है राफेल सौदा आपातकालीन खरीद प्रक्रिया के तहत हुई है। वायुसेना द्वारा लड़ाकू विमानों की आवश्यकता बार-बार जताने के बावजूद खरीदा नहीं गया। संप्रग सरकार 2004 से 2014 तक विमान का सौदा नहीं कर सकी। 2015 आते-आते वायुसेना ने आपातकालीन आवश्यकता जता दी थी।
- अप्रैल 2015 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने तत्कालीन फ्रांसीसी राष्ट्रपति फ्रांकोइस होलान्डे के साथ जिस स्मारपत्र पर हस्ताक्षर किया उसमें एमएमआरसीए यानी मेडियम मल्टी रोल कॉम्बैट एअरक्राफ्ट की बात है।
- अनिल अंबानी का रिलायंए डिफेंस दस्सॉल्ट का भारतीय साझेदार अवश्य बना है लेकिन इसमें राफेल विमान का निर्माण शामिल नहीं है। इसे कंपनी अपने मूल स्थान में ही बनाएगी। सौदे के अनुसार दस्सॉल्ट को राफेल से प्राप्त राशि का 50 प्रतिशत भारत में निवेश करना है तो वह भारतीय कंपनियों के साथ निवेश करेगी।
- आप दस्सॉल्ट एविएशन का अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि दस्सॉल्ट रिलायंस साझेदारी भारतीय उद्योगों के साथ की गई 72 साझेदारियों में से एक है। इसमें स्नेक्मा एचएएल ऐरोस्पेश इंजन के पुर्जे के लिए, सैम्टेल कॉकपिट डिस्प्ले, गोदरेज, लार्सन एंड टुब्रो, टाटा एडवांस्ट सिस्टम आदि शामिल है। 27 अक्टूबर, 2017 को अनिल अंबानी और दस्सॉल्ट के सीईओ एरिक ट्रैप्पिएर ने जिस फैक्ट्री की नींव रखी उसमें दस्सॉल्ट रिलाएंस एरोस्पेश लिमिटेड के तहत फाल्कन जेट के पूर्जे बनाए जाएँगे।
- रक्षा खरीद प्रक्रिया के अनुसार 3000 करोड़ रुपए से उपर के सारे सौदे का सीसीएस द्वारा अनुमोदन कराना अनिवार्य है। सौदे की घोषणा मोदी द्वारा फ्रांस में कर दी गई एमओयू पर अप्रैल 2015 में हस्ताक्षर हो गया जबकि उसके 16 महीने बाद 24 अगस्त 2016 को सीसीएस का अनुमोदन हुआ।

राफेल सौदा

- वायु सेना को अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए कम से कम 42 लड़ाकू स्क्वाड्रंस की जरूरत थी, लेकिन उसकी वास्तविक क्षमता घटकर महज 34 स्क्वाड्रंस रह गई। इसलिए वायुसेना की मांग आने के बाद 126 लड़ाकू विमान खरीदने का सबसे पहले प्रस्ताव अटल बिहारी वाजपेयी की एनडीए सरकार ने रखा था।
- लेकिन इस प्रस्ताव को आगे बढ़ाया कांग्रेस सरकार ने। रक्षा खरीद परिषद, जिसके मुखिया तत्कालीन रक्षा मंत्री एके एंटोनी थे, ने 126 एयरक्राफ्ट की खरीद को अगस्त 2007 में मंजूरी दी थी। यहाँ से ही बोली लगने की प्रक्रिया शुरू हुई। इसके बाद आखिरकार 126 विमानों की खरीद का आरएफपी जारी किया गया।

- यह डील उस मीडियम मल्टी-रोल कॉम्बेट एयरक्राफ्ट (एमएमआरसीए) कार्यक्रम का हिस्सा है, जिसे रक्षा मंत्रालय की ओर से इंडियन एयरफोर्स (आईएएफ) लाइट कॉम्बेट एयरक्राफ्ट और सुखोई के बीच मौजूद अंतर को खत्म करने के मकसद से शुरू किया गया था।
- एमएमआरसीए के कॉम्पिटीशन में अमेरिका के बोइंग एफ/ए-18ई/एफ सुपर हॉरनेट, फ्रांस का डसॉल्ट राफेल, ब्रिटेन का यूरोफाइटर, अमेरिका का लॉकहीड मार्टिन एफ-16 फाल्कन, रूस का मिखोयान मिग-35 और स्वीडन के साब जैस 39 ग्रिपेन जैसे एयरक्राफ्ट शामिल थे।
- छह फाइटर जेट्स के बीच राफेल को इसलिए चुना गया क्योंकि राफेल की कीमत बाकी जेट्स की तुलना में काफी कम थी। इसके अलावा इसका रख-रखाव भी काफी सस्ता था। भारतीय वायुसेना ने कई विमानों के तकनीकी परीक्षण और मूल्यांकन किए और साल 2011 में यह घोषणा की कि राफेल और यूरोफाइटर टाइफून उसके मानदंड पर खरे उतरे हैं।
- साल 2012 में राफेल को एल-1 बिडर घोषित किया गया और इसके मैन्युफैक्चर दसाल्ट एविएशन के साथ कॉन्ट्रैक्ट पर बातचीत शुरू हुई। लेकिन आरएफपी अनुपालन और लागत संबंधी कई मसलों की वजह से साल 2014 तक यह बातचीत अधूरी ही रही।
- यूपीए सरकार के दौरान इस पर समझौता नहीं हो पाया, क्योंकि खासकर टेक्नोलॉजी ट्रांसफर के मामले में दोनों पक्षों में गतिरोध बन गया था। दसॉल्ट एविएशन भारत में बनने वाले 108 विमानों की गुणवत्ता की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं थी। दसाल्ट का कहना था कि भारत में विमानों के उत्पादन के लिए 3 करोड़ मानव घंटों की जरूरत होगी, लेकिन एचएएल ने इसके तीन गुना ज्यादा मानव घंटों की जरूरत बताई, जिसके कारण लागत कई गुना बढ़ जानी थी।
- साल 2014 में जब नरेंद्र मोदी की सरकार बनी तो उसने इस दिशा में फिर से प्रयास शुरू हुआ। पीएम की फ्रांस यात्रा के दौरान साल 2015 में भारत और फ्रांस के बीच इस विमान की खरीद को लेकर समझौता किया गया। इस समझौते में भारत ने जल्द से जल्द 36 राफेल विमान फ्लाइ-अवे यानी उड़ान के लिए तैयार विमान हासिल करने की बात कही। समझौते के अनुसार दोनों देश विमानों की आपूर्ति की शर्तों के लिए एक अंतर-सरकारी समझौता करने को सहमत हुए।
- समझौते के अनुसार विमानों की आपूर्ति भारतीय वायु सेना की जरूरतों के मुताबिक उसके द्वारा तय समय सीमा के भीतर होनी थी और विमान के साथ जुड़े तमाम सिस्टम और हथियारों की आपूर्ति भी वायुसेना द्वारा तय मानकों के अनुरूप होनी है। इसमें कहा गया कि लंबे समय तक विमानों के रखरखाव की जिम्मेदारी फ्रांस की होगी।
- सुरक्षा मामलों की कैबिनेट से मंजूरी मिलने के बाद दोनों देशों के बीच 2016 में आईजीए हुआ। समझौते पर दस्तखत होने के करीब 18 महीने के भीतर विमानों की आपूर्ति शुरू करने की बात है यानी 18 महीने के बाद भारत में फ्रांस की तरफ से पहला राफेल लड़ाकू विमान दिया जाएगा।
- एनडीए सरकार ने दावा किया कि यह सौदा उसने यूपीए से ज्यादा बेहतर कीमत में किया है और करीब 12,600 करोड़ रुपये बचाए हैं। लेकिन 36 विमानों के लिए हुए सौदे की लागत का पूरा विवरण सार्वजनिक नहीं किया गया।
- सरकार का दावा है कि पहले भी टेक्नोलॉजी ट्रांसफर की कोई बात नहीं थी, सिर्फ मैन्युफैक्चरिंग टेक्नोलॉजी की लाइसेंस देने की बात थी। लेकिन मौजूदा समझौते में 'मेक इन इंडिया' पहल किया गया है। फ्रांसीसी कंपनी भारत में मेक इन इंडिया को बढ़ावा देगी।
- मीडिया में आई तमाम खबरों में यह दावा किया गया कि यह पूरा सौदा 7.8 अरब रुपये यानी 58,000 करोड़ रुपये का हुआ है और इसकी 15 फीसदी लागत एडवांस में दी जा रही है। भारत को इसके साथ स्पेयर पार्ट और मेटोर मिसाइल जैसे हथियार भी मिलेंगे जिन्हें कि काफी उन्नत माना जाता है। बताया जाता है कि यह मिसाइल 100 किमी. दूर स्थित दुश्मन के विमान को भी मार गिरा सकती है। अभी चीन या पाकिस्तान किसी के पास भी इतना उन्नत विमान सिस्टम नहीं है।
- विपक्ष सवाल उठा रहा है कि अगर सरकार ने हजारों करोड़ रुपए बचा लिए हैं तो उसे आँकड़े सार्वजनिक करने में क्या दिक्कत है। कांग्रेस के नेताओं का कहना है कि यूपीए 126 विमानों के लिए 54,000 करोड़ रुपये दे रही थी, जबकि मोदी सरकार सिर्फ 36 विमानों के लिए 58,000 करोड़ दे रही है। कांग्रेस का आरोप है कि एक प्लेन की कीमत 1555 करोड़ रुपये हैं, जबकि कांग्रेस 428 करोड़ में रुपये में खरीद रही थी। कांग्रेस का कहना है कि बीजेपी सरकार के सौदे में 'मेक इन इंडिया' का कोई प्रावधान नहीं है।
- सौदे के आलोचकों का कहना है कि यूपीए के सौदे में विमानों के भारत में एसेंबलिंग में सार्वजनिक कंपनी हिंदुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड को शामिल करने की बात थी। भारत में यही एक कंपनी है जो सैन्य विमान बनाती है। लेकिन एनडीए के सौदे में एचएएल को बाहर कर इस काम को एक निजी कंपनी को सौंपने की बात कही गई है। किसी भरोसेमंद सरकारी कंपनी की जगह अनाड़ी नई निजी कंपनी को शामिल करना कैसे उचित हो सकता है। यानी विरोधियों के मुताबिक एनडीए सरकार एक निजी कंपनी को फायदा पहुँचा रही है। कांग्रेस का आरोप है कि सौदे से भारत को 25000 करोड़ रुपये का घाटा होगा।

- राफेल विमान फ्रांस की दासौल्ट कंपनी द्वारा बनाया गया 2 इंजन वाला लड़ाकू विमान है। 1970 में फ्रांसीसी सेना ने अपने पुराने पड़ चुके लड़ाकू विमानों को बदलने की मांग की। जिसके बाद फ्रांस ने 4 यूरोपीय देशों के साथ मिलकर एक बहुउद्देशीय लड़ाकू विमान की परियोजना पर काम शुरू किया। बाद में साथी देशों से मतभेद होने के बाद फ्रांस ने इस पर अकेले ही काम शुरू कर दिया।
- राफेल लड़ाकू विमानों को फ्रांस की दासौल्ट एविएशन कंपनी बनाती है। यह एक बहुउपयोगी लड़ाकू विमान है। राफेल ऊंचे इलाकों में लड़ने में माहिर है। राफेल एक मिनट में 60 हजार फुट की ऊँचाई तक जा सकता है।
- अधिकतम भार उठाकर इसके उड़ने की क्षमता 24500 किलोग्राम है। विमान में ईंधन क्षमता 4700 किलोग्राम है। राफेल की अधिकतम रफ्तार 2200 से 2500 किमी. प्रतिघंटा है और इसकी रेंज 3700 किलोमीटर है।
- इसमें 1.30 mm की एक गन लगी होती है जो एक बार में 125 राउंड गोलियाँ निकाल सकती है। इसके अलावा इसमें घातक एमबीडीए एमआइसीए, एमबीडीए मेटेओर, एमबीडीए अपाचे, स्टोर्म शैडो एससीएएलपी मिसाइलें लगी रहती हैं।
- इसमें थाले आरबीई-2 रडार और थाले स्पेक्ट्रा वारफेयर सिस्टम लगा होता है। साथ ही इसमें ऑप्ट्रॉनिक सेक्योर फ्रंटल इंफ्रा-रेड सर्च और ट्रैक सिस्टम भी लगा है।
- राफेल विमान फ्रांस की दासौल्ट कंपनी द्वारा बनाया गया 2 इंजन वाला लड़ाकू विमान है। राफेल लड़ाकू विमानों को ओमनिरोल विमानों के रूप में रखा गया है, जो कि युद्ध के समय अहम रोल निभाने में सक्षम हैं। हवाई हमला, जमीनी समर्थन, वायु वर्चस्व, भारी हमला और परमाणु प्रतिरोध ये सारी राफेल विमान की खूबियाँ हैं।
- वित्तीय कारणों से भारतीय वायु सेना ने लंबे टेस्ट के बाद राफेल को चुना। दरअसल राफेल विमान भारत सरकार के लिए एकमात्र विकल्प नहीं था। इस डील के लिए कई अंतर्राष्ट्रीय विमान निर्माताओं ने भारतीय वायुसेना से पेशकश की थी।
- इनमें से छह बड़ी विमान कंपनियों को चुना गया, जिसमें लॉकहेड मार्टिन का एफ-16, बोइंग एफ/ए -18 एस, यूरोफाइटर टाइफून, रूस का मिग -35, स्वीडन की साब की ग्रिपेन और राफेल शामिल थे।
- भारतीय वायुसेना ने विमानों के परीक्षण और उनकी कीमत के आधार पर राफेल और यूरोफाइटर को शॉर्टलिस्ट किया। यूरोफाइटर टायफून काफी महँगा है। इस कारण भी डलास से 126 राफेल विमानों को खरीदने का फैसला किया गया है।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. रक्षा खरीद प्रक्रिया के अनुसार 3000 करोड़ रुपये से ऊपर के सौदों का अनुमोदन कौन करता है?
   (a) रक्षा मंत्री
   (b) आर्थिक मामलों की कैबिनेट कमिटी
   (c) सुरक्षा की कैबिनेट कमिटी
   (d) रक्षा सचिव

   (उत्तर-C)

2. राफेल विमान का सौदा भारत ने किस देश के साथ किया है?
   (a) फ्रांस (b) इंग्लैण्ड
   (c) यू.एस.ए. (d) इटली

   (उत्तर-A)

3. राफेल विमान का निर्माण कौन-सी कम्पनी करती है?
   (a) डसॉल्ट (b) दस ऑटो
   (c) लॉकहीड मार्टिन (d) ग्रिपेन

   (उत्तर-A)

4. राफेल विमान के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:-
   1. यह ऊँचे इलाकों में लड़ने में माहिर है एवं एक मिनट में 60 हजार फुट की ऊँचाई तक जा सकता है।
   2. इसकी अधिकतम रफ्तार 2200-2500 तक किमी. प्रति घंटा है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा कथन गलत है?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) कोई नहीं

   (उत्तर-D)

5. भारत सरकार द्वारा वायुसेना के लिए खरीदे जाने वाले राफेल विमानों के सौदों का भ्रष्टाचार की चपेट में आने से वायुसेना की आवश्यकताओं पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा करें।

Committed To Excellence

डेटा संरक्षण पर श्रीकृष्णा समिति की रिपोर्ट

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

व्यक्तिगत डेटा संरक्षण पर श्रीकृष्णा समिति की रिपोर्ट आ चुकी है एवं व्यक्तिगत डाटा संरक्षण विधेयक, 2018 का मसौदा चर्चा में है। भारत में डेटा प्रसंस्करण एवं निजता के अधिकार के बीच संयम को बरकरार रखने का संघर्ष है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'बिजनेस स्टैंडर्ड' तथा 'दैनिक ट्रिब्यून' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

निजता की चिंता (बिजनेस स्टैंडर्ड)

व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक 2018 का मसौदा और श्रीकृष्ण समिति की रिपोर्ट, दोनों मिलकर वह आधार तैयार करते हैं जिन पर सिद्धांत रचकर लोगों के निजता के मूल अधिकार की रक्षा की जा सकती है। मसौदा विधेयक इस लिहाज से प्रगतिशील है कि यह निजता की बात को आगे बढ़ाता है। विधेयक बताता है कि व्यक्तिगत डेटा क्या है और वह इस श्रेणी को आईटी ऐक्ट में उल्लिखित दायरों से परे ले जाता है। अब पासवर्ड, वित्तीय डेटा, स्वास्थ्य संबंधी डेटा, आधिकारिक पहचानकर्ता, यौन जीवन, यौन रुझान, बायोमेट्रिक डेटा, जेनेटिक डेटा, ट्रांसजेंडर दर्जा, अंतर्यौनिक दर्जा, जाति या जनजाति, धार्मिक या राजनीतिक विचार और आस्था आदि सभी व्यक्तिगत डेटा में आते हैं।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोकेशन को अभी भी संवेदनशील नहीं माना जा रहा है। डेटा प्रसंस्करण निष्पक्ष और तार्किक ढंग से किया जाना चाहिए ताकि निजता को बचाकर रखा जा सके। विधेयक कहता है कि स्पष्ट, विशिष्ट और विधिक उद्देश्य के लिए केवल सीमित व्यक्तिगत डेटा ही जुटाया जाना चाहिए। इसके अलावा संबंधित व्यक्ति को यह बताया जाना चाहिए कि कौन सा डेटा लिया गया है। व्यापक रियायती मामलों के अलावा डेटा लेने में विशिष्ट तौर पर सहमति हासिल की जानी चाहिए। परंतु इस विधेयक में कई खामियाँ हैं और ऐसी रियायतें शामिल हैं, जिनके आधार पर बिना सहमति के व्यक्तिगत डेटा लिया और इस्तेमाल किया जा सकता है। मसौदे में सुधार, उन्नयन और डेटा पोर्टबिलिटी को शामिल किया गया है लेकिन भुलाने के अधिकार (इंटरनेट से या अन्य जगह से डेटा हटवाने का अधिकार) को भ्रामक अंदाज में तैयार किया गया है। राइट ऑफ डिलीशन या आपत्ति करने के अधिकार को लेकर कुछ नहीं कहा गया है। प्रस्तावित डेटा संरक्षण प्राधिकरण को अधिकार होगा कि वह तय करे कि डेटा जारी होने से लोग प्रभावित हुए हैं या नहीं। इसके अलावा निगरानी कम करने के लिए कोई उपाय नहीं किया गया है। बल्कि डेटा लोकलाइजेशन के प्रावधान तो निगरानी बढ़ाने वाले हो सकते हैं। रिपोर्ट में अनुशंसा की गई है कि आधार अधिनियम में बदलाव किया जाए लेकिन विधेयक इस अहम मसले पर खामोश है।

सहमति के अलावा डेटा सरकारी काम के लिए भी जुटाया जा सकता है। मसलन कानूनी आदेश के अनुपालन के लिए, आपातकालीन परिस्थितियों में, रोजगार से जुड़े मामलों आदि के लिए। सरकार के कामकाज बहुत व्यापक हैं और वह विशिष्ट श्रेणी है। इसके अलावा कानून को उचित वजह की व्याख्या भी करनी पड़ सकती है। उदाहरण के लिए आधार को बिना सहमति के मंजूरी दी जा सकती है क्योंकि वह सरकार से जुड़ा हुआ मामला है। विधेयक हर व्यक्तिगत डेटा को देश में रहने की बात कहते

सराहनीय है डेटा संरक्षण पर श्रीकृष्ण समिति रिपोर्ट

(बिजनेस स्टैंडर्ड)

नीति निर्माण करने वाले हलकों में एक चुटकुला चलता है- अगर सभी संबद्ध पक्ष समान रूप से नाखुश हों तो आपको यह समझ जाना चाहिए कि आप एक अच्छे समझौते पर पहुँच चुके हैं। उस दृष्टि से देखा जाए तो कह सकते हैं कि बीएन श्रीकृष्ण समिति ने सराहनीय काम किया है क्योंकि उसे लेकर कई शिकायतें हैं। निजी क्षेत्र के कुछ लोग इसलिए नाखुश हैं क्योंकि जनरल डेटा संरक्षण नियमन (जीडीपीआर) को खराब ढंग से पेश करने की उनकी कोशिश नाकाम रही है। अधिकारों, सिद्धांतों, नियामक के डिजाइन और प्रभाव आकलन आदि जैसे नियामकीय उपायों के डिजाइन के मामले में यह विधेयक काफी हद तक जीडीपीआर पर ही आधारित है। कुल वैश्विक कारोबार के 4 फीसदी के बराबर अधिकतम जुर्माने की व्यवस्था के साथ स्पष्ट संकेत दिया गया है कि विदेशों में स्थित मुख्यालय वाले उद्यमों द्वारा निजता के उल्लंघन के मामलों पर नियामक लगाम लगाएगा। यूरोपीय नियमन के कई तत्त्वों से भरपूर कानून हमारे लिए अच्छी खबर है क्योंकि जीडीपीआर को दुनिया के शीर्ष मानवाधिकार संस्थान वैश्विक स्तर पर बेहतर मानक वाला मानते हैं। परंतु हमारे लिए बुरी खबर यह है कि विधेयक में निजी क्षेत्र के लिए अनावश्यक रूप से व्यापक डेटालोकलाइजेशन की बात कही गई है। वित्तीय और तकनीकी (फिनटेक) क्षेत्र की कुछ कंपनियां इसलिए नाखुश हैं क्योंकि समिति ने इस सुझाव को नकार दिया कि निजता का नियमन संपत्ति के अधिकार के रूप में किया जाए। यह मानवाधिकार की दृष्टि से सकारात्मक बात है। खासतौर पर इसलिए क्योंकि यह रुख यूरोपीय संघ समेत दुनिया भर में नकारा जा चुका है। संपत्ति का अधिकार उचित नहीं है क्योंकि श्रम के जरिये साझा को संपत्ति में सीमित करना व्यक्तिगत डेटा नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पेटेंट या बौद्धिक संपदा और व्यक्तिगत सूचना में विशिष्ट परिसंपत्ति धारिता की तुलना की बात करें तो यह कई दर्जा ऊपर है। इससे नियमन को लेकर अकल्पनीय जटिलताएँ पैदा हो सकती हैं। यह बात अर्थव्यवस्था के लिए भी नुकसानदेह साबित हो सकती है।

नागरिक समाज का एक हिस्सा जिसने आधार का विरोध किया वह नाखुश है क्योंकि यूआईडीएआई तथा अन्य सरकारी एजेंसियाँ अपनी इच्छा से बिना सहमति के डेटा का इस्तेमाल कर सकती हैं। ऐसी ही खामी जीडीपीआर में भी देखने मिलती है। याद रहे कि डेटा प्रसंस्करण की परिभाषा में संग्रहण, रिकॉर्डिंग, संगठन, संरचना, भंडारण, संयोजन, बदलाव, पुनर्प्राप्ति, उपयोग, सुसंगतता, सूचीबद्धता, पारेषण, अलगाव, प्रतिबंध और नष्ट करना आदि तमाम बातें शामिल हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि

हुए सरकार को यह अधिकार देता है कि वह अहम व्यक्तिगत डेटा को गोपनीय कर सके। वह उसे देश में उसके भंडारण और प्रसंस्करण का अधिकार भी देता है। समिति के दो सदस्यों ने इस प्रावधान से असहमति जताई है। यह कई वजहों से असंतोषजनक है।

इसके लिए जरूरी बुनियादी ढाँचे की कमी है। न तो तेज ब्रॉडबैंड है, न सर्वर क्लाउड क्षमता। डेटा रखने और प्रसंस्कृत करने का भी खर्च है। डेटा का अनिवार्य स्थानीयकरण एजेंसियों की निगरानी बढ़ा सकता है। ये पहले ही 'सरकार के काम' के अधीन आता है। दुख की बात है कि मशविरे की प्रक्रिया अस्पष्ट थी और समिति के समक्ष प्रस्तुतियों को गोपनीय रखा गया। अधिकांश मसौदा विधेयकों के उलट इसमें अंशधारकों की प्रतिपुष्टि की व्यवस्था नहीं है। ऐसे में गंभीर चिंता के ये मसले विधेयक के कानून बनने पर भी हल नहीं हो सकेंगे। मसौदा नागरिकों के डेटा संरक्षण की दिशा में एक शुरुआत करता है लेकिन यह यूरोपीय संघ के जनरल डेटा संरक्षण नियमन के आसपास भी नहीं है।

डाटा सुरक्षा के यक्ष प्रश्न (दैनिक ट्रिब्यून)

'मैं समझता हूँ कि इस तस्वीर में आपकी पत्नी और बेटी हैं।' टेलिकॉम रेग्यूलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया के चेयरमैन आर.एस. शर्मा को इलियट एंडरसन उपनाम वाले फ्रांस के एक सुरक्षा विशेषज्ञ का यह संदेश भारत सरकार से लेकर डाटा नियामक संस्थाओं तक के लिए साफ चेतावनी है कि 'दिख रहा है सब।' दरअसल आर.एस. शर्मा ने हैकर्स को चुनौती देते हुए अपनी आधार डिटेल्स को अपने ट्विटर अकाउंट पर पोस्ट किया था। इस ट्वीट के बाद एलियट एंडरसन के अलावा भारतीय हैकर्स पुष्पेंद्र सिंह, कनिष्क सजनानी, अनिनार अरविंद और करण सैनी ने ऐलानिया दावा कर डाला कि ट्राई चेयरमैन की 14 निजी जानकारियां लीक हो चुकी हैं। आईटी एक्सपर्ट अंजना शर्मा ने याद दिलाया कि शर्मा खुद आधार नंबर की मातृ संस्था यूआईडीएआई के संस्थापक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीआईओ) रह चुके हैं। उनके लिए सच्चाई जानना बहुत जरूरी था कि किसी इनसान के बनाए घरौंदे में उससे इंटेलीजेंट इंसान आउट आफ बाक्स एप्रोच से सेंध लगा ही लेगा। शर्मा ट्राई या यूआईडी के सिस्टम इंजीनियर्स खुद को आइंस्टीन माने बैठे रहें लेकिन उन्हें यह गुमान नहीं होना चाहिए कि उनके चक्रव्यूह को भेदने की काबिलियत वाला दूसरा बुद्धिमान दूसरा इस धरती पर मौजूद नहीं है।

एथिकल हैकर्स ने तो शर्मा के अकाउंट में एक रुपये भेज कर इसका स्क्रीनशॉट उन्होंने ट्विटर पर पोस्ट भी किया है। साथ ही ट्रांजेक्शन आईडी भी पोस्ट की है। शर्मा का ट्वीट और एथिकल हैकर्स का दिखाया आईना मौके और वक्त की नजाकत के लहजे से भी बहुत अहम है, क्योंकि बीते सप्ताह डिजिटल डाटा से संबंधित दो बड़ी घटनाएँ देश में घटी हैं। पहली डाटा सुरक्षा के बाबत चिरप्रतीक्षित विशेषज्ञ कमेटी रिपोर्ट पेश किया जाना और दूसरी इसी विषयक ड्राफ्ट बिल। जस्टिस बीएन श्रीकृष्णा के नेतृत्व में गठित विशेषज्ञों की समिति ने 50 कानूनों को चिन्हित किया है, जिनमें संशोधन अथवा जिनका विनियमन तत्काल जरूरी है। साथ ही रिजर्व बैंक ने बिल्कुल उचित व्यवस्था दी है कि सितंबर तक पब्लिक डाटा के सभी सर्वर देश के अंदर ही काम और भंडारण करें। इनको देश के बाहर भेजना रिजर्व बैंक के नियमों का उल्लंघन होगा। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव वीजा और मास्टर कार्ड कंपनियों पर होगा क्योंकि इनके सर्वर अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में स्थापित हैं। इस विनिमयन के बाद अब गौरतलब यह होगा कि यह कंपनियाँ अपनी पंच दृष्टि के देशों पर भारत को प्राथमिकता देती हैं या नहीं।

यूआईडीएआई बिना आपकी इजाजत के आपका डेटा ले सकता है। उसे अतीत में लिए गए डेटा के लिए भी आपकी सहमति की आवश्यकता नहीं है। एक अनिवार्य परीक्षण है जिसकी मदद से डेटासंग्रह को रोका जा सकता है। परंतु पिछले 10 वर्ष की अवधि में यूआईडीएआई ने गरीबों को सस्ता अनाज देने के लिए बायोमेट्रिक्स डेटा को अनिवार्य माना है। क्या ऐसे असंगत और बिना सहमति के डेटा संग्रह की प्रक्रिया जारी रहेगी? शायद हाँ, क्योंकि रिपोर्ट की अनुशंसा के मुताबिक यूआईडीएआई अच्छी खासी शक्तियों के साथ नियामक की भूमिका में बना रहेगा। यह वैसा ही है जैसे घोड़े को घास की रखवाली का काम सौंप दिया जाए।

कर्मचारियों की नाराजगी इसलिए क्योंकि विधेयक में एक विस्तृत आधार ऐसा भी है जिसके तहत नियोक्ता बिना सहमति के उनके आँकड़े जुटा सकते हैं। विधेयक भर्ती, सेवा समाप्ति, किसी तरह की लाभ या सेवा देने, उपस्थिति प्रमाण या किसी भी तरह के प्रदर्शन आकलन की गतिविधियों के लिए बिना सहमति के डेटा ले सकता है। इसकी इजाजत तब दी जाती है जब सहमति उचित आधार न हो या नियोक्ता की ओर से असंगत प्रयास किए जा रहे हैं। यह एक तरह से नियोक्ता के लिए निगरानी प्रणाली की तरह है। जीडीपीआर की तरह या तो इस आधार को हटा दिया जाना चाहिए या फिर परीक्षण की एक सुसंगत व्यवस्था बनाई जानी चाहिए ताकि नियोक्ता बिना सूचना के काम करने के कंप्यूटर पर स्पाईवेयर आदि न डाल सके।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कुछ पक्षधर इस बात से नाखुश हैं कि कानून में 'राइट टु बी फॉरगॉटन' का प्रावधान है। इस प्रावधान के तहत लोग चाहें तो इंटरनेट से अपना निजी डेटा हटाने का अनुरोध कर सकते हैं। उनकी चिंता यह है कि इसका इस्तेमाल अमीर और शक्तिशाली वर्ग द्वारा मुख्यधारा के और वैकल्पिक मीडिया को सेंसर करने में किया जाएगा। जीडीपीआर में राइट टु बी फॉरगॉटन के बरअक्स कहीं अधिक व्यापक राइट टु इरेजर है, जबकि समिति के विधेयक में कहीं अधिक सीमित राइट टु रिस्ट्रिक्ट है। इसके तहत निरंतर खुलासों को रोका जा सकता है। बहरहाल जीडीपीआर में सार्वजनिक हित, वैज्ञानिक या ऐतिहासिक शोध आदि का उद्देश्य या सांख्यिकीय उद्देश्य एक स्पष्ट अपवाद है। जीडीपीआर की तरह विधेयक भी दो समर्थ मानवाधिकार निहितार्थों को रेखांकित करता है। पहला अभिव्यक्ति की आजादी और दूसरा सूचना का अधिकार।

निजता और सुरक्षा जैसे विषयों पर शोध करने वाले इसलिए नाखुश हैं क्योंकि पुनर्पहचान को तब तक एक अपराध घोषित कर दिया गया है जब तक कि उसे जनहित में या शोध कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लाया गया हो। यह बात सकारात्मक है कि समिति ने पुनर्पहचान को एक अपराध करार दिया है। ऐसा इसलिए क्योंकि इसके जिन मानकों को नियामक ने अधिसूचित किया है वे अद्यतन गणितीय आकलन पर आधारित होंगे। बहरहाल नियामक जिस शोध को बचाना चाहता है उसके लिए विधेयक में औपचारिक और अनौपचारिक रूप से अकादमिक जगत को जवाबदेही और आपराधिक अभियोजन से राहत प्रदान की जानी चाहिए थी।

आखिरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मानवाधिकार कार्यकर्ता इसलिए नाखुश हैं क्योंकि समिति ने पुनः जीडीपीआर के तर्ज पर कानूनी निगरानियों को जरूरी तवज्जो नहीं दी है। यूरोपीय संघ ने ऐतिहासिक तौर पर इससे निपटने के लिए अलग से ईप्राइवेसी रेग्युलेशन की मदद ली है। शायद हमें भी आगे चलकर वही रुख अपनाना होगा या फिर शायद हम इस संबंध में अवसर गंवा चुके हों। कुल मिलाकर बीएन श्रीकृष्ण समिति की सराहना की जानी चाहिए कि उसने एक बढिया डेटा संरक्षण विधेयक का मसौदा प्रस्तुत किया है। अब हमारे सामने चुनौती है कि इसे और बेहतर बनाएं और जल्द से जल्द इसे कानून में बदलें।

सारांश

- व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक 2018 का मसौदा और श्रीकृष्ण समिति की रिपोर्ट, दोनों मिलकर वह आधार तैयार करते हैं जिन पर सिद्धांत रचकर लोगों के निजता के मूल अधिकार की रक्षा की जा सकती है।
- मसौदा विधेयक इस लिहाज से प्रगतिशील है कि यह निजता की बात को आगे बढ़ाता है। विधेयक बताता है कि व्यक्तिगत डेटा क्या है और वह इस श्रेणी को आईटी ऐक्ट में उल्लिखित दायरों से परे ले जाता है।
- अब पासवर्ड, वित्तीय डेटा, स्वास्थ्य संबंधी डेटा, आधिकारिक पहचानकर्ता, यौन जीवन, यौन रुझान, बायोमेट्रिक डेटा, जेनेटिक डेटा, ट्रांसजेंडर दर्जा, अंतर्यौनिक दर्जा, जाति या जनजाति, धार्मिक या राजनीतिक विचार और आस्था आदि सभी व्यक्तिगत डेटा में आते हैं।
- महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोकेशन को अभी भी संवेदनशील नहीं माना जा रहा है। डेटा प्रसंस्करण निष्पक्ष और तार्किक ढंग से किया जाना चाहिए ताकि निजता को बचाकर रखा जा सके। विधेयक कहता है कि स्पष्ट, विशिष्ट और विधिक उद्देश्य के लिए केवल सीमित व्यक्तिगत डेटा ही जुटाया जाना चाहिए।
- इसके अलावा संबंधित व्यक्ति को यह बताया जाना चाहिए कि कौन सा डेटा लिया गया है। व्यापक रियायती मामलों के अलावा डेटा लेने में विशिष्ट तौर पर सहमति हासिल की जानी चाहिए।
- मसौदे में सुधार, उन्नयन और डेटा पोर्टबिलिटी को शामिल किया गया है लेकिन भुलाने के अधिकार (इंटरनेट से या अन्य जगह से डेटा हटवाने का अधिकार) को भ्रामक अंदाज में तैयार किया गया है। राइट ऑफ डिलीशन या आपत्ति करने के अधिकार को लेकर कुछ नहीं कहा गया है। प्रस्तावित डेटा संरक्षण प्राधिकरण को अधिकार होगा कि वह तय करे कि डेटा जारी होने से लोग प्रभावित हुए हैं या नहीं। इसके अलावा निगरानी कम करने के लिए कोई उपाय नहीं किया गया है।
- आर.एस. शर्मा ने हैकर्स को चुनौती देते हुए अपनी आधार डिटेल्स को अपने ट्विटर अकाउंट पर पोस्ट किया था। इस ट्वीट के बाद एलियट एंडरसन के अलावा भारतीय हैकर्स पुष्पेंद्र सिंह, कनिष्क सजनानी, अनिनार अरविंद और करण सैनी ने ऐलानिया दावा कर डाला कि ट्राई चेयरमैन की 14 निजी जानकारियाँ लीक हो चुकी हैं। आईटी एक्सपर्ट अंजना शर्मा ने याद दिलाया कि शर्मा खुद आधार नंबर की मातृ संस्था यूआईडीएआई के संस्थापक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीआईओ) रह चुके हैं।
- एथिकल हैकर्स ने तो शर्मा के अकाउंट में एक रुपये भेज कर इसका स्क्रीनशॉट उन्होंने ट्विटर पर पोस्ट भी किया है। साथ ही ट्रांजेक्शन आईडी भी पोस्ट की है।
- जस्टिस बीएन श्रीकृष्णा के नेतृत्व में गठित विशेषज्ञों की समिति ने 50 कानूनों को चिन्हित किया है, जिनमें संशोधन अथवा जिनका विनियमन तत्काल जरूरी है। साथ ही रिजर्व बैंक ने बिल्कुल उचित व्यवस्था दी है कि सितंबर तक पब्लिक डाटा के सभी सर्वर देश के अंदर ही काम और भंडारण करें। इनको देश के बाहर भेजना रिजर्व बैंक के नियमों का उल्लंघन होगा।
- बीएन श्रीकृष्ण समिति को लेकर कई शिकायतें हैं। निजी क्षेत्र के कुछ लोग इसलिए नाखुश हैं क्योंकि जनरल डेटा संरक्षण नियमन (जीडीपीआर) को खराब ढंग से पेश करने की उनकी कोशिश नाकाम रही है। अधिकारों, सिद्धांतों, नियामक के डिजाइन और प्रभाव आकलन आदि जैसे नियामकीय उपायों के डिजाइन के मामले में यह विधेयक काफी हद तक जीडीपीआर पर ही आधारित है। कुल वैश्विक कारोबार के 4 फीसदी के बराबर अधिकतम जुर्माने की व्यवस्था के साथ स्पष्ट संकेत दिया गया है कि विदेशों में स्थित मुख्यालय वाले उद्यमों द्वारा निजता के उल्लंघन के मामलों पर नियामक लगाम लगाएगा।
- विधेयक में निजी क्षेत्र के लिए अनावश्यक रूप से व्यापक डेटालोकलाइजेशन की बात कही गई है। वित्तीय और तकनीकी (फिनटेक) क्षेत्र की कुछ कंपनियाँ इसलिए नाखुश हैं क्योंकि समिति ने इस सुझाव को नकार दिया कि निजता का नियमन संपत्ति के अधिकार के रूप में किया जाए।
- डेटा प्रसंस्करण की परिभाषा में संग्रहण, रिकॉर्डिंग, संगठन, संरचना, भंडारण, संयोजन, बदलाव, पुनर्प्राप्ति, उपयोग, सुसंगतता, सूचीबद्धता, पारेषण, अलगाव, प्रतिबंध और नष्ट करना आदि तमाम बातें शामिल हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यूआईडीएआई बिना आपकी इजाजत के आपका डेटा ले सकता है। उसे अतीत में लिए गए डेटा के लिए भी आपकी सहमति की आवश्यकता नहीं है।
- कर्मचारियों की नाराजगी इसलिए क्योंकि विधेयक में एक विस्तृत आधार ऐसा भी है जिसके तहत नियोक्ता बिना सहमति के उनके आँकड़े जुटा सकते हैं। विधेयक भर्ती, सेवा समाप्ति, किसी तरह की लाभ या सेवा देने, उपस्थिति प्रमाण या किसी भी तरह के प्रदर्शन आकलन की गतिविधियों के लिए बिना सहमति के डेटा ले सकता है।
- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कुछ पक्षधर इस बात से नाखुश हैं कि कानून में 'राइट टु बी फॉरगॉटन' का प्रावधान है। इस प्रावधान के तहत लोग चाहें तो इंटरनेट से अपना निजी डेटा हटाने का अनुरोध कर सकते हैं। उनकी चिंता यह है कि इसका इस्तेमाल अमीर और शक्तिशाली वर्ग द्वारा मुख्यधारा के और वैकल्पिक मीडिया को सेंसर करने में किया जाएगा। जीडीपीआर में राइट टु बी फॉरगॉटन के बरअक्स कहीं अधिक व्यापक राइट टु इरेजर है, जबकि समिति के विधेयक में कहीं अधिक सीमित राइट टु रिस्ट्रिक्ट है।

श्रीकृष्ण समिति की रिपोर्ट

- देश में डाटा प्रोटेक्शन का ढाँचा तैयार कर रही जस्टिस बीएन कृष्णा समिति ने निजता को मौलिक अधिकार मानते हुए लोगों के किसी भी संवेदनशील डाटा के इस्तेमाल से पहले स्पष्ट सहमति को अनिवार्य बनाने की सिफारिश की है। समिति ने अपनी 213 पेज वाली इस रिपोर्ट के साथ डाटा प्रोटेक्शन कानून 2018 का मसौदा भी दिया है।
- समिति ने लोगों के संपूर्ण निजी डाटा को देश से बाहर ले जाने को सीमित बनाने की सिफारिश करते हुए कहा है कि सभी तरह के संवेदनशील या क्रिटिकल डाटा को देश के भीतर किसी सर्वर या डाटा सेंटर में रखना अनिवार्य होगा। नियमों का उल्लंघन होने पर समिति ने कानून के मसौदे में 15 करोड़ रुपये या डाटा एकत्र करने वाली कंपनी के वैश्विक टर्नओवर के चार फीसद तक जुर्माने का प्रावधान करने की सिफारिश भी की है।
- समिति ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में डाटा से संबंधित लगभग सभी पहलुओं को शामिल किया है। इनमें निजी डाटा देने के लिए लोगों की सहमति से लेकर डाटा पोर्टेबिलिटी उसके ट्रांसफर और नियमों का उल्लंघन करने पर जुर्माने के प्रावधान भी शामिल हैं।
- जस्टिस श्रीकृष्णा समिति पिछले एक साल से इस पर काम कर रही थी। रिपोर्ट सौंपने के बाद जस्टिस श्रीकृष्णा ने कहा कि विभिन्न पक्षों से सभी संवेदनशील और विवादास्पद मुद्दों पर बातचीत के बाद समिति ने यह रिपोर्ट तैयार की है।
- समिति ने अपनी रिपोर्ट में दस तरह के संवेदनशील निजी डाटा की पहचान की है। इनमें जाति और जनजाति से संबंधित जानकारियां या डाटा भी शामिल है। इनके अलावा पासवर्ड, वित्तीय डाटा, स्वास्थ्य संबंधी डाटा, आधिकारिक पहचान पत्र, लोगों के सेक्स लाइफ से जुड़े डाटा, बायोमीट्रिक व जेनेटिक डाटा, ट्रांसजेंडर स्टेट्स और धर्म व राजनीतिक झुकाव से जुड़ा डाटा भी शामिल है।
- समिति ने ऐसे और भविष्य में इस श्रेणी में आने वाले सभी तरह के क्रिटिकल डाटा को कानून के दायरे में लाते हुए उसे भारत में ही रखने को सुनिश्चित किया है। जबकि नॉन क्रिटिकल निजी डाटा की एक कॉपी कंपनियों के लिए भारत में रखना अनिवार्य होगा। डाटा चोरी की किसी भी घटना की सूरत में कार्रवाई न करने पर कंपनी पर पाँच करोड़ अथवा वैश्विक टर्नओवर के दो फीसद के बराबर जुर्माने की भी सिफारिश की है।
- हालाँकि समिति ने स्वास्थ्य संबंधी निजी डाटा को आपात स्थितियों में देश से बाहर भेजने का विकल्प खुला छोड़ा है। लेकिन ऐसा केवल सरकार की अनुमति पर ही हो सकेगा। हालाँकि वित्तीय डाटा की निजता को लेकर रिजर्व बैंक दिशानिर्देश जारी कर चुका है। लेकिन जस्टिस श्रीकृष्णा का कहना है कि डाटा प्रोटेक्शन कानून बनने के बाद डाटा संबंधी सारे मामले इसके दायरे में आ जाएँगे। जस्टिस श्रीकृष्णा ने डाटा के स्वामित्व के संबंध में पूछे गए एक सवाल के जवाब में कहा कि डाटा को संपत्ति की रोशनी में समिति ने नहीं देखा है।
- समिति ने देश में एक डाटा प्रोटेक्शन अथॉरिटी के गठन का भी सुझाव दिया है, जो अंततः डाटा की परिभाषा और उसकी विभिन्न श्रेणियों के लिए मानक तय करने का काम भी करेगा।
- पहले आधार डाटा लीक और बाद में फेसबुक-कैम्ब्रिज एनालिटिका की तरफ से डाटा चोरी की खबरें आने के बाद देश में डाटा प्रोटेक्शन के कड़े कानून की जरूरत की चर्चा जोर पकड़ने लगी थी। केंद्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री रवि शंकर प्रसाद ने रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद कहा देश एक डिजिटल पावर के रूप में तब्दील हो रहा है और ऐसे वक्त में देश को एक सख्त डाटा प्रोटेक्शन कानून की आवश्यकता है।
- सरकार ने श्रीकृष्णा समिति की रिपोर्ट को चर्चा के लिए शुक्रवार को ही सार्वजनिक कर दिया। इस पर प्रतिक्रिया आने के बाद अंतर मंत्रालयी स्तर पर इस पर विचार होगा। बाद में कानून के मसौदे को मंत्रिमंडल में ले जाया जाएगा जहाँ से मंजूरी मिलने के बाद इसे संसद में पेश किया जा सकेगा।
- डाटा प्रोटेक्शन कानून के मसौदे में समिति ने किसी भी व्यक्ति के निजी डाटा को गलत तरीके से प्राप्त करने, उसे घोषित करने, किसी व्यक्ति को ट्रांसफर करने, किसी व्यक्ति को बेचने या बेचने का प्रस्ताव करने को कानून का उल्लंघन माना है। इस उल्लंघन पर 15 करोड़ रुपये के जुर्माने का प्रावधान भी मसौदे में किया गया है। समिति ने डाटा चोरी के शिकार लोगों को नुकसान होने की स्थिति में मुआवजे का प्रावधान रखने की भी सिफारिश की है।
- इस समिति ने सिफारिश की है कि बीआईटी से संबंधित विवादों के जल्द निपटान के लिये एक अन्तः मंत्रिस्तरीय समिति का गठन किया जाए, जिसमें वित्त, विदेश और कानून मंत्रालयों के अधिकारी शामिल हों। समिति ने यह भी कहा है कि सरकार को कानूनी विशेषज्ञता को बढ़ावा देने के लिये बाहर से बीआईटी मामलों के विशेषज्ञों की सेवाएँ लेनी चाहिये।
- बिट विवादों से लड़ने के लिये एक विशेष निधि का निर्माण करना चाहिये। भारत के बीआईटी दायित्वों एवं उनके निहितार्थ को बेहतर ढंग से समझने के लिये केंद्र और राज्य सरकारों की क्षमता बढ़ानी चाहिये। इस समिति की सबसे महत्त्वपूर्ण सिफारिश अंतर्राष्ट्रीय कानूनी विवादों पर सरकार को सलाह देने के लिये एक 'अंतर्राष्ट्रीय कानून सलाहकार' पद के गठन की सिफारिश करना है।
- कहा गया है कि यह 'अंतर्राष्ट्रीय कानून सलाहकार' ही बीआईटी मध्यस्थता के दिन-प्रतिदिन के प्रबंधन के लिये जिम्मेदार होगा। बीआईटी विवादों के समाधान के लिये समिति ने कुछ उपयोगी हस्तक्षेप किए हैं, जैसे कि बीआईटी अपीलीय तंत्र और एक बहुपक्षीय निवेश अदालत की स्थापना की चर्चा करना।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. डेटा के संरक्षण के लिए भारत सरकार ने कौन-सी समिति गठित की थी?

(a) श्रीकृष्णा समिति

(b) मेहता समिति

(c) बंसल समिति

(d) काटेकर समिति

(उत्तर-A)

2. श्रीकृष्णा समिति की रिपोर्ट में निम्नलिखित में किसका उल्लेख नहीं है?

(a) निजता के अधिकार

(b) व्यक्तिगत डेटा

(c) लोकेशन

(d) डेटा पोर्टेबिलिटी

(उत्तर-C)

3. श्रीकृष्णा समिति के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन गलत हैं?

1. इसने निजता को मौलिक अधिकार मानते हुए डाटा के इस्तेमाल से पहले स्पष्ट सहमति को अनिवार्य बनाने की सिफारिश की है।
2. इसने संपूर्ण निजी डेटा को देश से बाहर ले जाने को समिति बनाने की सिफारिश की है।

(a) केवल 1

(b) केवल 2

(c) 1 और 2 दोनों

(d) कोई नहीं

(उत्तर-D)

4. भारत में व्यक्तिगत डेटा संरक्षण पर श्रीकृष्णा समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों की समीक्षा करें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. भारत मे निम्नलिखित में से किसके लिए साइबर सुरक्षा घटनाओं पर रिपोर्ट देना कानूनन अनिवार्य है?

1. सर्विस प्रदाता
2. डाटा केंद्र
3. बॉडी कॉर्पोरेट

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनें?

(a) केवल 1

(b) केवल 1, 2

(c) केवल 3

(d) 1, 2, 3

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2017, उत्तर-D)

2. 'डीजी लॉकर' के संबंध में जो प्रायः समाचारों में रहता है, निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही है/हैं?

1. भारत सरकार द्वारा डिजीटल इंडिया योजना के तहत प्रदत्त यह एक डिजीटल लॉकर सिस्टम है।
2. आपके भौतिक स्थिति के निरपेक्ष यह आपको अपने ई-दस्तावेजों तक पहुँच की स्वीकृति देता है।

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनें?

(a) केवल 1

(b) केवल 2

(c) 1 और 2 दोनों

(d) कोई नहीं

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2016, उत्तर-C)

3. निजता के अधिकार पर उच्चतम न्यायालय के नवीनतम निर्णय के आलोक में, मौलिक अधिकारों के विस्तार का परीक्षण कीजिए। (250 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2017)

GS World
Committed To Excellence

राज्यसभा के उपसभापति का चुनाव

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन प्रणाली) से संबंधित है।

पिछले 40 वर्षों में यह पहली बार हुआ है कि राज्यसभा के उपसभपति का पद कांग्रेस के पास न जाकर किसी दूसरी राजनीतिक पार्टी के पास चला गया है। यह चुनाव इस वर्ष कई कारणों से चर्चा में रहा है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'राष्ट्रीय सहारा', 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

विपक्षी एकता तार-तार (राष्ट्रीय सहारा)

ऊपरी सदन राज्यसभा के अब तक 12 उपसभापति हुए हैं और इनमें पाँच बार चुनाव भी हुए हैं। इन पाँच बार में तीन बार बकायदा मतदान हुए और दो बार सदस्यों ने हाथ उठाकर अपनी पसंद के उम्मीदवार के पक्ष में मत किया। लेकिन 13वें उपसभापति का चुनाव दूसरे चुनावों की तरह के वातावरण में हुआ। राजनीति में यह संस्कृति तेजी से विकसित हुई है कि देश में हर वक्त चुनाव का माहौल लगता है। फिर जब किसी स्तर पर चुनाव होता है तो वह देश स्तर के चुनाव में दिखाये जाने लगता है। स्थानीय निकायों के चुनाव भी इसी नई राजनीतिक संस्कृति के रंग में दिखाया गया है। इसकी एक वजह तो सूचना तकनीक का समाज में हस्तक्षेप का तेजी से विस्तार होना है। दूसरा, राजनीतिक स्थितियों में आया बदलाव है। देश की राजनीति में पुराने सारे मूल्य, परंपराएँ और सपने बिखराव के दौर में हैं और नई संरचना को लेकर उथल-पुथल मचा हुआ हैं। इसीलिए यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सत्ता पक्ष कौन है और सत्ता का विपक्ष कौन है। राज्यसभा के उपसभापति के चुनाव में भी राजनीतिक उथल-पुथल के सारे चिह्न देखने को मिलते हैं। राज्यसभा में इस बार सर्वसम्मति से उपसभापति के चुनाव के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं दिखाई दिया। केन्द्र में सत्तासीन भारतीय जनता पार्टी और उसके नेतृत्व में चलने वाला गठबंधन लगातार राज्यसभा में अपना बहुमत कायम करने की कोशिश में लगा रहा है; क्योंकि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में लोकसभा चुनाव में पहली बार भाजपा बहुमत से ज्यादा सीटों को जीतने में कामयाब हुई लेकिन उसके अपने राजनीतिक उद्देश्यों की अबाध गति को राज्यसभा में रुकते देखा गया क्योंकि वहाँ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में कांग्रेस बनी रही है और समय-समय पर विभिन्न पार्टियों के मिलने से बनने वाले विपक्ष का बहुमत रहा है। सभापति देश के उपराष्ट्रपति होते हैं, लेकिन उसके बाद उपसभापति संसद के संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। कांग्रेस के पीजे कूरियन के कार्यकाल के खत्म होने के बाद राज्यसभा के नये उपसभापति के बारे में यह कहना बेहद मुश्किल था कि कौन सा पक्ष इस पद को हासिल करेगा। काँटे का टक्कर दिखाई दे रहा था। इसीलिए नामांकन के पहले तक यह कहना मुश्किल हो रहा था कि कौन उम्मीदवार होगा। भाजपा अपना उम्मीदवार खड़ा करने के बजाय अपने सहयोगी दल जनता दल यू को यह पद देने पर राजी हो गई है, यह बात बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के बीच अगामी लोकसभा चुनाव के लिए हुई कुछ महत्त्वपूर्ण सहमतियों में एक है। नीतीश कुमार के सामने एक नाम कहकशां परवीन

बनते हुए समीकरण (नवभारत टाइम्स)

राज्यसभा के उपसभापति का चयन प्राय: आम सहमति से ही होता रहा है, पर इस बार इस पद के लिए सत्तापक्ष और विपक्ष के बीच जोर-आजमाइश हुई। इस पर पूरे देश की नजर थी क्योंकि राज्यसभा के रोचक समीकरण को देखते हुए दोनों में से कोई भी पक्ष पलड़ा अपनी तरफ झुका सकता था। लोगों में इस बात को लेकर उत्सुकता थी कि सत्ता पक्ष के विरोध में जिस विपक्षी एकता या महागठबंधन की चर्चा चल रही है, उसकी झलक इस चुनाव में किस रूप में दिखेगी। किसने कौन-से नए साथी बनाए, या किसने कितने गँवाए?

जो अब तक तटस्थ दिखते रहे हैं वे किस पाले में दिखेंगे? गिनती हुई तो उपसभापति के चुनाव में भी वही समीकरण दिखा, जो कमोबेश लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव के समय दिखा था। इस चुनाव में निर्णायक भूमिका बीजेडी ने निभाई, जिसने एनडीए के कैंडिडेट हरिवंश नारायण सिंह के लिए वोट डालकर उनकी जीत पक्की कर दी। टीआरएस भी सत्ता पक्ष के साथ रही। यानी कांग्रेस कोई नया साथी नहीं बना पाई है, हालाँकि आम आदमी पार्टी को वह अपने पक्ष में ला सकती थी। 'आप' ने कहा भी था कि अगर राहुल गांधी स्वयं अनुरोध करते तो वह यूपीए उम्मीदवार के पक्ष में मतदान कर सकती थी।

लगता है, कांग्रेस ने इसे गंभीरता से नहीं लिया या फिर विभिन्न दलों से संवाद को लेकर अभी भी वह सहज नहीं हो पाई है। समाजवादी पार्टी के नेता राम गोपाल यादव ने कहा कि कांग्रेस अगर शुरू से तत्पर रहती तो परिणाम कुछ और हो सकते थे। बहरहाल, कांग्रेस की तुलना में बीजेपी अपने कुनबे को मजबूत रखने और उसका विस्तार करने में कामयाब दिख रही है। उसने यह स्वीकार कर लिया है कि अगले आम चुनाव में एनडीए ढाँचे को सामने रखकर ही उतरना ठीक रहेगा। इसी सोच के तहत उसने जेडीयू के उम्मीदवार को तवज्जो दी और नीतीश कुमार को आगे करके बीजेडी का समर्थन सुनिश्चित किया।

उसके लिए राहत की बात है कि शिवसेना ने इस मामले में अलग रास्ता नहीं अपनाया। इस चुनाव का एक संकेत यह है कि कुछ क्षेत्रीय दल कांग्रेस के छाते में आने को कतई तैयार नहीं हैं। बीजेडी और टीआरएस जैसी पार्टियाँ लोकसभा चुनाव में या तो बीजेपी के नजदीक रहेंगी, या तीसरा रास्ता अपनाएंगी। बीजेपी के तेज फैलाव के बावजूद वे आज भी अपनी उसी राय पर कायम हैं कि कांग्रेस के साथ जाने से फायदे की कोई गारंटी नहीं है, जबकि नुकसान निश्चित है। ऐसे में कांग्रेस की मौजूदगी वाला चुनाव पूर्व विपक्षी महागठबंधन आसान नहीं लगता। बहरहाल, एक प्रखर बुद्धिजीवी और समर्पित पत्रकार का राज्यसभा का उपसभापति बनना स्वयं में एक उल्लेखनीय घटना है। आशा करें कि इससे संसद के ऊपरी सदन की बहसों का स्तर और अच्छा होगा।

का था, जो राज्यसभा को संचालित करने वाले पैनल में भी नाम था और वे लगातार राज्यसभा की कार्यवाहियों का संचालन कर रही थीं। लेकिन नीतीश कुमार ने अपने बेहद भरोसे पूर्व पत्रकार हरिवंश नारायण सिंह को मैदान में उतारने का फैसला किया। राज्यसभा में कांग्रेस का वर्चस्व रहा है और अब तक जो उपसभापति हुए हैं, उनमें 1969 से 1977 के बीच केवल दो उपसभापति गैर कांग्रेसी हुए हैं। 1969 में पहली बार आर. पी.आई.के.बी.डी. खोब्रागड़े उपसभापति चुने गए थे। हरिवंश तीसरे ऐसे उम्मीदवार बने जो कि गैर कांग्रेस उम्मीदवार माने जा सकते हैं। भाजपा अपने गठबंधन के सदस्य जद यू को तो उम्मीदवार बनाने पर सहमति जाहिर कर दी लेकिन कांग्रेस के लिए यह तय करने में मुश्किलें होती रहीं कि वह अपने उम्मीदवार को चुनाव मैदान में उतारे या सत्ता पक्ष के विरोध में खड़ी पार्टियों में से किसी क्षेत्र राज्य विशेष में सक्रिय राष्ट्रीय पार्टी के उम्मीदवार को मैदान में उतारें। हरिवंश का नाम आने के साथ एनसीपी, डीएमके और बीजू जनता दल के किसी सदस्य को उम्मीदवार बनाने की चर्चाएँ सुनाई दीं, लेकिन आखिरकार कांग्रेस ने अपने सदस्य बी.के. हरिप्रसाद को उम्मीदवार घोषित कर दिया। कांग्रेस के उम्मीदवार को जहाँ 101 मत मिलें वहीं सत्तारूढ़ पक्ष को 125 मत हासिल हो गए। यानी 245 सदस्यों में केवल 226 सदस्यों के बीच ही यह चुनाव हुआ। स्थानीय निकाय के चुनावों में यह आमतौर पर देखने को मिला है कि आखिर नगरपालिका का चैयरमैन कौन हो सकता है। यह अनुमान ही लगाया जा सकता है; क्योंकि वार्ड कमिश्नर किस उम्मीदवार के पक्ष में किस तरह के आकर्षण या किस बात के दबाव, या किस तरह के इरादों को लेकर अपना रुख जाहिर करेगा, यह केवल हरेक वार्ड कमिश्नर को ही पता हो सकता है। लगभग यही स्थिति भारतीय राजनीति में देखने को मिल रही है। जहाँ व्हीप के उल्लंघन की वजह से सदस्यता जा सकती है, यह डर जब तक नहीं होता है, संसद सदस्यों के रुख के बारे में भी कहना मुश्किल होता है। रास उपसभापति के चुनाव में सदस्यों और दलों के बीच ऐसी ही अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई थी। इसके कुछ उदाहरणों को देखना हो तो बीजू जनता दल के फैसले को देखा जा सकता है जो जद यू के उम्मीदवार के पक्ष में यह कहकर मत करने पर सहमति दे दी कि वह भी 1974 के जयप्रकाश नारायण के आंदोलन से निकली पार्टी है। तेलंगाना की सत्तारूढ़ पार्टी कल तक तीसरा मोर्चा बनाने के लिए आवाज लगा रही थी, वह सत्तारूढ़ गठबंधन के पक्ष में मत देने पर राजी हो गई। जो शिवसेना लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पर मत के दौरान सदन से बाहर हो गई, वह सत्तारूढ़ गठबंधन के उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने में सक्रिय हो गई। यहाँ तक कि कश्मीर में पीडीपी जो भाजपा के साथ राज्य सरकार में बनी हुई थी और भाजपा ने अचानक अपना समर्थन वापस लेकर कश्मीर में उसकी सरकार गिरा दी थी, वह पीडीपी भी उपसभापति के लिए हुए मतदान से खुद को बाहर रखने का फैसला किया। समाजवादी पार्टी के जो सदस्य चाहते थे, वे भी विरोध में मतदान करने से बेहतर खुद को मतदान से बाहर रखकर सत्तापक्ष के उम्मीदवार को मदद कर दी। राजनीति इस मुकाम पर पहुँच गई है, जहाँ यह स्थायी नहीं है कि कौन सत्ता पक्ष है और कौन विपक्ष है। उपसभापति के ताजा चुनाव में दलों और सदस्यों की जो स्थिति थी, उसमें यह कहा जा सकता है कि सत्तारूढ़ खुद को संगठित रखने और विरोधी पार्टियों में से ज्यादातर के बीच सेंध लगाने में कामयाब होने का भरोसा रखती है। वहीं सत्तारूढ़ दलों के मुकाबले खड़ी पार्टियों के बीच एक मजबूत केन्द्र बिंदु नहीं है। इन पार्टियों में ज्यादातर के लिए कांग्रेस प्रतिद्वंद्वी भी है और वह सहयोगी भी बन सकती है। यह दुविधा विपक्ष की कोई साफ तस्वीर नहीं बनने दे रहा है।

राज्यसभा के उपसभापति का पद चार दशक बाद गैर-कांग्रेसी दल के खाते में चला गया

(दैनिक जागरण)

राज्यसभा के उपसभापति के चुनाव में राजग प्रत्याशी के रूप में जनता दल-यू के सांसद हरिवंश की जीत इसलिए कहीं अधिक उल्लेखनीय है, क्योंकि एक तो उच्च सदन में बहुमत न होने के बाद भी सत्तापक्ष को विजय हासिल हुई और दूसरे करीब चार दशक बाद यह पद किसी गैर-कांग्रेसी दल के खाते में गया। राजग का नेतृत्व कर रही भाजपा को यह जीत एक ऐसे समय मिली जब विपक्षी दल महागठबंधन बनाने की तैयारी कर रहे हैं।

सत्तापक्ष के हरिवंश ने विपक्ष के बीके हरिप्रसाद को मात देकर यही रेखांकित किया कि कम से कम कांग्रेस के नेतृत्व में महागठबंधन का आकार लेना उतना सहज-सरल नहीं जितना आभास कराया जा रहा है। विपक्षी खेमें में सब कुछ ठीक नहीं, यह तभी प्रकट हो गया था जब महागठबंधन की पैरवी करने वाले दलों ने यह जिम्मेदारी कांग्रेस पर ही डाल दी थी कि वह राज्यसभा उपसभापति के लिए अपने ही सदस्य को प्रत्याशी बनाए। इससे यही संकेत मिला कि वे या तो जीत को लेकर सुनिश्चित नहीं थे या फिर कांग्रेस से निकटता बढ़ाते हुए नहीं दिखना चाह रहे थे।

ध्यान रहे विपक्षी दलों में कई दल ऐसे हैं जो कांग्रेस विरोधी राजनीति की उपज हैं। चुनाव नतीजे से यह भी साफ हो गया कि कांग्रेस ने अपने प्रत्याशी के पक्ष में वैसी लामबंदी नहीं की जैसी जरूरी थी। उसकी रणनीति जो भी रही हो, उसे अपने रवैये को लेकर सवालों का सामना इसीलिए करना पड़ रहा है कि वह इस प्रतिष्ठापूर्ण चुनाव के प्रति गंभीर नहीं दिखी। दरअसल इसी कारण हरिप्रसाद के मुकाबले हरिवंश को कहीं ज्यादा वोट मिले।

समझना कठिन है कि कांग्रेस ने कुछ विपक्षी और तटस्थ से दिख रहे दलों से संवाद-संपर्क क्यों नही किया? विपक्ष के विपरीत सत्तापक्ष का काम इसलिए आसान हो गया, क्योंकि अन्नाद्रमुक और टीआरएस जैसे दलों के साथ बीजद भी उसके पाले में आ गया। इसी के साथ अभी कल तक और यहाँ तक कि अविश्वास प्रस्ताव के समय भाजपा से दूरी और नाराजगी जाहिर करने वाली शिवसेना ने हरिप्रसाद की हार सुनिश्चित की। अभी यह कहना कठिन है कि वह राजग का हिस्सा बनी रहेगी या नहीं, लेकिन यह संकेत तो मिला ही कि वह भाजपा के साथ अपने संबंधों को लेकर फिर से विचार कर रही है।

यह अच्छा हुआ कि पत्रकार से सांसद बने हरिवंश के राज्यसभा उपसभापति निवार्चित होते ही विपक्ष ने भी उन्हें बधाई दी। लोकतंत्र का तकाजा यही कहता है। हरिवंश का राज्यसभा का उपसभापति बनना यह भी बताता है कि भाजपा और जद-यू का साथ और प्रगाढ़ हुआ है। भाजपा के घटक दल के किसी नेता को प्रतिष्ठित पद मिलने से गठबंधन धर्म को मजबूती मिलती हुई दिखी है। यह मजबूती भाजपा के नए सहयोगियों की तलाश में सहायक बन सकती है।

नि:संदेह लोकसभा चुनाव तक सत्तापक्ष और विपक्ष के समीकरणों में अभी और बदलाव होते रह सकते हैं, लेकिन अच्छा यह होगा कि राज्यसभा वरिष्ठों के सदन के रूप में ही नजर आए। उम्मीद है कि हरिवंश का पत्रकारिता का लंबा अनुभव राज्यसभा के कामकाज को और सुगम बनाने के साथ ही संवाद और सहयोग भाव को बल प्रदान करेगा।

सारांश

- ऊपरी सदन राज्यसभा के अब तक 12 उपसभापति हुए हैं और इनमें पाँच बार चुनाव भी हुए हैं। इन पाँच बार में तीन बार बकायदा मतदान हुए और दो बार सदस्यों ने हाथ उठाकर अपनी पसंद के उम्मीदवार के पक्ष में मत किया।
- सभापति देश के उपराष्ट्रपति होते हैं, लेकिन उसके बाद उपसभापति संसद के संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। कांग्रेस के पीजे कूरियन के कार्यकाल के खत्म होने के बाद राज्यसभा के नये उपसभापति के बारे में यह कहना बेहद मुश्किल था कि कौन सा पक्ष इस पद को हासिल करेगा।
- भाजपा अपना उम्मीदवार खड़ा करने के बजाय अपने सहयोगी दल जनता दल यू को यह पद देने पर राजी हो गई है, यह बात बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के बीच अगामी लोकसभा चुनाव के लिए हुई कुछ महत्त्वपूर्ण सहमतियों में से एक है।
- राज्यसभा में कांग्रेस का वर्चस्व रहा है और अब तक जो उपसभापति हुए हैं, उनमें 1969 से 1977 के बीच केवल दो उपसभापति गैर कांग्रेसी हुए हैं। 1969 में पहली बार आर.पी.आई.के.बी.डी. खोब्रागड़े उपसभापति चुने गए थे। हरिवंश तीसरे ऐसे उम्मीदवार बने जो कि गैर कांग्रेस उम्मीदवार माने जा सकते हैं।
- कांग्रेस के उम्मीदवार को जहाँ 101 मत मिलें वहीं सत्तारूढ़ पक्ष को 125 मत हासिल हो गए। यानी 245 सदस्यों में केवल 226 सदस्यों के बीच ही यह चुनाव हुआ।
- राज्यसभा के उपसभापति का चयन प्राय: आम सहमति से ही होता रहा है, पर इस बार इस पद के लिए सत्तापक्ष और विपक्ष के बीच जोर-आजमाइश हुई।
- राज्यसभा के उपसभापति के चुनाव में राजग प्रत्याशी के रूप में जनता दल-यू के सांसद हरिवंश की जीत इसलिए कहीं अधिक उल्लेखनीय है, क्योंकि एक तो उच्च सदन में बहुमत न होने के बाद भी सत्तापक्ष को विजय हासिल हुई और दूसरे करीब चार दशक बाद यह पद किसी गैर-कांग्रेसी दल के खाते में गया।

राज्यसभा के उपसभापति

- भारत के संविधान के आर्टिकल 89 में कहा गया है कि राज्यसभा अपने एक सांसद को उपसभापति पद के लिए चुन सकता है, जब यह पद खाली हो। यह एक संवैधानिक पद है। उपसभापति का पद इस्तीफा, पद से हटाए जाने या इस पद पर आसीन राज्यसभा सांसद का कार्यकाल खत्म होने के बाद खाली हो जाता है
- राज्यसभा उपसभापति का चुनाव करने की प्रक्रिया बहुत ही सहज और सरल है। कोई भी राज्यसभा सांसद इस संवैधानिक पद के लिए अपने किसी साथी सांसद के नाम का प्रस्ताव आगे बढ़ा सकता है।
- इस प्रस्ताव पर किसी दूसरे सांसद का समर्थन भी जरूरी है। इसके साथ ही प्रस्ताव को आगे बढ़ाने वाले सदस्य को सांसद द्वारा हस्ताक्षरित एक घोषणा प्रस्तुत करनी होती है जिनका नाम वह प्रस्तावित कर रहा है। इसमें इस बात का उल्लेख रहता है कि निवार्चित होने पर वह उपसभापति के रूप में सेवा करने के लिए तैयार हैं। प्रत्येक सांसद को केवल एक प्रस्ताव को आगे बढ़ाने या उसके समर्थन की अनुमति है।
- अगर किसी प्रस्ताव में एक से ज्यादा सांसद का नाम हैं तो इस स्थिति में सदन का बहुमत तय करेगा कि कौन राज्यसभा के उपसभापति के लिए चुना जाएगा। अगर सभी राजनीतिक दलों में किसी एक सांसद के नाम को लेकर आम सहमति बन जाती है, तो इस स्थिति में सांसद को सर्वसम्मति से राज्यसभा का उपसभापति चुन लिया जाएगा।
- राज्यसभा उपसभापति पद के लिए अबतक कुल 19 बार चुनाव हुए हैं। इनमें से 14 मौकों पर सर्वसम्मति से इस पद के लिए उम्मीदवार को चुन लिया गया, मतलब चुनाव की नौबत ही नहीं आई। 1969 में पहली बार उपसभापति के पद के लिए चुनाव हुआ था।
- राज्यसभा उपसभापति को पूरी तरह से राज्यसभा के सांसद ही निवार्चित करते हैं। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद है। उपसभापति को सभापति/उपराष्ट्रपति की गैरमौजूदगी में राज्यसभा का संचालन करना होता है। इसके साथ ही तटस्थता के साथ उच्च सदन की कार्यवाही को भी सुचारू रूप से चलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है।
- राज्यसभा के पीठासीन अधिकारियों की यह जिम्मेदारी होती है कि वे सभा की कार्यवाही का संचालन करें। भारत के उपराष्ट्रपति राज्यसभा के पदेन सभापति हैं।
- राज्यसभा के सदस्यों के विपरीत राज्यसभा के सभापति का कार्यकाल 5 वर्षों का ही होता है, राज्यसभा अपने सदस्यों में से एक उपसभापति का भी चयन करती है। राज्यसभा में उपसभाध्यक्षों का एक पैनल भी होता है, जिसके सदस्यों का नामनिर्देशन सभापति, राज्यसभा द्वारा किया जाता है।
- सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में, उपसभाध्यक्षों के पैनल से एक सदस्य सभा की कार्यवाही का सभापतित्त्व करता है। लोकसभा के विपरीत राज्यसभा का सभापति अपना इस्तीफा उपसभापति को नहीं बल्कि राष्ट्रपति को देता है।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. राज्यसभा के उपसभापति का कार्यकाल कितने वर्षों का होता है?

(a) 5 वर्ष
(b) 6 वर्ष
(c) 4 वर्ष
(d) 3 वर्ष

(उत्तर-A)

2. भारत के राज्यसभा के पहले उपसभापति कौन थे?

(a) एस.वी.के. राव
(b) वायलेट अल्वा
(c) बी.डी. खोब्रागडे
(d) गोडे मुराहरी

(उत्तर-A)

3. निम्नलिखित में से कौन-से उपसभापति कांग्रेस से संबंधित थे?

(a) बी.डी. खोब्रागडे
(b) गोडे मुराहरी
(c) नजमा हेपतुल्ला
(d) हरिवंश नारायण

(उत्तर-C)

4. राज्यसभा के उपसभापति के पद के लिए संविधान के किस अनुच्छेद में व्यवस्था की गई है?

(a) अनुच्छेद-80
(b) अनुच्छेद-83
(c) अनुच्छेद-86
(d) अनुच्छेद-89

(उत्तर-D)

5. राज्यसभा के उपसभापति के लिए होने वाली चुनाव प्रक्रिया का वर्णन करें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:-

1. राज्यसभा के सभापति एवं उपसभापति इस सदन के सदस्य नहीं होते हैं।
2. संसद के दोनों सदनों के नामांकित सदस्यों के पास राष्ट्रपति चुनावों में वोटिंग का अधिकार नहीं होता है जबकि उपराष्ट्रपति के चुनाव में वोट देने का अधिकार होता है।

उपर्युक्त में से कौन-से कथन सही हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) कोई नहीं

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2013, उत्तर-B)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:-

1. राज्यसभा के पास धन विधेयक को संशोधित या अस्वीकृत करने का अधिकार नहीं है।
2. राज्यसभा अनुदान के लिए मांग पर वोट नहीं दे सकता है।
3. राज्यसभा वार्षिक वित्तीय विवरण पर बहस नहीं कर सकता है।

उपर्युक्त में से कौन-से कथन सही हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 1, 2
(c) केवल 2, 3
(d) 1, 2 और 3

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-B)

3. भारत के उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव लाया जा सकता है:-

(a) केवल लोकसभा में
(b) संसद के किसी भी सदन में
(c) संसद के संयुक्त अधिवेशन में
(d) केवल राज्यसभा में

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2004, उत्तर-D)

GS World
Committed To Excellence

अनुसूचित जाति एवं जनजाति एक्ट की पूर्व स्थिति बहाल

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1 (समाज) से संबंधित है।

सर्वोच्च न्यायालय के मार्च के फैसले को निष्प्रभावी करने के उद्देश्य से सरकार ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति एक्ट की पूर्व-स्थिति को नया कानून लाकर बहाल कर दिया है। यहाँ मसला संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों एवं वर्ग-विशेष अधिकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने को लेकर है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक ट्रिब्यून', 'हिन्दुस्तान', 'जनसत्ता', 'प्रभात खबर', 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

मौलिक अधिकारों के संरक्षण का प्रश्न (दैनिक ट्रिब्यून)

संविधान के अनुच्छेद-21 में प्रदत्त स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा करते हुए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जजाति (उत्पीड़न से रोकथाम) कानून के तहत शिकायत मिलने पर तत्काल गिरफ्तारी के प्रावधान को लचीला बनाने की शीर्ष अदालत ने कोशिश की। उच्चतम न्यायालय के फैसले को निष्प्रभावी बनाने के लिये केन्द्र सरकार ने जिस तत्परता से इस कानून की पूर्व स्थिति बहाल करने का फैसला किया है, उसने वोट बैंक की खातिर 32 साल पुराने शाहबानो प्रकरण की याद ताजा कर दी। शाहबानो प्रकरण में शीर्ष अदालत के निर्णय को बदलने के राजीव गांधी सरकार के फैसले का ही नतीजा अयोध्या में राम जन्मभूमि के मुद्दे को हवा मिलना था। अब देखना होगा कि उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था को दरकिनार करने का सरकार का निर्णय देश की राजनीति को किस दिशा में ले जायेगा।

सरकार भले ही तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिये संसद से अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति कानून की न्यायालय की 20 मार्च, 2018 की व्यवस्था से पहले की स्थिति बहाल करा ले लेकिन इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि उसका यह निर्णय भी न्यायिक समीक्षा के दायरे में आ सकता है। कहीं न कहीं यह मौलिक अधिकार से जुड़ा है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में यह व्यवस्था दी है कि अनुसूचित जाति और जनजाति (उत्पीड़न से रोकथाम) कानून के तहत शिकायत होने पर जाँच के बाद ही किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाये। इस कानून के अंतर्गत अनेक झूठे मामले दर्ज कराये जाने का जिक्र भी फैसले में है। गिरफ्तारी से पहले आरोपों की जाँच कराने का मकसद यही पता लगाना है कि कहीं किसी निर्दोष व्यक्ति को फँसाने के इरादे से तो मामला दर्ज नहीं कराया गया है।

न्यायालय के फैसले में ही लिखा है कि सुनवाई के दौरान बताया गया कि राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो द्वारा संकलित भारत में 2016 में अपराध के आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2016 में अनुसूचित जाति से संबंधित जाँच के दायरे में आये मामलों में से 5347 झूठे पाये गये जबकि अनुसूचित जनजाति के मामलों में 912 झूठे निकले। इसी तरह, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की 2016-17 की वार्षिक रिपोर्ट का हवाला देते हुए न्यायालय को बताया गया कि 2015 में अदालतों ने ऐसे 15638 मुकदमों का फैसला किया। इनमें से 11024 की परिणति आरोप मुक्त करने या बरी करने के रूप में हुई जबकि 495 मामले वापस लिये गये और सिर्फ 4119 मामलों में ही दोष सिद्धि हो सकी।

सख्त दलित ऐक्ट की जरूरत क्यों (हिन्दुस्तान)

यह घटना विगत सदी की नहीं है, न ही हिमालय की गोद में बैठे किसी गांव की, जहाँ सूरज की रोशनी भी हमेशा नहीं पहुँच पाती। यह घटना ग्राम निजामपुर की है। उत्तर प्रदेश में कासगंज स्थित निजामपुर सबसे बड़ा गवाह है दलित ऐक्ट के पक्ष में। बात इसी 15 जुलाई की है। दलित संजय जाटव की शादी दलित दुल्हन शीतल सिंह से होनी थी। दूल्हा घोड़े की बग्घी पर सवार था। आगे बैंड पार्टी चल रही थी। बॉलीवुड की धुन पर नौजवान बाराती डांस कर रहे थे। शाम छह बजे का समय था। क्या नजारा था! बारात को 350 पुलिस पार्टी का संरक्षण था। आगे-पीछे पीएसी के जवान थे। जिले के अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक बंदूकों से लैस जवानों का नेतृत्व कर रहे थे। इंस्पेक्टर और सब इंस्पेक्टर भी स्थिति पर नजर बनाए हुए थे। निजामपुर गांव एक रणभूमि में इसलिए तब्दील हो गया, क्योंकि पहली बार इस गांव में घुड़-बग्घी पर सवार दलित दूल्हा मुख्य रास्ते से अपनी बारात ले जा रहा था। एक दलित होने का यह अर्थ है। यदि दूल्हा संजय जाटव गधे पर सवार होता, तो गांव के सवर्ण शायद तालियों से उसका स्वागत करते।

मात्र दो दिन पहले गुजरात में अहमदाबाद के कविथा गांव में दो दलित नौजवानों पर इसलिए हमले हो गए, क्योंकि उन्होंने नुकीली मूँछें बढ़ानी शुरू कर दी थी। मार्च में भावनगर जनपद के उमराला गांव में सवर्णों ने एक दलित की इसलिए हत्या कर दी, क्योंकि वह खुद के खरीदे घोडे पर घुड़सवारी करने लगा था। अप्रैल माह में मध्य प्रदेश के मालवा के एक गाँव में सवर्णों ने दलित बस्ती के कुएँ में किरोसिन का तेल डाल दिया। बस्ती में यही हुआ था। वहाँ ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि एक दिन पूर्व दलित परिवार ने अपनी बेटी की शादी में बैंड बाजा मंगवा लिया था। मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ जिले में एक दलित की इसलिए पिटाई हो गई, क्योंकि उसने सरपंच के घर के सामने से अपनी बाइक निकाली थी। कुछ महीने पहले सहारनपुर के घड़कौली गांव में दलित बस्ती से सटे 'द ग्रेट चमार बोर्ड' पर सवर्ण अभी तक तीन हमले कर चुके हैं। दलितों पर तरह-तरह की वजहों से हमले हो रहे हैं, जिसमें नए कपड़े पहनने, यहाँ तक कि 'सन ग्लास' पहनने के लिए भी हमले हो रहे हैं। उत्तर प्रदेश में बदायूँ के गद्दी चौक एरिया में अंबेडकर की प्रतिमा को लोहे की छड़ों से घेर दिया गया है। एक तरह से पिंजड़े में बंद कर दिया गया है, ताकि प्रतिमा को सवर्ण क्रोध का शिकार न बनना पड़े। देश भर में अंबेडकर प्रतिमाओं पर हमले की खबरें अब सामान्य बात बनकर रह गई हैं।

Committed To Excellence

न्यायालय ने साफ शब्दों में कहा है कि यह कानून इसलिए बना है कि शोषित वर्ग पर अत्याचार नहीं हो लेकिन यह भी देखना होगा कि बेवजह किसी निर्दोष व्यक्ति का शोषण न हो। संविधान के अनुच्छेद-21 में प्रदत्त गरिमापूर्ण तरीके से जीने के अधिकार के आलोक में इस कानून के तहत तत्काल गिरफ्तारी की अनिवार्यता के प्रावधान में थोड़ी ढिलाई देकर इसमें अग्रिम जमानत देने की व्यवस्था की है। यही नहीं, न्यायालय ने गिरफ्तारी से पहले आरोपों की जाँच और पहली नजर में आरोप सही पाये जाने पर लोक सेवक के मामले में उनकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकार और गैर लोक सेवक के मामले में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक स्तर के अधिकारी से मंजूरी लेने के निर्देश दिये हैं। उत्पीड़न की शिकायत होने पर तत्काल गिरफ्तारी से पहले आरोप की जाँच कराने की न्यायिक व्यवस्था के विरोध का औचित्य समझ से परे है।

शीर्ष अदालत के फैसले को लेकर देश में हुए आन्दोलन और राजनीतिक दबाव में भले ही सरकार न्यायिक व्यवस्था को बदलने का निर्णय लेकर संसद से कानून में संशोधन पारित करा ले लेकिन उसे यह भी सोचना होगा कि उसका यह कदम आम नागरिकों पर क्या प्रभाव छोड़ेगा। अज-अजजा कानून से संबंधित इस मामले सरकार के निर्णय के संदर्भ में सवाल उठता है कि यदि तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित करने के फैसले पर दबाव की राजनीति शुरू हुई तो क्या सरकार इसे भी निष्प्रभावी बनाने के लिये कदम उठायेगी?

सरकार अगर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के प्रति गंभीर है तो यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन वर्गों में आरक्षण का लाभ नीचे तक पहुँच सके। अन्य पिछड़े वर्गों को मिलने वाले आरक्षण के लाभ के दायरे से संपन्न तबका (क्रीमी लेयर) को बाहर करने जैसी ही व्यवस्था अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिये भी करनी होगी।

सरकार इस संशोधन विधेयक को वर्तमान मानसून सत्र में ही पारित करायेगी और निश्चित ही राष्ट्रपति की संस्तुति के बाद यह कानून बन जायेगा। अब देखना यह होगा कि पूर्व स्थिति बहाल करने का सरकार का यह कदम न्यायिक समीक्षा के दायरे में कब आता है।

वंचितों की फिक्र (जनसत्ता)

केंद्रीय मंत्रिमंडल का अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून, 1989 के मूल प्रावधानों को फिर से बहाल करने का फैसला स्वागतयोग्य है। यह देश में कमजोर तबकों की चिंता के प्रति सरकार का सकारात्मक रुख है। पर यह भी उसकी जवाबदेही बनती है कि सदियों से वंचना के शिकार तबकों की समस्याओं और तकलीफों को दूर करने के लिए ठोस कदम उठाए। गौरतलब है कि इसी साल मार्च में एक मुकदमे की सुनवाई के बाद सुप्रीम कोर्ट ने यह व्यवस्था दी थी कि अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के खिलाफ अपराधों के मामले में पुलिस आरोपी को तुरंत गिरफ्तार नहीं करेगी और इसके लिए महकमे के डीएसपी रैंक के किसी अधिकारी की जाँच के बाद अनुमति की जरूरत होगी। यह न्याय की अवधारणा के अनुकूल व्यवस्था थी, लेकिन देश के ज्यादातर हिस्सों में जाति के आधार पर सामाजिक व्यवहार की हकीकत के मद्देनजर अदालत के इस रुख पर सवाल उठे। खासकर दलितों और आदिवासियों के बीच इसे लेकर तीखी प्रतिक्रिया हुई और अदालत की इस राय के खिलाफ व्यापक बंद भी आयोजित किया गया।

दलित ऐक्ट वर्ष 1989 में आया था, इससे पहले एक और ऐक्ट था, जिसे प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट ऐक्ट कहते हैं। 1955 में बना यह कानून मूलत: छुआछूत के विरुद्ध था जबकि वर्ष 1989 का ऐक्ट अत्याचार के विरुद्ध। वर्ष 1989 के दलित ऐक्ट को वर्ष 2015 में फिर से संशोधित करके और सख्त किया गया। यहाँ देश और दलित की प्रगति के अंतर्विरोध को देख लें। देश 1947 में स्वतंत्र हुआ, 1950 में संविधान लागू हुआ। उम्मीद थी कि नए संविधान के तहत, नए राष्ट्र में लोग स्वयं ही छुआछूत और जात-पांत को छोड़ देंगे। लेकिन पाँच वर्ष में छुआछूत के विरुद्ध कानून की जरूरत पड़ गई। वर्ष 1950 और 1989 के 39 वर्षों का अंतर देखिए। आजादी, खासतौर से संविधान लागू होने के बाद भारत प्रगति पथ पर चल निकला। हरित क्रांति का असर दिखने लगा था। आरक्षण के कारण दलितों में एक मध्य वर्ग की झलक दिखने लगी थी, गैर दलितों के एक हिस्से को यह खलने लगा। दलितों पर दो-तरफा हमले शुरू हो गए। हिंसक वारदातें तथा दलित अफसरों की गोपनीय रिपोर्ट पर लाल स्याही की वारदातें।

दलितों पर हमले रोकने के लिए वर्ष 1989 में दलित ऐक्ट आया और दलित अफसरों के प्रमोशन में रोडे अटकाने के विरुद्ध नब्बे के दशक में प्रमोशन में आरक्षण की व्यवस्था करनी पड़ी। भारत बदल रहा है, जाति व्यवस्था भी कमजोर पड़ती जा रही है, लेकिन जाति व्यवस्था समाप्त नहीं हुई। दलित अफसर एक मातहत की तरह तो स्वीकार्य थे, यहाँ तक कि सहकर्मी के रूप में भी, मगर एक बॉस के रूप में नहीं। ठीक वैसे ही, जैसे निजामपुर गांव में दलित दूल्हा घुड़-बग्घी पर स्वीकार्य नहीं, चाहे वह बग्घी अपनी कमाई से क्यों न लाया हो?

इसके बाद 1989 और 2015 में 26 वर्षों का अंतराल है। वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार शुरू हुए, देश में आर्थिक क्रांति-सी आ गई, उद्योग-धंधों का विस्तार हुआ, शहरीकरण की गति उससे अधिक रही। करोड़ों दलितों को उद्योगों, शहरों में काम मिला। सवर्णों के दरवाजे सूने पड़ने लगे। दलित उनकी मुट्ठी से अब आजाद हो रहा था। उद्योगों, शहरों में मजदूरी कैश में मिलती है, इसलिए अब दलित भी उन चीजों को खरीदने लगे, जिनकी चार दशक पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। चार दशक पहले तक रोटी और लाल मिर्च के लिए संघर्षरत दलित की दूसरी पीढ़ी सन ग्लास, स्पोर्ट्स शू, जीन्स और बाइक के सपने देखने लगी। दलितों के खिलाफ माहौल कुछ ज्यादा ही बनने लग गया, इसे देखते हुए 2015 में दलित ऐक्ट को और कड़ा करना पड़ा।

वर्ष 1950 और 2014 के बीच 65 वर्षों का अंतराल है। इस दौरान भारत समृद्धिशाली बना, जाति व्यवस्था कमजोर पड़ गई, दलितों में एक सशक्त मध्यवर्ग बना तथा व्यापक दलित समाज सवर्ण सत्ता से मुक्त हो गया। इन 64 वर्षों में सवर्णों के बीच से एक अंडर क्लास पैदा हुआ, जिसकी सुधि किसी ने नहीं ली। सवर्णों का यही तबका गुस्से में निराश बैठा था। यह तबका अब हिंसक बन बैठा है। दलित ऐक्ट को और मजबूत करने की बजाय न्यायपालिका ने इसे दंतविहीन कर दिया।

विगत 70 वर्षों में भारत आर्थिक-सामाजिक क्रांति के दौर से गुजर चुका है। ढेर सारी उपलब्धियाँ गिनाई जा सकती हैं, पर इस दौरान भारत ने कुछ खोया भी है। देश ने सवर्ण सत्ता खोई है, जाति टूट रही है। दुर्भाग्यवश, कुछ लोग जाति को राष्ट्र मानते हैं, इसीलिए वे कहते हैं कि 70 वर्षों में राष्ट्र कमजोर हो गया। दलित ऐक्ट इन्हीं तरह के लोगों के लिए बना है। इसे और मजबूत करना होगा।

GS World
Committed To Excellence

तभी यह साफ था कि मूल कानून में फेरबदल की सुप्रीम कोर्ट की राय से बहुत सारे लोग इत्तिफाक नहीं रखते और इसे दलित-आदिवासी तबकों के प्रति न्याय के रास्ते में एक बाधा मानते हैं। यह मांग उठी कि अब इस मसले पर केंद्र सरकार या तो अध्यादेश लाए या फिर मूल कानून को बनाए रखने की पहल करे। पर इस ओर कोई सुगबुगाहट न होते देख दलित और आदिवासी संगठनों ने फिर से आंदोलन करने की बात कही। यही नहीं, खुद एनडीए के घटकों के दलित सांसदों और नेताओं ने नौ अगस्त को फिर से भारत बंद में शामिल होने की घोषणा की। यों दलित संगठनों के बीच इस बात पर क्षोभ पहले से था कि सुप्रीम कोर्ट के पीठ ने अनुसूचित जाति-जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून को कमजोर कर दिया है। मगर केंद्र सरकार ने उसी पीठ के एक न्यायाधीश को सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण का अध्यक्ष बना दिया। इससे यह धारणा बनी कि अदालत के इस फैसले में केंद्र भी सहयोगी है। हालाँकि अदालत के फैसले पर सरकार ने पुनर्विचार याचिका दी थी। पर यह अच्छा है कि अनुसूचित जाति तथा जनजातियों की सामाजिक हकीकतों के प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए सरकार ने कानून के मूल प्रावधानों को बहाल करने संबंधी प्रस्ताव को मंजूरी दे दी है।

हमारे देश में अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्गों में आने वाले समुदाय सदियों से कमजोर सामाजिक स्थिति में रहे हैं। इसलिए संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के मानवीय अधिकारों और गरिमा के संरक्षण की विशेष व्यवस्था की गई, ताकि देश और समाज के विकास में इनकी भी सम्मानजनक भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। दरअसल, जाति-संरचना में उच्च और निम्न दर्जा तय होने के साथ ही एक मनोविज्ञान जुड़ जाता है और लोगों के बर्ताव भी उसी से संचालित होने लगते हैं। ऐसे में जो लोग समर्थ और ताकतवर समुदायों से आते हैं, वे अक्सर कमजोर तबके के लोगों के साथ अमानवीय और आपराधिक तरीके से पेश आते हैं। यहाँ तक कि आपसी संबोधन की भाषा तक में वर्चस्व और दमन का भाव काम करता है। देश की आजादी के सात दशक बाद भी समाज में जाति के आधार पर भेदभाव और दमन की घटनाएँ आम हैं। किसी भी लोकतंत्र में इस विषमता को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

सिर्फ सुविधा की राजनीति (प्रभात खबर)

हमारे देश में किसी मुद्दे पर विभिन्न राजनीतिक दल कैसा रुख अपनायेंगे और क्या पैंतरे दिखायेंगे, यह इस पर निर्भर करता है कि वह मुद्दा किन लोगों से जुड़ा है और वे आसन्न चुनाव को किस तरह प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। बिल्कुल ताजा मामला एससी-एसटी एक्ट का है, जिसके बारे में सुप्रीम कोर्ट के कुछ दिशा-निर्देशों के बाद बीते 20 मार्च से आज तक संसद से सड़क तक हंगामा बरपा है।

चूँकि देश की चुनावी राजनीति दलित-केंद्रित हो गयी है, इसलिए सभी राजनीतिक दल दलित-हितैषी बन गये हैं। एक होड़ मची है कि उसका चेहरा दूसरों से अधिक दलित हितकारी दिखे। उन्हें इसकी कोई चिंता नहीं है कि पूर्व में इसी मुद्दे पर उनका रुख क्या रहा है। देश का दलित समुदाय किस हाल में है, यह भी उनकी चिंता का केंद्र नहीं है।

बीते 20 मार्च को सुप्रीम कोर्ट ने एससी-एसटी (अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार निरोधक) कानून, 1990 के बारे में दिशा-निर्देश दिये थे, ताकि किसी निर्दोष व्यक्ति को फँसाया न जा सके। पहले व्यवस्था थी कि दलित उत्पीड़न की शिकायत आते ही आरोपित व्यक्ति को बिना

भूल सुधार की कोशिश (नवभारत टाइम्स)

एससी-एसटी ऐक्ट को पहले की तरह ही मजबूत बनाया जाएगा। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने बुधवार को इस कानून में संशोधन के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी। संसद के इसी सत्र में यह बिल लाया जाएगा। 20 मार्च को सुप्रीम कोर्ट ने इस कानून के प्रावधानों में कई बदलाव करते हुए ऐसे मामले में आरोपियों की तत्काल गिरफ्तारी पर रोक लगा दी थी। उसने गिरफ्तारी से पहले आरोपों की जाँच डीएसपी स्तर के पुलिस अधिकारी से कराए जाने की बात कही थी। इसका देश भर में जबर्दस्त विरोध हुआ। दलित संगठनों ने कहा कि बड़ी मुश्किल से हासिल एक सहूलियत इस समाज से छीन ली गई है। इस फैसले के बाद अनुसूचित जातियों और जनजातियों का उत्पीड़न और बढ़ सकता है जो कि पहले से ही वर्तमान सरकार के दौर में बढ़ा हुआ है।

खुद सरकार के सहयोगी दलों ने भी इसकी निंदा करते हुए सरकार से जल्द से जल्द कानून के मूल स्वरूप को बहाल करने की मांग की। कोर्ट के फैसले के बाद 2 अप्रैल को दलित संगठनों के भारत बंद के दौरान हिंसक झड़पें हुई जिसमें 12 लोगों की मौत हो गई। विवाद तब और बढ़ा जब यह फैसला देनेवाले सुप्रीम कोर्ट के जज जस्टिस गोयल को एनजीटी का अध्यक्ष बना दिया गया। इसके बाद दलित संगठनों ने एक बार फिर से 9 अगस्त को भारत बंद का आह्वान किया। जाहिर है, सरकार पर काफी दबाव था। उसे सहयोगी दलों के साथ-साथ बीजेपी के दलित सांसदों की भी नाराजगी झेलनी पड़ रही थी। बहरहाल, अब संशोधित बिल में उन सभी पुराने प्रावधानों को शामिल किया जाएगा, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने अपने आदेश में हटा दिया था।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधित बिल, 2018 के तहत इस तरह के अपराध की शिकायत मिलते ही पुलिस एफआईआर दर्ज करेगी। केस दर्ज करने से पहले जाँच जरूरी नहीं होगी। गिरफ्तारी से पहले किसी की इजाजत लेना आवश्यक नहीं होगा। केस दर्ज होने के बाद अग्रिम जमानत का प्रावधान नहीं होगा, भले ही इस संबंध में पहले का कोई अदालती आदेश हो। चूँकि संशोधन बिल, संविधान संशोधन बिल होगा ऐसे में इसके लिए सरकार को दोनों सदनों में दो तिहाई सदस्यों के समर्थन की जरूरत पड़ेगी। इस मामले में सभी दलों की राय एक है। इसलिए सरकार को इसी सत्र में बिल पारित कराकर इसे कानूनी जामा पहनाने में समस्या नहीं आएगी। इस प्रकरण का संदेश व्यवस्था के सभी अंगों को समझना होगा। हमारा सिस्टम समाज के हर वर्ग को भेदभाव और उत्पीड़न से बचाव की गारंटी देता है। इसके लिए जो उपाय किए गए हैं, उन्हें हटाने की या कमजोर करने की कोशिश कोई भी वर्ग बर्दाश्त नहीं करेगा, खासकर वह तबका जो औरों की तुलना में ज्यादा उपेक्षित और शोषित रहा है। अब तमाम दलित संगठनों की शिकायत दूर हो जानी चाहिए। बेहतर होगा कि वे 9 अगस्त के भारत बंद के अपने आह्वान को वापस ले लें।

राष्ट्रहित पर भारी पड़ते दलगत हित, संसद के मानसून सत्र में दो बड़ी घटनाएँ (दैनिक जागरण)

अनुसूचित जाति-जनजाति (अत्याचार रोकथाम) संशोधन विधेयक लोकसभा में आम राय से पास हो गया। उम्मीद है कि राज्यसभा से भी इसे मंजूरी मिल जाएगी। मौजूदा राजनीतिक माहौल में किसी विधेयक

Committed To Excellence

प्रारंभिक जाँच के तुरंत गिरफ्तार किया जाये। उसकी जमानत की व्यवस्था भी नहीं थी। देश की सर्वोच्च अदालत ने माना कि इस सख्त कानून का दुरुपयोग भी हो रहा है। इसलिए उसने निर्देश दिया कि गिरफ्तारी से पूर्व प्रारंभिक जाँच हो, सक्षम अधिकारी से अनुमति ली जाये और जमानत देने पर भी विचार किया जाये।

इन निर्देशों को एससी-एसटी एक्ट को 'नरम' बनाना माना गया। देश भर में विभिन्न दलित संगठन सड़कों पर उतर आये। मोदी सरकार का शुरुआती रुख था कि शीर्ष अदालत ने कानून को बदला नहीं है, बल्कि उसका दुरुपयोग न होने देने के लिए कुछ व्यवस्थाएँ दी हैं। यह पैंतरा भाजपा की मूल राजनीति के अनुकूल था, क्योंकि उसका मुख्य जनाधार सवर्ण हिंदू जातियाँ रही हैं, जो इस कानून की चपेट में सबसे ज्यादा आते हैं और इसीलिए इसके विरोध में रहे हैं।

किंतु जैसे-जैसे दलितों का आंदोलन उग्र होता गया, विरोधी दलों ने मोदी सरकार को दलित-विरोधी बताना शुरू किया और सत्तारूढ़ एनडीए के दलित घटक दलों ने भी विरोध में आवाज उठायी, तो भाजपा सतर्क हो गयी। मोदी सरकार इसलिए भी घिरती दिख रही थी कि इस कानून को 'नरम' बनाने का आदेश देनेवाले एक न्यायमूर्ति एके गोयल को सरकार ने उनकी सेवानिवृत्ति के अगले दिन ही नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल का चेयरमैन बना दिया। रामविलास पासवान जैसे एनडीए सहयोगियों ने इसका खुला विरोध किया।

चूँकि 2019 में दलित वोट निर्णायक साबित होने हैं, इसलिए भाजपा ने फौरन पैंतरा बदला। सुप्रीम कोर्ट में पुनर्विचार याचिका दाखिल की गयी। कोर्ट का रुख पूर्ववत रहा तो संसद के चालू सत्र में ही नया विधेयक लाकर एससी-एसटी एक्ट को फिर से सख्त बनाने की रणनीति बनी।

फिलहाल नया विधेयक लोकसभा से पारित हो गया है। सरकार यह प्रचारित करने में कोई कसर नहीं छोड़ रही कि एससी-एसटी एक्ट को पहले से अधिक सख्त किया जा रहा है।

कांग्रेस समेत अन्य विरोधी दल जो भाजपा को पहले से दलित विरोधी साबित करने में लगे थे, इस बहाने और सक्रिय हो गये। उन्होंने चुनौती दी कि एससी-एसटी एक्ट को फिर से सख्त बनाने के लिए सरकार तत्काल अध्यादेश क्यों नहीं ला रही। अध्यादेश आसान रास्ता था, लेकिन सरकार विधेयक पर संसद में बहस कराकर अपना दलित-प्रेमी चेहरा प्रस्तुत करने और दूसरों को दलित-विरोधी बताने का मौका क्यों छोड़ती।

दलितों की सबसे आक्रामक राजनीति करनेवाली बसपा-नेत्री मायावती को एससी-एसटी एक्ट को 'नरम' किये जाने पर सबसे ज्यादा बिफरना ही था।

उन्होंने इस कानून को डॉ आंबेडकर और दलितों के लंबे संघर्ष का परिणाम बताते हुए भाजपा को इसे नरम बनाने की साजिश करने का आरोप लगाया। अब जबकि एससी-एसटी एक्ट को फिर से उसी तरह सख्त बनाने के लिए विधेयक लोकसभा से पारित हो गया है, तो मायावती इसके लिए दलितों के आंदोलन तथा उनकी एकजुटता को श्रेय दे रही हैं।

सन् 2007 के चुनाव में मायावती को दलितों के अलावा सवर्णों के समर्थन ने बहुमत दिलाया था। एससी-एसटी एक्ट पर अमल से सवर्ण नाराज न हो जायें, इसलिए मई और अक्तूबर 2007 में दो अलग-आलग आदेशों से उन्होंने उत्तर प्रदेश में इस कानून को इतना नख-दंत विहीन कर दिया था, जितना वह सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों से भी नहीं हुआ।

का आम सहमति से पास होना उपलब्धि से कम नहीं, परंतु यह एक विधेयक हमारी राजनीति, संसदीय व्यवस्था और कानून के राज के बारे में बहुत कुछ कहता है। जनतांत्रिक व्यवस्था में आम सहमति अच्छी बात है, लेकिन उसके साथ ही सवाल यह भी है कि आम सहमति किसलिए और उस आम सहमति से लिए गए फैसले का मकसद क्या है? राजनीति क्या और कैसे-कैसे फैसले करा सकती है, इसका उदाहरण उक्त विधेयक है। ऐसा लगता है पूरी संसद ने मिलकर तय किया कि वह कुछ मामलों में न्याय के सिद्धांत नहीं मानेगी- सर्वोच्च न्यायालय कहेगा तब भी नहीं।

संसद के मानसून सत्र में दो बड़ी घटनाएँ हुईं। पहली तो यह कि संसद की कार्यवाही चल रही है। प्रत्यक्ष रूप से उसके दो कारण समझ में आते हैं। एक अविश्वास प्रस्ताव लाकर विपक्ष सरकार के खिलाफ अपने मन की भड़ास निकाल चुका है। हार तो तय थी पर हार के अंतर ने उसका हौसला थोड़ा पस्त किया। दूसरा, उसे समझ में आ गया कि लगातार संसद की कार्यवाही बाधित करने से उसकी नकारात्मक छवि बन रही है। कई राज्यों के विधान सभा चुनाव और फिर लोकसभा चुनाव के नजदीक होने से इसका राजनीतिक नुकसान हो सकता है।

संसद ने बीते दिनों पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा देने वाले विधेयक पर मुहर भी लगाई। कई दशकों से यह मांग थी। सभी सरकारें वादा तो करती रहीं, परंतु किसी ने किया नहीं। मोदी सरकार ने इसका बीड़ा उठाया और पूरा किया। यदि कांग्रेस ने राज्यसभा में अड़ंगा न लगाया होता तो इस विधेयक पर बजट सत्र में ही संसद की मुहर लग जाती। समझना मुश्किल है कि कांग्रेस ने पिछले सत्र में अड़ंगा क्यों लगाया और इस सत्र में समर्थन क्यों किया? इस विधेयक के पास होने पर प्रधानमंत्री ने कहा कि इतिहास में यह सत्र सामाजिक न्याय सत्र के रूप में याद किया जाएगा। प्रधानमंत्री ने यह भी घोषणा की कि अब हर साल एक से नौ अगस्त तक सामाजिक न्याय सप्ताह मनाया जाएगा।

उक्त विधेयक पर मुहर लगाने के बाद लोकसभा में अनुसूचित जाति-जनजाति (अत्याचार रोकथाम) कानून में बदलाव के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को निष्प्रभावी बनाने के लिए विधेयक को पारित किया गया। समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े इस वर्ग के लोगों को सुरक्षा देने के लिए कानून बने और सख्त कानून बने, इस पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, परंतु यह संशोधन विधेयक जिन परिस्थितियों में सरकार को लाने के लिए मजबूर होना पड़ा वह हमारी राजनीति का विद्रूप चेहरा दिखाती है। सुप्रीम कोर्ट ने सिर्फ इतना कहा था कि इस कानून के तहत गिरफ्तारी से पहले पुलिस अधिकारी इसकी पड़ताल करेंगे कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं? अदालत ने गिरफ्तारी के लिए कुछ शर्तें भी लगाई थीं। जिस याचिका पर यह फैसला आया उसमें कहा गया था कि इस कानून का दुरुपयोग हो रहा है। हालाँकि यह कोई बहुत वाजिब तर्क नहीं था, क्योंकि दुरुपयोग तो हर कानून का होता है।

दहेज विरोधी कानून इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। कुछ समय पहले इसी आधार दहेज विरोधी कानून में भी सुप्रीम कोर्ट ने शिकायत के बाद तुरंत गिरफ्तारी पर रोक लगा दी थी। शायद इसी फैसले से प्रेरित होकर याचिकाकर्ता सुप्रीम कोर्ट गए थे। यहाँ तक तो सब ठीक था, लेकिन उसके बाद जो हुआ वह न तो नैतिक रूप से ठीक था और न ही राष्ट्रहित की दृष्टि से। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद विपक्षी दलों और कुछ गैर राजनीतिक संगठनों ने अनुसूचित जाति और जनताति के लोगों को बरगलाया कि मोदी सरकार आरक्षण खत्म करना चाहती है। स्वाभाविक रूप से इसकी

GS World
Committed To Excellence

उन आदेशों का सार यह था कि हत्या और बलात्कार को छोड़कर दलित उत्पीड़न के अन्य मामले एससी-एसटी एक्ट के तहत दर्ज न किये जायें और यदि कोई दलित किसी पर इस कानून का दुरुपयोग करे, तो उस पर आईपीसी की धाराओं में मुकदमा लिखा जाये। आज चूँकि दलों को सबसे पहले अपना दलित जनाधार बचाना है, इसलिए सवर्णों की नाराजगी की चिंता किये बगैर उसी कानून की सख्ती के लिए उन्हें आक्रामक रुख अपनाना पड़ रहा है।

इस वक्त एक भी राजनीतिक दल नहीं होगा, जो एससी-एसटी एक्ट के दुरुपयोग और संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने के कारण इसे फिर से सख्त बनाने का विरोध करे।

भाजपा को, जिसे अपने सवर्ण वोट बैंक की निगाह से इसके खिलाफ खड़ा होना चाहिए था, इसकी सबसे बड़ी हिमायती दिखने का प्रयास कर रही है। कारण है दलितों का देशव्यापी बड़ा वोट बैंक। अस्सी लोकसभा सीटों वाले उत्तर प्रदेश में बसपा और सपा का गठबंधन उसकी राह का सबसे बड़ा रोड़ा है। यहाँ उसे दलितों के पक्ष में मायावती से भी ज्यादा खड़े दिखना है। सवर्ण थोड़ा नाराज हुए भी तो साथ ही रहेंगे। दलित वोट मिल गये तो नैया पार।

विडंबना देखिए कि सुप्रीम कोर्ट की उसी पीठ ने पिछले साल जुलाई में यह कहते हुए कि दहेज निरोधक कानून की सख्ती का दुरुपयोग भी होता है, उसे 'नरम' बनाने के निर्देश दिये थे। अब दहेज कानून में बिना आरोपों की प्रारंभिक जाँच के तुरंत गिरफ्तारी नहीं होती। देश भर की महिला संगठनों ने दहेज कानून को उत्पीड़क के पक्ष में उदार बनाने के खिलाफ आवाज उठायी थी।

खूब धरना-प्रदर्शन भी किये थे। अब चूँकि दलितों की तरह ये महिलाएँ हमारे राजनीतिक दलों के लिए एकजुट वोट-बैंक नहीं हैं, इसलिए कोई राजनीतिक दल इन महिलाओं के साथ खड़ा नहीं हुआ। लेकिन, दलितों के साथ खड़ा दिखने के लिए दलों में युद्ध छिड़ा हुआ है।

प्रतिक्रिया हुई। दो अप्रैल को आंदोलन की घोषणा हुई। जगह-जगह विरोध प्रदर्शन और हिंसा हुई जिसमें कई लोग मारे गए। अनुसूचित जाति-जनजाति के जो लोग इस आंदोलन में शामिल हुए उनसे जब पूछा गया कि प्रदर्शन में क्यों आए हो तो तमाम का जवाब था कि उन्हें बताया गया है कि सरकार आरक्षण खत्म कर रही है।

लोगों को गुमराह करने का यह काम इसके बावजूद हुआ कि 2015 में मोदी सरकार ने ही अनुसूचित जाति-जनजाति के खिलाफ अत्याचार की श्रेणी में आने वाले मामलों की संख्या 22 से बढ़ाकर 47 की थी। इसके अलावा भी सरकार ने इस वर्ग की सुरक्षा और विकास को लेकर कई कदम उठाए, परंतु यहाँ सवाल इसका नहीं कि सरकार ने क्या किया? सवाल है कि सरकार ने जो नहीं किया उसका झूठा प्रचार करके एक वर्ग को सड़क पर उतरने, सामाजिक समरसता को बिगाड़ने का प्रयास क्यों किया गया? यह केवल वोट के लिए किया गया। यह विपक्ष का अधिकार है कि वह सरकार की कमजोरियों और नाकामियों पर लोगों को लामबंद करे, परंतु समाज और देश के प्रति भी उसकी जिम्मेदारी है।

एक झूठे प्रचार के जरिये केंद्र सरकार और अनुसूचित जाति-जनजाति के लोगों को आमने सामने खड़ा कर दिया गया। इसकी भी अनदेखी नहीं कर सकते कि कुछ संगठनों ने नौ अगस्त को इसी मुद्दे पर दोबारा भारत बंद का एलान कर दिया। प्रतियोगी राजनीति जनतंत्र के स्वास्थ्य के लिए अच्छी है, परंतु यही राजनीति जब राष्ट्रहित पर दलगत हित को तरजीह देने लगती है तो देश और जनतंत्र दोनों का नुकसान करती है। विपक्षी दलों को लगता है कि यदि दलित समुदाय को भाजपा से अलग कर दिया जाए तो मोदी को रोका जा सकता है। यही कारण है कि उनकी राजनीति कभी दलित-मुस्लिम गठजोड़ की बात करती है तो कभी दलितों पर अत्याचार के मुद्दे को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करती है। यही राजनीति अपराध में कभी धर्म खोजती है तो कभी जाति।

2014 में कई राज्यों में दलित समाज का एक बड़ा तबका भाजपा के साथ गया। 2017 के उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव में भी यह ट्रेंड बना रहा। इसी कारण दलित अस्मिता के नारे पर बनी बसपा को लोकसभा में एक भी सीट नहीं मिली और विधान सभा में वह 19 सीटों पर सिमट गई। भाजपा और संघ की कोशिश है कि समाज का यह तबका उससे स्थायी रूप से जुड़े। आजादी के कई दशक बाद तक कांग्रेस को ब्राह्मण, दलित और मुसलमानों का थोक में वोट मिलता था। भाजपा की कोशिश है कि उसका सवर्ण, अति पिछड़ा और दलित समीकरण बने जिससे चुनाव जाति पर जाएँ तो भी उसे नुकसान न हो। विपक्ष इसी को रोकने के लिए नैतिक के साथ अनैतिक हथकंडे आजमा रहा है।

सारांश

- संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा करते हुए अज-अजजा (उत्पीड़न से रोकथाम) कानून के तहत शिकायत मिलने पर तत्काल गिरफ्तारी के प्रावधान को लचीला बनाने की शीर्ष अदालत ने कोशिश की।
- उच्चतम न्यायालय के फैसले को निष्प्रभावी बनाने के लिये केन्द्र सरकार ने जिस तत्परता से इस कानून की पूर्व स्थिति बहाल करने का फैसला किया है, उसने वोट बैंक की खातिर 32 साल पुराने शाहबानो प्रकरण की याद ताजा कर दी। शाहबानो प्रकरण में शीर्ष अदालत के निर्णय को बदलने के राजीव गांधी सरकार के फैसले का ही नतीजा अयोध्या में राम जन्मभूमि के मुद्दे को हवा मिलना था।
- सरकार भले ही तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिये संसद से अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति कानून की न्यायालय की 20 मार्च, 2018 की व्यवस्था से पहले की स्थिति बहाल करा ले लेकिन इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि उसका यह निर्णय भी न्यायिक समीक्षा के दायरे में आ सकता है। कहीं न कहीं यह मौलिक अधिकार से जुड़ा है।
- उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में यह व्यवस्था दी है कि अनुसूचित जाति और जनजाति (उत्पीड़न से रोकथाम) कानून के तहत शिकायत होने पर जाँच के बाद ही किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाये। इस कानून के अंतर्गत अनेक झूठे मामले दर्ज कराये जाने का जिक्र भी फैसले में है। गिरफ्तारी से पहले आरोपों की जाँच कराने का मकसद यही पता लगाना है कि कहीं किसी निर्दोष व्यक्ति को फँसाने के इरादे से तो मामला दर्ज नहीं कराया गया है।
- न्यायालय के फैसले में ही लिखा है कि सुनवाई के दौरान बताया गया कि राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो द्वारा संकलित भारत में 2016 में अपराध के आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2016 में अनुसूचित जाति से संबंधित जाँच के दायरे में आये मामलों में से 5347 झूठे पाये गये जबकि अनुसूचित जनजाति के मामलों में 912 झूठे निकले।
- इसी तरह, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की 2016-17 की वार्षिक रिपोर्ट का हवाला देते हुए न्यायालय को बताया गया कि 2015 में अदालतों ने ऐसे 15638 मुकदमों का फैसला किया। इनमें से 11024 की परिणति आरोप मुक्त करने या बरी करने के रूप में हुई जबकि 495 मामले वापस लिये गये और सिर्फ 4119 मामलों में ही दोष सिद्धि हो सकी।
- न्यायालय ने साफ शब्दों में कहा है कि यह कानून इसलिए बना है कि शोषित वर्ग पर अत्याचार नहीं हो लेकिन यह भी देखना होगा कि बेवजह किसी निर्दोष व्यक्ति का शोषण न हो। संविधान के अनुच्छेद-21 में प्रदत्त गरिमापूर्ण तरीके से जीने के अधिकार के आलोक में इस कानून के तहत तत्काल गिरफ्तारी की अनिवार्यता के प्रावधान में थोड़ी ढिलाई देकर इसमें अग्रिम जमानत देने की व्यवस्था की है।
- दलित ऐक्ट वर्ष 1989 में आया था, इससे पहले एक और ऐक्ट था, जिसे प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट ऐक्ट कहते हैं। 1955 में बना यह कानून मूलतः छुआछूत के विरुद्ध था, वर्ष 1989 का ऐक्ट अत्याचार के विरुद्ध। वर्ष 1989 के दलित ऐक्ट को वर्ष 2015 में फिर से संशोधित करके और सख्त किया गया। यहाँ देश और दलित की प्रगति के अंतर्विरोध को देख लें।
- देश 1947 में स्वतंत्र हुआ, 1950 में संविधान लागू हुआ। उम्मीद थी कि नए संविधान के तहत, नए राष्ट्र में लोग स्वयं ही छुआछूत और जात-पांत को छोड़ देंगे। लेकिन पाँच वर्ष में छुआछूत के विरुद्ध कानून की जरूरत पड़ गई।
- दलितों पर हमले रोकने के लिए वर्ष 1989 में दलित ऐक्ट आया और दलित अफसरों के प्रमोशन में रोड़े अटकाने के विरुद्ध नब्बे के दशक में प्रमोशन में आरक्षण की व्यवस्था करनी पड़ी।
- दलितों के खिलाफ माहौल कुछ ज्यादा ही बनने लग गया, इसे देखते हुए 2015 में दलित ऐक्ट को और कड़ा करना पड़ा। वर्ष 1950 और 2014 के बीच 65 वर्षों का अंतराल है।
- कोर्ट के फैसले के बाद 2 अप्रैल को दलित संगठनों के भारत बंद के दौरान हिंसक झड़पें हुई जिसमें 12 लोगों की मौत हो गई। विवाद तब और बढ़ा जब यह फैसला देनेवाले सुप्रीम कोर्ट के जज जस्टिस गोयल को एनजीटी का अध्यक्ष बना दिया गया। इसके बाद दलित संगठनों ने एक बार फिर से 9 अगस्त को भारत बंद का आह्वान किया।
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधित बिल, 2018 के तहत इस तरह के अपराध की शिकायत मिलते ही पुलिस एफआईआर दर्ज करेगी। केस दर्ज करने से पहले जाँच जरूरी नहीं होगी। गिरफ्तारी से पहले किसी की इजाजत लेना आवश्यक नहीं होगा। केस दर्ज होने के बाद अग्रिम जमानत का प्रावधान नहीं होगा, भले ही इस संबंध में पहले का कोई अदालती आदेश हो।
- सन् 2007 के चुनाव में मायावती को दलितों के अलावा सवर्णों के समर्थन ने बहुमत दिलाया था। एससी-एसटी एक्ट पर अमल से सवर्ण नाराज न हो जायें, इसलिए मई और अक्तूबर 2007 में दो अलग-आलग आदेशों से उन्होंने उत्तर प्रदेश में इस कानून को इतना नख-दंत विहीन कर दिया था, जितना वह सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों से भी नहीं हुआ।
- उन आदेशों का सार यह था कि हत्या और बलात्कार को छोड़कर दलित उत्पीड़न के अन्य मामले एससी-एसटी एक्ट के तहत दर्ज न किये जायें और यदि कोई दलित किसी पर इस कानून का दुरुपयोग करे, तो उस पर आईपीसी की धाराओं में मुकदमा लिखा जाये
- कुछ समय पहले इसी आधार दहेज विरोधी कानून में भी सुप्रीम कोर्ट ने शिकायत के बाद तुरंत गिरफ्तारी पर रोक लगा दी थी। शायद इसी फैसले से प्रेरित होकर याचिकाकर्ता सुप्रीम कोर्ट गए थे।
- 2015 में मोदी सरकार ने ही अनुसूचित जाति-जनजाति के खिलाफ अत्याचार की श्रेणी में आने वाले मामलों की संख्या 22 से बढ़ाकर 47 की थी।

अनुसूचित जाति और जनजाति कानून

- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1989, 11 सितंबर 1989 को पारित हुआ, जिसे 30 जनवरी 1990 से जम्मू-कश्मीर छोड़ सारे भारत में लागू किया गया।
- यह अधिनियम उस प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता हैं जो अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का सदस्य नही हैं तथा वह व्यक्ति इस वर्ग के सदस्यों का उत्पीड़न करता हैं। इस अधिनियम मे 5 अध्याय एवं 23 धाराएँ हैं।
- इस एक्ट का उद्देश्य अनुसूचित जातियों और जनजातियों के व्यक्तियों के खिलाफ हो रहे अपराधों के लिए अपराध करने वाले को दंडित करना है। यह इन जातियों के पीड़ितों को विशेष सुरक्षा और अधिकार प्रदान करता है।
- इस कानून के तहत विशेष अदालतें बनाई जाती हैं जो ऐसे मामलों में तुरंत फैसले लेती हैं। यह कानून इस वर्ग के सम्मान, स्वाभिमान, उत्थान एवं उनके हितों की रक्षा के लिए, उनके खिलाफ हो रहे अत्याचार को रोकने के लिए है।
- इस एक्ट के तहत आने वाले अपराध :-
  - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ होने वाले क्रूर और अपमानजनक अपराध, जैसे- उन्हें जबरन मल, मूत्र इत्यादि खिलाना
  - उनका सामाजिक बहिष्कार करना
  - अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्य से व्यापार करने से इनकार करना
  - इस वर्ग के सदस्यों को काम ना देना या नौकरी पर ना रखना
  - शारीरिक चोट पहुँचाना या उनके घर के आस-पास या परिवार में उन्हें अपमानित करने या क्षुब्ध करने की नीयत से कूड़ा-करकट, मल या मृत पशु का शव फेंक देना
  - बलपूर्वक कपड़ा उतारना या उसे नंगा करके या उसके चेहरे पर पेंट पोत कर सार्वजनिक रूप में घुमाना
  - गैर कानूनी-ढंग से खेती काट लेना, खेती जोत लेना या उस भूमि पर कब्जा कर लेना
  - भीख मांगनें के लिए मजबूर करना या बंधुआ मजदूर के रूप में रहने को विवश करना
  - मतदान नहीं देने देना या किसी खास उम्मीदवार को मतदान के लिए मजबूर करना
  - महिला का उसके इच्छा के विरुद्ध या बलपूर्वक यौन शोषण करना
  - उपयोग में लाए जाने वालें जलाशय या जल स्त्रोतों का गंदा कर देना अथवा अनुपयोगी बना देना
  - सार्वजनिक स्थानों पर जाने से रोकना
  - अपना मकान अथवा निवास स्थान छोड़नें पर मजबूर करना
- इस अधिनियम में ऐसे 20 से अधिक कृत्य अपराध की श्रेणी में शामिल किए गए हैं।
- इन अपराधों के लिए दोषी पाए जाने पर 6 महीने से लेकर 5 साल तक की सजा और जुर्माने तक का प्रावधान है। इसके साथ ही क्रूरतापूर्ण हत्या के अपराध के लिए मृत्युदण्ड की सजा का भी प्रावधान है।
- अगर कोई सरकारी कर्मचारी/अधिकारी जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं हैं, अगर वह जानबूझ कर इस अधिनियम के पालन करनें में लापरवाही करता हैं तो उसे 6 माह से एक साल तक की सजा दी जा सकती हैं।
- यह कानून एस.सी., एस.टी. वर्ग के सम्मान, स्वाभिमान, उत्थान एवं उनके हितों की रक्षा के लिए भारतीय संविधान में किये गये विभिन्न प्रावधानों के अलावा इन जातियों के लोगों पर होने वालें अत्याचार को रोकनें के लिए 16 अगस्त, 1989 को उपर्युक्त अधिनियम लागू किये।
- भारत सरकार ने दलितों पर होने वालें विभिन्न प्रकार के अत्याचारों को रोकनें के लिए भारतीय संविधान की अनुच्छेद-17 के आलोक में यह विधान पारित किया। इस अधिनियम में छुआछूत संबंधी अपराधों के विरुद्ध दण्ड में वृद्धि की गई हैं तथा दलितों पर अत्याचार के विरुद्ध कठोर दंड का प्रावधान किया गया हैं। इस अधिनिमय के अन्तर्गत आने वाले अपराध संज्ञेय गैरजमानती और असुलहनीय होते हैं।
- यह अधिनियम उस व्यक्ति पर लागू होता है जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं हैं और इस वर्ग के सदस्यों पर अत्याचार का अपराध करता है।
- इस अधिनियम में पहली बार 'उत्पीड़न' शब्द की विस्तार से व्याख्या की गई। इसके कुछ साल बाद ही केंद्र सरकार ने एक नियमावली भी बनाई जिससे इस अधिनियम को और मजबूती मिली। साल 2015 में इस अधिनियम में कुछ और संशोधन हुए जिससे इसके प्रावधानों को पहले से ज्यादा सख्त किया गया और 'उत्पीड़न' शब्द की व्याख्या में कई ऐसे कृत्य शामिल किये गए जो पहले नहीं थे। जैसे, बाल-मूँछ मूँड देना, जूतों की माला पहनाना आदि।
- 1955 में 'अनटचेबिलिटी ऑफेंस एक्ट' यानी 'अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम' लागू किया गया। इसी अधिनियम ने दलित समुदाय के लिए सार्वजनिक स्थानों के दरवाजे खोले। अधिनियम में प्रावधान था कि सार्वजनिक सड़क, कुआँ, मंदिर, स्कूल आदि जैसी किसी भी जगह पर जाने का दलितों को पूरा अधिकार होगा और अगर किसी ने भी उन्हें रोकने की कोशिश की तो उसके खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई की जाएगी।
- लंबे संघर्ष के बाद साल 1976 में इस कानून में कुछ बदलाव हुए और इसका नाम भी बदलकर 'सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम' कर दिया गया।
- सर्वोच्च न्यायालय ने 20 मार्च को दिए अपने आदेश में कहा कि इस अधिनियम के अंतर्गत आरोपियों की गिरफ्तारी अनिवार्य नहीं है और प्रथमदृष्टया जाँच और संबंधित अधिकारियों की अनुमति के बाद ही कठोर कार्रवाई की जा सकती है। यदि प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है तो अग्रिम जमानत देने पर पूरी तरह से प्रतिबंध नहीं है।
- एफआईआर दर्ज होने के बाद आरोपी की तत्काल गिरफ्तारी नहीं होगी। इसके पहले आरोपों की डीएसपी स्तर का अधिकारी जाँच करेगा। यदि कोई सरकारी कर्मचारी अधिनियम का दुरुपयोग करता है तो उसकी गिरफ्तारी के लिए विभागीय अधिकारी की अनुमति जरूरी होगी। अगर किसी आम आदमी पर इस एक्ट के तहत केस दर्ज होता है, तो उसकी भी गिरफ्तारी तुरंत नहीं होगी। उसकी गिरफ्तारी के लिए एसपी या एसएसपी से इजाजत लेनी होगी।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में अस्पृश्यता के उन्मूलन का वर्णन है?

(a) अनु.-14 (b) अनु.-17

(c) अनु.-20 (d) अनु.-23

(उत्तर-B)

2. हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति कानून के प्रावधानों को संविधान के किस अनुच्छेद में प्रदत्त अधिकार की रक्षा करते हुए निष्प्रभावी करार दिया था?

(a) अनु.-14 (b) अनु.-17

(c) अनु.-19 (d) अनु.-21

(उत्तर-D)

3. अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए भारत में सबसे पहले कौन-सा कानून बनाया गया था?

(a) प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट एक्ट, 1955

(b) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति एक्ट, 1989

(c) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति एक्ट, 2015

(d) अस्पृश्यता उन्मूलन एक्ट, 1990

(उत्तर-A)

4. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति कानून के तहत निम्न में से कौन-सा अपराध नहीं आता है?

(a) सामाजिक बहिष्कार करना

(b) गैर कानूनी-ढंग से खेती काट लेना

(c) तरक्की को रोकना

(d) व्यापार करने से इंकार करना

(उत्तर-C)

5. अनुसूचित जाति एवं जनजाति एक्ट एवं व्यक्ति के मौलिक अधिकार कहाँ तक एक दूसरे की सीमा को अतिक्रमित करते हैं?

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. समाज में समता के एक प्रभावों में किसकी अनुपस्थिति होती है?

(a) विशेषाधिकार (b) नियंत्रण

(c) प्रतिस्पर्धा (d) विचारधारा

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2017, उत्तर-A)

2. सूची-I (भारत के संविधान के अनुच्छेद) को सूची-II से मिलाएं एवं सूचियों के नीचे दिए गए कूटों का प्रयोग कर सही उत्तर दें।

	सूची-I		सूची-II
A.	अनु. 14	1.	राज्य नागरिकों के विरुद्ध केवल धर्म, वर्ण, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी भी आधार पर विभेद नहीं करेगा।
B.	अनु. 15	2.	राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या भारतीय क्षेत्र में कानून के समान संरक्षण से इनकार नहीं करेगा।
C.	अनु. 16	3.	अस्पृश्यता का उन्मूलन हो चुका है एवं किसी भी रूप में इसका प्रयोग दंडनीय है।
D.	अनु. 17	4.	राज्य के अंतर्गत आने वाले किसी भी कार्यालय में सभी नागरिकों के लिए किसी रोजगार या नियुक्ति से संबंधित मामलों में अवसर की समानता होगी।

कूट:-

	A	B	C	D
a.	2	4	1	3
b.	3	1	4	2
c.	2	1	4	3
d.	3	4	1	2

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2004, उत्तर-C)

3. इस मुद्दे पर चर्चा कीजिए कि क्या और किस प्रकार दलित प्राख्यान (ऐसर्शन) के समकालीन आंदोलन जाति विनाश की दिशा में कार्य करते हैं। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2015)

4. क्या कारण है कि जनजातियों को 'अनुसूचित जनजातियाँ' कहा जाता है? भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित उनके उत्थापन के लिए प्रमुख प्रावधाानों को सूचित कीजिए। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2016)

5. स्वतंत्रता के बाद अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) के प्रति भेदभाव को दूर करने के लिए, राज्य द्वारा की गई दो मुख्य विधिक पहलें क्या हैं? (150 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2017)

GS World
Committed To Excellence

भारत छोड़ो आंदोलन के 75 वर्ष

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1 (इतिहास) से संबंधित है।

भारत छोड़ो आंदोलन जो 8 अगस्त, 1942 को मुंबई के ग्वालिया टैंक मैदान से 'करो या मरो' के नारे के साथ शुरू हुआ था कि इस वर्ष 75 वीं वर्षगाँठ है। इसके तार्किक विश्लेषण से मौजूदा समय में भी सीख ली जा सकता है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'नई दुनिया' तथा 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

बुराइयों को खदेड़ने का लें संकल्प (नई दुनिया)

इतिहास केवल कुछ घटनाओं का विवरण मात्र नहीं है। उसके सबक हमें भविष्य की रोशनी भी दिखाते हैं, ताकि हम नई शुरुआत कर सकें। किसी राष्ट्र के इतिहास में ऐसे क्षण आते हैं, जो घटनाचक्र को हमेशा के लिए बदल देते हैं। भारत के स्वाधीनता संघर्ष में 'भारत छोड़ो आंदोलन नि:संदेह ऐसा ही एक पड़ाव था, जिसने आजादी के अभियान की काया ही पलट दी। इसने आजादी के संघर्ष को गति देने के साथ ही पूरे देश को एकजुटता के धागे में पिरोने का काम किया। जब दुनिया युद्ध की विभीषिका के साये में थी, तब शांतिदूत बनकर उभरे महात्मा गांधी अहिंसा के सिद्धांत के प्रति समर्पित रहे और 8 अगस्त, 1942 की शाम को मुंबई के गोवलिया टैंक मैदान से देशवासियों के लिए 'करो या मरो का नारा दिया। अहिंसक संघर्ष को लेकर उनकी अपील ने देशवासियों पर जादुई असर किया। देश में हर तबके के लोग इस आंदोलन से जुड़े और उन्होंने निर्मम विदेशी शासन के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। भारत से ब्रिटिश शासन की समाप्ति को लेकर महात्मा की अपील ने राष्ट्रीय पुनर्जागरण में अप्रत्याशित भूमिका निभायी। इसने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट को भी भारत की आजादी की मांग के समर्थन में लामबंद किया। इस आंदोलन के असर से घबराए अंग्रेजों ने महात्मा गांधी सहित लगभग सभी प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों को गिरफ्तार कर लिया। अंग्रेजों ने इस आंदोलन का क्रूरतापूर्वक दमन किया, लेकिन कुछ इलाकों में हिंसक प्रदर्शन के बावजूद इसने ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया कि देश से अंग्रेजों की विदाई की जमीन तैयार हो गई।

8 अगस्त, 1942 को अपने ऐतिहासिक भाषण में महात्मा गांधी ने कहा था, 'मेरी राय में दुनिया के इतिहास में हमसे ज्यादा लोकतांत्रिक स्वाधीनता संघर्ष कहीं और नहीं हुआ होगा। जेल में मैंने कार्लाइल की फ्रांसीसी क्रांति के बारे में पढ़ा और पंडित जवाहरलाल ने मुझे रूसी क्रांति के बारे में भी कुछ बताया, मगर उनकी लड़ाई हिंसक रूप से लड़ी गई और इस तरह लोकतांत्रिक आदर्शों के मामले में नाकाम रही। मैं अहिंसा द्वारा स्थापित लोकतंत्र की कल्पना करता हूं, जिसमें सभी के लिए समान स्वतंत्रता हो और हर कोई अपना मालिक खुद हो। ऐसे लोकतंत्र की स्थापना के लिए मैं आज आपको आमंत्रित करता हूँ। जब आप इसे महसूस कर लेंगे तो हिंदू और मुसलमान के बीच का भेद भूलकर केवल भारतीय होने के बारे में सोचेंगे।

तमाम मुश्किलों के बाद हासिल हुई आजादी को अब 71 साल हो गए हैं। ऐसे में हम सभी का दायित्व है कि हम राष्ट्रपिता और उन अन्य राष्ट्रीय नायकों के सपने को पूरा करने के लिए जी-जान से जुटें, जिन्होंने हमारी आजादी के लिए तमाम त्याग किए। बीते सात दशकों में हमने काफी प्रगति की है, लेकिन सभी राज्यों के विकास में विषमता

क्रांति जिससे आजादी की राह निकली (हिन्दुस्तान)

'भारत छोड़ो' (क्विट इंडिया) के नारे के साथ 1942 में 'अगस्त क्रांति' की शुरुआत हुई थी। इस आंदोलन में हर तबके के लोगों ने हिस्सा लिया। किसानों, महिलाओं, छात्रों, नौजवानों के साथ-साथ विभिन्न विचारधारा के लोगों ने इसमें शिरकत की और अपना सर्वोच्च बलिदान दिया। वह दूसरे विश्व युद्ध का समय था और लोगों के लिए कठिन माहौल था। ब्रिटिश सरकार ने तमाम तरह के सख्त कानून थोप दिए थे और किसी भी तरह की राजनीतिक गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी थी, फिर चाहे वह शांतिपूर्ण क्यों न चल रही हो। इन सबके बावजूद लोगों ने बहादुरी के साथ यह आंदोलन चलाया।

आज जब यह भावना गहराती जा रही है कि लोग विरोध के स्वर में साथ नहीं देते और उनमें राजनीतिक तौर पर उदासीनता पसरती जा रही है, तब इस आंदोलन का संदेश हमारे भीतर एक नई उम्मीद जगाता है। यह बताता है कि लोग यदि ठान लें, तो वे किसी भी उद्देश्य के लिए एक हो सकते हैं; बस उन्हें एक सही नेतृत्व की दरकार होती है। यह आंदोलन अत्याचार के खिलाफ खड़े होने की एक परंपरा का हिस्सा है। आज इसलिए भी इसकी प्रासंगिकता है कि यह उन तमाम तबकों को ताकत देता है, जो आज दबाए-कुचले जा रहे हैं और अपने हक-अधिकार की जंग लड़ रहे हैं।

आखिर 'भारत छोड़ो' का नारा देना क्यों जरूरी हो गया था? दूसरे विश्व युद्ध के दौरान यह आंदोलन चलाना क्यों उचित समझा गया, जबकि भारतवासियों और राष्ट्रीय आंदोलन की सहानुभूति ब्रिटेन व मित्र देशों के साथ थी, जो हिटलर और मुसोलिनी के फासीवाद व नाजीवाद के खिलाफ लड़ रहे थे? इसके कई कारण थे। एक बड़ी वजह थी, अंग्रेज सरकार की वह नीति, जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के युद्ध में मदद के प्रस्ताव को ठुकराकर भारत को जबर्दस्ती दूसरे विश्व युद्ध में हिस्सेदार बनाया। कांग्रेस का कहना था कि भारतीयों को सरकार में शामिल कर उन्हें जिम्मेदारी भी दी जाए। लेकिन अंग्रेजों ने इसे ठुकराकर जोर-जबर्दस्ती से काम निकालना पसंद किया।

एक और कारण था, दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटेन का रवैया। जब जापानी फौज इस इलाके के देशों पर हमला कर रही थी, तब ब्रिटिश शासक लड़ने और स्थानीय जनता की हिफाजत करने की बजाय भाग खड़े हुए थे। हिन्दुस्तानियों के मन में शंका पैदा हुई कि क्या अंग्रेज यहाँ भी रणछोड़ साबित तो नहीं होंगे? गांधीजी की चिंता यह भी थी कि अंग्रेजों को हराकर कहीं जापानी हुकूमत भारत पर न अपना कब्जा जमा ले। इसका वह एक ही जवाब समझते थे कि भारतीय जनता में जोश और संघर्ष की भावना जगे, इसीलिए वह आंदोलन के हक में थे। लोगों की नाराजगी भी इस आंदोलन की एक वजह थी, क्योंकि युद्ध के कारण महँगाई बढ़ गई

भी है। अगले 15 से 20 वर्षों के दौरान जब भारत दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक में तब्दील होने को तैयार है, तब हम गरीबी, निरक्षरता, शहरी-ग्रामीण खाई, लैंगिक भेदभाव, कृषि संकट और विकास के मोर्चे पर असमानता जैसे अवरोधों के चलते अपने देश की तरक्की में अवरोध बर्दाश्त नहीं कर सकते। समय आ गया है कि हम अपने सार्वजनिक एवं सामाजिक विमर्श की दिशा को नए सिरे से तय करें, ताकि वह भारत को तेज तरक्की के पथ पर अग्रसर करने में मदद करे और ऐसे नए भारत के निर्माण में सहायता मिले, जिसमें जाति, धर्म या क्षेत्र जैसे मुद्दे गौण हो जाएँ और प्रत्येक व्यक्ति देशहित को सर्वोपरि रखे। आखिर हम निर्धन तबकों, किसानों, महिलाओं, ग्रामीण दस्तकारों व युवाओं के सशक्तीकरण के बिना तरक्की की रफ्तार कैसे तेज कर सकते हैं? सभी वर्गों के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक उत्थान में शिक्षा सबसे अहम कुंजी है। हमें यह तय करना होगा कि हमारे बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित न रह जाएँ। इसी तरह यह भी सुनिश्चित करना होगा कि महिलाएँ अशिक्षित न रहें। सभी क्षेत्रों के मानकों और नैतिक मूल्यों में आ रही गिरावट को भी हमें रोकना होगा। सामाजिक चेतना का भाव जगाकर सह-अस्तित्त्व और एकजुटता के भाव को बढ़ाना होगा। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, मुद्रा बैंक, स्किल इंडिया, स्टैंडअप इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, खेलो इंडिया और जनधन-आधार-मोबाइल जैसे सरकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं का मकसद ही वंचित वर्ग के लोगों को सशक्त बनाना है। एक व्यापक राष्ट्रीय पुनर्जागरण की जरूरत है जो हमारे स्वराज्य को सुराज्य में बदले। इसमें सुनिश्चित हो कि प्रत्येक भारतीय समावेशी विकास यात्रा में सहभागी बने जिसका सपना हमारे स्वतंत्रता सेनानियों और संविधान निर्माताओं ने देखा था।

संविधान की प्रस्तावना के अनुसार हम एक संप्रभु, समाजवादी, सेक्युलर, लोकतांत्रिक गणराज्य हैं, जो अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, धार्मिक मान्यता एवं उपासना की स्वतंत्रता के साथ ही अवसरों की समानता प्रदान करता है। ऐसे संविधान के लागू होने के 68 वर्ष बाद भी हम अपने दैनिक जीवन में इन आदर्शों को आत्मसात करने के मामले में काफी पीछे हैं। हमें संविधान सभा में डॉ. आंबेडकर के अंतिम भाषण का स्मरण करना होगा, जिसमें उन्होंने कहा था, 'हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वतंत्रता ने हमें गहरी जिम्मेदारी दी है। आजादी के साथ ही हमने गड़बड़ियों के लिए अंग्रेजों पर दोष मढ़ने का बहाना भी खो दिया। यदि यहाँ से चीजें बिगड़ती हैं तो दोषी हम स्वयं होंगे।

हम अपने देश को औपनिवेशिक शक्तियों से आजाद कराने में सफल रहे। अब हमें उन सामाजिक बुराइयों से पीछा छुड़ाना होगा, जिनका बदसूरत चेहरा विभिन्न् क्षेत्रों में समय-समय सिर उठाता रहता है। जातिवाद, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, धर्मांधता और असहिष्णुता के खिलाफ हमें समवेत स्वर में आवाज उठाने की दरकार है। यह नए भारत के आकार लेने का समय है, जो हम सभी की ख्वाहिश है। ऐसा नया भारत जो आर्थिक रूप से सशक्त, सामाजिक समरसता से परिपूर्ण और सांस्कृतिक रूप से गतिशील हो। जातिगत एवं लैंगिक भेदभाव के साथ ही महिलाओं और कमजोर समूहों के खिलाफ हिंसा हमें बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं होनी चाहिए।

हमें सार्वजनिक विमर्श को उस दिशा में मोड़ना चाहिए, जो हमारे समृद्ध मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग से सतत विकास की प्रक्रिया को तेजी दे। विरासत में मिले ज्ञान की अपनी अमूल्य धरोहर पर भी हमें ध्यान देना चाहिए। अपने धर्मग्रंथों और संविधान में वर्णित मूल्यों को भी हमें अपने जीवन में उतारना चाहिए। अपने लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए देश में सभी क्षमताएँ हैं। बस हमें चीजों को बेहतर तरीके से करने का संकल्प लेना होगा। इस बात को तेलुगु कवि गुरजादा अप्पा राव की यह कविता अच्छे से व्यक्त करती है, 'मेरे मित्र बहुत बातें हो चुकी हैं, अब कुछ ठोस काम किया जाए। समय आ गया है कि हम सभी सामाजिक बुराइयों के पीछे पड़कर उनके खिलाफ 'भारत छोड़ो आंदोलन का आह्वान करें।

थी और जरूरी चीजों की भारी कमी हो रही थी। कुल मिलाकर, आम जनता में सरकार के खिलाफ एक विरोधाभास था।

इस आंदोलन को शुरू करने के लिए अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बंबई (अब मुंबई) के गोवालिया टैंक मैदान में बुलाई गई। खुले अधिवेशन में नेताओं ने हजारों लोगों को संबोधित किया। यहीं पर गांधीजी ने अपना मशहूर मंत्र 'करो या मरो' दिया। उन्होंने लोगों से कहा कि मैं अभी वायसराय से एक बार और बात करूंगा। पर अंग्रेज सरकार इंतजार के मूड में नहीं थी। 9 अगस्त, 1942 की सुबह उसने कई जगह छापा मारकर कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें गुप्त जगह पर भेज दिया। इस कार्रवाई ने लोगों में बहुत गुस्सा पैदा किया।

अगले छह-सात हफ्तों तक यह आंदोलन चला। बहुत बड़े पैमाने पर लोगों ने इसमें हिस्सा लिया। कहीं पुलिस थानों पर हमले किए गए, तो कहीं डाकघरों, रेलवे स्टेशनों और कचहरियों पर। ब्रिटिश साम्राज्य के तमाम प्रतीकों को ढहाया जाने लगा। हालाँकि बहुत सी जगहों पर लोगों ने शांतिपूर्ण सत्याग्रह किया और खुद को गिरफ्तारी के लिए पेश किया। आंदोलन को दबाने के लिए अंग्रेजों ने असाधारण तरीके अपनाए। फायरिंग तो की ही गई, हवाई जहाज से भी प्रदर्शनकारियों पर कार्रवाई की गई। सामूहिक जुर्माना लगाया गया, गांव जलाए गए और लोगों को खूब मारा-पीटा गया। जब सरकारी अत्याचार के कारण खुला आंदोलन कमजोर हो गया, तो गुप्त रूप से यह आंदोलन चल पड़ा।

इस आंदोलन के दौरान एक नई चीज थी, 'पैरेलल गवर्नमेंट' यानी समानांतर सरकार का उभरना। यह तीन जगहों पर हुआ- बलिया (उत्तर प्रदेश), सतारा (महाराष्ट्र) और मिदनापुर (बंगाल) में। वहाँ स्थानीय नेता और कार्यकर्ता मिलकर राष्ट्रीय सरकार चलाते थे, जिसमें स्कूल, कचहरी, पुस्तकालय आदि का उचित बंदोबस्त शामिल था। ब्रिटिश हुकूमत ने जेल में गांधीजी पर दबाव बनाने की बहुत कोशिशें कीं। वह चाहती थी कि आंदोलन में हो रही हिंसक घटनाओं की बापू निंदा करें। मगर गांधीजी ने कहा, 'अंग्रेजों की भयानक हिंसा के कारण कुछ लोग हिंसक हो उठे हैं।' वह हिंसा के खिलाफ थे, पर यह भी समझते थे कि जब जबर्दस्त हिंसा का सामना करना पड़ता है, तो प्रतिहिंसा होती ही है।

'अगस्त क्रांति' का नतीजा यह था कि दूसरे विश्व युद्ध के खत्म होते-होते अंग्रेजों ने भारत छोड़ने की तैयारी शुरू कर दी। वे समझ गए कि उनके दिन अब गिनती के रह गए हैं। साल 1937 में तत्कालीन वायसराय लिनलिथगो ने दावा किया था कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार का परचम अगले 50 वर्षों तक लहराएगा। मगर 1942 के इस आंदोलन को देखकर अंग्रेजों को एहसास हो गया कि यदि वे ससम्मान विदाई चाहते हैं, तो उन्हें जल्द से जल्द हिन्दुस्तान को आजादी देनी होगी। वे नहीं चाहते थे कि इस तरह के किसी और आंदोलन का वे सामना करें। विश्व युद्ध का बहाना बनाकर और अपूर्व हिंसा का इस्तेमाल करके उन्होंने जैसे-तैसे इस आंदोलन को तो संभाल लिया था, मगर बुद्धिमानी इसी में थी कि विदाई की तैयारी की जाए।

ऐसा हुआ भी। शिमला कॉन्फ्रेंस, कैबिनेट मिशन, माउंटबेटन योजना, संविधान सभा- ये सब 'भारत छोड़ो' आंदोलन के कारण ही संभव हो सके, और 15 अगस्त, 1947 को हम एक आजाद मुल्क बन गए।

Committed to Excellence

सारांश

- 'भारत छोड़ो' (क्विट इंडिया) के नारे के साथ 1942 में 'अगस्त क्रांति' की शुरुआत हुई थी। इस आंदोलन में हर तबके के लोगों ने हिस्सा लिया। किसानों, महिलाओं, छात्रों, नौजवानों के साथ-साथ विभिन्न विचारधारा के लोगों ने इसमें शिरकत की और अपना सर्वोच्च बलिदान दिया।
- ब्रिटिश सरकार ने तमाम तरह के सख्त कानून थोप दिए थे और किसी भी तरह की राजनीतिक गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी थी, फिर चाहे वह शांतिपूर्ण क्यों न चल रही हो।
- अंग्रेज सरकार की वह नीति, जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के युद्ध में मदद के प्रस्ताव को ठुकराकर भारत को जबर्दस्ती दूसरे विश्व युद्ध में हिस्सेदार बनाया। कांग्रेस का कहना था कि भारतीयों को सरकार में शामिल कर उन्हें जिम्मेदारी भी दी जाए। लेकिन अंग्रेजों ने इसे ठुकराकर जोर-जबर्दस्ती से काम निकालना पसंद किया।
- एक और कारण था, दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटेन का रवैया। जब जापानी फौज इस इलाके के देशों पर हमला कर रही थी, तब ब्रिटिश शासक लड़ने और स्थानीय जनता की हिफाजत करने की बजाय भाग खड़े हुए थे।
- लोगों की नाराजगी भी इस आंदोलन की एक वजह थी, क्योंकि युद्ध के कारण महंगाई बढ़ गई थी और जरूरी चीजों की भारी कमी हो रही थी। कुल मिलाकर, आम जनता में सरकार के खिलाफ एक विरोधाभास था।
- इस आंदोलन को शुरू करने के लिए अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बंबई (अब मुंबई) के गोवालिया टैंक मैदान में बुलाई गई। खुले अधिवेशन में नेताओं ने हजारों लोगों को संबोधित किया। यहीं पर गांधीजी ने अपना मशहूर मंत्र 'करो या मरो' दिया।
- अंग्रेज सरकार इंतजार के मूड में नहीं थी। 9 अगस्त, 1942 की सुबह उसने कई जगह छापा मारकर कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें गुप्त जगह पर भेज दिया। इस कार्रवाई ने लोगों में बहुत गुस्सा पैदा किया।
- अगले छह-सात हफ्तों तक यह आंदोलन चला। बहुत बडे पैमाने पर लोगों ने इसमें हिस्सा लिया। कहीं पुलिस थानों पर हमले किए गए, तो कहीं डाकघरों, रेलवे स्टेशनों और कचहरियों पर। ब्रिटिश साम्राज्य के तमाम प्रतीकों को ढहाया जाने लगा। हालाँकि बहुत सी जगहों पर लोगों ने शांतिपूर्ण सत्याग्रह किया और खुद को गिरफ्तारी के लिए पेश किया।
- आंदोलन को दबाने के लिए अंग्रेजों ने असाधारण तरीके अपनाए। फायरिंग तो की ही गई, हवाई जहाज से भी प्रदर्शनकारियों पर कार्रवाई की गई। सामूहिक जुर्माना लगाया गया, गांव जलाए गए और लोगों को खूब मारा-पीटा गया। जब सरकारी अत्याचार के कारण खुला आंदोलन कमजोर हो गया, तो गुप्त रूप से यह आंदोलन चल पड़ा।
- इस आंदोलन के दौरान एक नई चीज थी, 'पैरेलल गवर्नमेंट' यानी समानांतर सरकार का उभरना। यह तीन जगहों पर हुआ- बलिया (उत्तर प्रदेश), सतारा (महाराष्ट्र) और मिदनापुर (बंगाल) में। वहाँ स्थानीय नेता और कार्यकर्ता मिलकर राष्ट्रीय सरकार चलाते थे, जिसमें स्कूल, कचहरी, पुस्तकालय आदि का उचित बंदोबस्त शामिल था।
- ब्रिटिश हुकूमत ने जेल में गांधीजी पर दबाव बनाने की बहुत कोशिशें कीं। वह चाहती थी कि आंदोलन में हो रही हिंसक घटनाओं की बापू निंदा करें। मगर गांधीजी ने कहा, 'अंग्रेजों की भयानक हिंसा के कारण कुछ लोग हिंसक हो उठे हैं।' वह हिंसा के खिलाफ थे, पर यह भी समझते थे कि जब जबर्दस्त हिंसा का सामना करना पड़ता है, तो प्रतिहिंसा होती ही है।
- 'अगस्त क्रांति' का नतीजा यह था कि दूसरे विश्व युद्ध के खत्म होते-होते अंग्रेजों ने भारत छोड़ने की तैयारी शुरू कर दी। साल 1937 में तत्कालीन वायसराय लिनलिथगो ने दावा किया था कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार का परचम अगले 50 वर्षों तक लहराएगा।
- शिमला कॉन्फ्रेंस, कैबिनेट मिशन, माउंटबेटन योजना, संविधान सभा- ये सब 'भारत छोड़ो' आंदोलन के कारण ही संभव हो सके, और 15 अगस्त, 1947 को हम एक आजाद मुल्क बन गए।
- जब दुनिया युद्ध की विभीषिका के साये में थी, तब शांतिदूत बनकर उभरे महात्मा गांधी अहिंसा के सिद्धांत के प्रति समर्पित रहे और 8 अगस्त, 1942 की शाम को बम्बई (मुंबई) के गोवलिया टैंक मैदान से देशवासियों के लिए 'करो या मरो का नारा दिया।
- भारत से ब्रिटिश शासन की समाप्ति को लेकर महात्मा की अपील ने राष्ट्रीय पुनर्जागरण में अप्रत्याशित भूमिका निभाई। इसने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट को भी भारत की आजादी की मांग के समर्थन में लामबंद किया। इस आंदोलन के असर से घबराए अंग्रेजों ने महात्मा गांधी सहित लगभग सभी प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों को गिरफ्तार कर लिया।

- संविधान की प्रस्तावना के अनुसार हम एक संप्रभु, समाजवादी, सेक्युलर, लोकतांत्रिक गणराज्य हैं, जो अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, धार्मिक मान्यता एवं उपासना की स्वतंत्रता के साथ ही अवसरों की समानता प्रदान करता है।

भारत छोड़ो आंदोलन

- भारत छोड़ो आन्दोलन 9 अगस्त, 1942 ई. को सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आह्वान पर प्रारम्भ हुआ था। भारत को जल्द ही आजादी दिलाने के लिए गाँधी द्वारा अंग्रेज शासन के विरुद्ध यह एक बड़ा 'नागरिक अवज्ञा आन्दोलन' था।
- शक्रिप्स मिशनश की असफलता के बाद गाँधीजी ने एक और बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय ले लिया। इस आन्दोलन को 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का नाम दिया गया।
- 'भारत छोड़ो आन्दोलन' या 'अगस्त क्रान्ति भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन' की अन्तिम महान् लड़ाई थी, जिसने ब्रिटिश शासन की नींव को हिलाकर रख दिया। क्रिप्स मिशन के खाली हाथ भारत से वापस जाने पर भारतीयों को अपनी छले जाने का अहसास हुआ। दूसरी ओर दूसरे विश्व युद्ध के कारण परिस्थितियाँ अत्यधिक गम्भीर होती जा रही थीं।
- जापान सफलतापूर्वक सिंगापुर, मलाया और बर्मा पर कब्जा कर भारत की ओर बढ़ने लगा, दूसरी ओर युद्ध के कारण तमाम वस्तुओं के दाम बेतहाश बढ़ रहे थे, जिससे अंग्रेज सत्ता के खलिाफ भारतीय जनमानस में असन्तोष व्याप्त होने लगा था। जापान के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर 5 जुलाई, 1942 ई. को गाँधीजी ने हरिजन में लिखा 'अंगेजों! भारत को जापान के लिए मत छोड़ो, बल्कि भारत को भारतीयों के लिए व्यवस्थित रूप से छोड़ जाओ।'
- विश्व युद्ध में ब्रिटेन को भारत के समर्थन के बदले में औपनिवेशिक राज्य का दर्जा देने के प्रस्ताव के साथ सर स्टैफर्ड क्रिप्स का भारत आगमन हुआ। ब्रिटेन ने महारानी के प्रति निष्ठा के बदले में भारत को स्वशासन देने का प्रस्ताव किया।
- देश भर के स्वतंत्रता सेनानियों की एक ही मांग थी, और यह थी पूर्ण स्वराज। क्रिप्स मिशन की विफलता के बाद महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपना तीसरा बड़ा आंदोलन छेड़ने का फैसला लिया।
- भारत छोड़ो आंदोलन के उदय के कारण : क्रिप्स मिशन की असफलता, जापान के आक्रमण का भय, आर्थिक असंतोष की स्थिति, बर्मा में भारतीयों के साथ भेदभाव, पूर्वी बंगाल में असंतोष की स्थिति , ब्रिटिशो के विरुद्ध वातावरण।
- भारत छोड़ो आंदोलन यदपि मुम्बई के ऐतिहासिक अगस्त क्रांति मैदान से नौ अगस्त को आरम्भ हुआ था परन्तु इस संबंध में पहला प्रस्ताव 14 जुलाई, 1942 को वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में पारित हुआ था।
- इस प्रस्ताव द्वारा अंग्रेजों से भारत छोड़ने की मांग की गई। इस प्रकार वर्धा प्रस्ताव में यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि ब्रिटिश सरकार भारत में अपने साम्राज्य का अंत कर दे तो कांग्रेस ब्रिटिश सरकार एवं मित्र राष्ट्रों को उनके युद्ध प्रयत्न में सहयोग देगी। इसके विपरीत यदि ब्रिटेन भारत को स्वतंत्र करने के लिए तैयार नहीं हुआ तो गांधी के नेतृत्व में स्वराज प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक संघर्ष प्रारम्भ कर दिया जाएगा।
- 7 अगस्त, 1942 को मुम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ।महात्मा गांधी ने समिति के समक्ष 8 अगस्त को भारत छोड़ो का अपना ऐतिहासिक प्रस्ताव पेश किया। उस प्रस्ताव में कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन का तात्कालिक अंत मित्र राष्ट्रों के आदर्शों की पूर्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसी पर युद्ध का भविष्य, स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र की सफलता निर्भर है।
- अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पूरे आग्रह के साथ ब्रिटिश सत्ता को हटा लिए जाने की मांग की है। कांग्रेस के इसी अधिवेशन में महात्मा गांधी ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा बुलंद किया तथा देश को करो या मरो का संदेश दिया।
- भारत छोड़ो आंदोलन की घोषणा होने के 24 घंटे के भीतर ही सभी बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये और जनता का मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं रहा। फिर भी आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए जनता के बीच से ही नेता उभर कर सामने आये। लोग ब्रिटिश शासन के प्रतीकों के खिलाफ प्रदर्शन करने सड़कों पर निकल पड़े और उन्होंने सरकारी इमारतों पर कांग्रेस के झंडे फहराने शुरू कर दिये। लोगों ने गिरफ्तारियाँ देना और सामान्य सरकारी कामकाज में व्यवधान उत्पन्न करना शुरू कर दिया। विद्यार्थी और कामगार हड़ताल पर चले गये। बंगाल के किसानों ने करों में बढ़ोतरी के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। सरकारी कर्मचारियों ने भी नियमों का उल्लंघन शुरू कर दिया।
- भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ही डॉ. राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और अरुणा आसफ अली जैसे नेता उभर कर सामने आये। आंदोलनकारियों ने देश के बहुत से भागों में समानांतर सरकारें गठित कर दीं। उत्तर प्रदेश के बलिया में चित्तू पांडे ने सरकार का गठन कर लिया जबकि वाई.बी. चव्हाण और नाना पाटिल ने सतारा में सरकार बना ली।

- भारत छोड़ो आंदोलन इस मायने भी अनोखा था क्योंकि इसमें महिलाओं की भरपूर भागीदारी थी। उन्होंने आंदोलन में न सिर्फ हिस्सा लिया बल्कि पुरुषों की बराबरी करते हुए इसका नेतृत्व भी संभाला। मातंगिनी हजारा ने बंगाल में तामलुक में 6000 लोगों के जुलूस का नेतृत्व करते हुए, जिनमें से अधिकतर महिलाएँ थीं, एक स्थानीय पुलिस थाने को तहस-नहस कर दिया।
- सुचेता कृपलानी ने भी आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया; बाद में उन्हें भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री बनने का गौरव भी प्राप्त किया। ओडिशा में नंदिनी देवी और शशिबाला देवी तथा असम में कनकलता बरुआ और कुहेली देवी पुलिस दमन में शहीद हुई। उषा मेहता का अनोखा योगदान यह था कि उन्होंने मुंबई में कांग्रेस का गुप्त रेडियो स्टेशन शुरू किया।
- भारत छोड़ो आंदोलन सही मायने में एक जनांदोलन था जिसमें लाखों आम हिंदुस्तानी शामिल थे। इस आंदोलन ने युवाओं को बड़ी संख्या में अपनी ओर आकर्षित किया। उन्होंने अपने कॉलेज छोड़कर जेल का रास्ता अपनाया। जिस दौरान कांग्रेस के नेता जेल्ल में थे उसी समय जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के उनके साथी अपना प्रभाव क्षेत्र फैलाने में लगे थे। इन्हीं सालों में लीग को पंजाब और सिंध में अपनी पहचान बनाने का मौका मिला, जहाँ अभी तक उसका कोई खास वजूद नहीं था।
- 'भारत छोड़ो आन्दोलन' यदपि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहा, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम सुखदायी रहे। इसलिए इसे 'भारत की स्वाधीनता के लिए किया जाने वाला अन्तिम महान् प्रयास' कहा गया। अगस्त, 1942 ई. के विद्रोह के बाद प्रश्न सिर्फ यह तय करना था कि स्वतंत्रता के बाद सरकार का स्वरूप क्या हो?
- 1942 ई. के आन्दोलन की विशालता को देखते हुए अंग्रेजों को विश्वास हो गया था कि उन्होंने शासन का वैध अधिकार खो दिया है। इस आन्दोलन ने विश्व के कई देशों को भारतीय जनमानस के साथ खड़ा कर दिया।
- चीन के तत्कालीन मार्शल च्यांग काई शेक ने 25 जुलाई, 1942 ई. को संयुक्त राज्य अमेरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट को पत्र में लिखा, 'अंग्रेजों के लिए सबसे श्रेष्ठ नीति यह है कि वे भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दें।' रूजवेल्ट ने भी इसका समर्थन किया।
- सरदार वल्लभ भाई पटेल ने आन्दोलन के बारे लिखा- 'भारत में ब्रिटिश राज के इतिहास में ऐसा विप्लव कभी नहीं हुआ, जैसा कि पिछले तीन वर्षों में हुआ, लोगों की प्रतिक्रिया पर हमें गर्व है।'
- ब्रिटिश सरकार ने 13 फरवरी, 1943 ई. को श्भारत छोड़ो आन्दोलनश के समय हुए विद्रोहों का पूरा दोष महात्मा गाँधी एवं कांग्रेस पर थोप दिया। गाँधीजी ने इन बेबुनियाद दोषों को अस्वीकार करते हुए कहा कि 'मेरा वक्तव्य अहिंसा की सीमा में था।'
- उन्होंने कहा कि- 'स्वतन्त्रता संग्राम के प्रत्येक अहिंसक सिपाही को कागज या कपड़े के एक टुकड़े पर 'करो या मरो' का नारा लिखकर चिपका लेना चाहिए, जिससे यदि सत्याग्रह करते समय उसकी मृत्यु हो जाए तो उसे इस चिह्न के आधार पर दूसरे तत्त्वों से अलग किया जा सके, जिनका अहिंसा में विश्वास नहीं है।'
- गाँधीजी ने अपने ऊपर लगे आरोपों को सिद्ध कराने के लिए सरकार से निष्पक्ष जाँच की मांग की। सरकार के इस ओर ध्यान न देने पर 10 फरवरी, 1943 ई. से उन्होंने 21 दिन का उपवास शुरू कर दिया। उपवास के तेरहवें दिन ही गाँधीजी की स्थिति बिल्कुल नाजुक हो गयी। ब्रिटिश भारत की सरकार उन्हें मुक्त न करके उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगी।
- कुछ इतिहासकारों का मानना है कि 'आगा खाँ महल' में उनके अन्तिम संस्कार के लिए चन्दन की लकड़ी की व्यवस्था भी कर दी गयी थी। सरकार की इस बर्बर नीति के विरोध में वायसराय की कौंसिल के सदस्य सर मोदी, सर ए.एन. सरकार एवं आणे ने इस्तीफा दे दिया।
- सन 1857 के पश्चात् देश की आजादी के लिए किए जाने वाले सभी आंदोलनों में भारत छोड़ो आंदोलन सबसे विशाल और सबसे तीव्र आंदोलन सिद्ध हुआ। जिसके कारण भारत में ब्रिटिश राज की नीव पूरी तरह हिल गई। श्भारत छोड़ो आन्दोलनश मूल रूप से एक जनांदोलन था, जिसमें भारत का हर जाति वर्ग का व्यक्ति शामिल था।
- इस आन्दोलन ने युवाओं को एक बहुत बड़ी संख्या में अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। युवाओं ने अपने कॉलेज छोड़ दिये और वे जेल का रास्ता अपनाने लगे। भारतीय जनमानस की विशाल पैमाने पर भागीदारी के कारण यह आंदोलन वस्तुत: क्रान्ति में परिवर्तित हो गया। भारत छोड़ो आंदोलन के शहीदों के बलिदान व्यर्थ नहीं हुए। आंदोलन अपने लक्ष्य को कुछ सीमा तक हासिल करने में सफल रहा।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. 'अगस्त क्रांति' आंदोलन कब शुरू हुआ था?

(a) 1938 (b) 1942

(c) 1945 (d) 1930

(उत्तर-B)

2. भारत छोड़ो आंदोलन में समानान्तर सरकार कहाँ नहीं बनी थी?

(a) बलिया (b) सतारा

(c) तामलुक (d) वर्धा

(उत्तर-D)

3. कांग्रेस के किस अधिवेशन में भारत छोड़ो आंदोलन के लिए प्रस्ताव पारित हुआ था?

(a) मुंबई

(b) नागपुर

(c) वर्धा

(d) सतारा

(उत्तर-C)

4. निम्नलिखित में से कौन भारत छोड़ो आंदोलन से संबंधित नहीं है?

(a) उषा मेहता

(b) जयप्रकाश नारायण

(c) अशोक मेहता

(d) रंजन बक्शी

(उत्तर-D)

5. भारत छोड़ो आंदोलन एक स्वत: स्फूर्त आंदोलन था। समीक्षा करें।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. सर स्टेफोर्ड क्रिप्स की योजना में परिकल्पित था कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद:-

(a) भारत को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।

(b) आजादी देने से पहले भारत को दो हिस्सों में विभाजित करना चाहिए।

(c) इस शर्त के साथ कि यह कॉमनवेल्थ का हिस्सा बनेगा, भारत को एक गणतंत्र बनाना चाहिए।

(d) भारत को डॉमिनियन स्टेट्स का दर्जा देना चाहिए।

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2016, उत्तर-D)

2. भारत छोड़ो आंदोलन किसके प्रत्युत्तर में शुरू किया गया था?

(a) कैबिनेट मिशन योजना

(b) क्रिप्स प्रस्ताव

(c) साइमन कमीशन रिपोर्ट

(d) वेबेल योजना

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2013, उत्तर-B)

3. निम्नलिखित में से कौन 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के बारे में सही नहीं है।

(a) यह एक अहिंसक आंदोलन था

(b) इसका नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया

(c) यह एक स्वत: स्फूर्त आंदोलन था

(d) इसने सामान्यतया मजदूर वर्ग को आकर्षित नहीं किया

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2011, उत्तर-A)

4. स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान अरूणा आसफ अली भूमिगत क्रियाओं में एक मुख्य महिला संयोजक थी:-

(a) सविनय अवज्ञा आंदोलन में

(b) असहयोग आंदोलन में

(c) भारत छोड़ो आंदोलन में

(d) स्वदेशी आंदोलन में

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2009, उत्तर-C)

5. विश्व में घटित कौन-सी मुख्य राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों ने भारत में उपनिवेश-विरोधी (एंटी-कॉलोनियल) संघर्ष को प्रेरित किया ? (150 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

6. महात्मा गांधी के बिना भारत की स्वतंत्रता की उपलब्धि कितनी भिन्न हुई होती? चर्चा कीजिए। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2015)

7. स्वतंत्रता संग्राम में, विशेष तौर पर गाँधीवादी चरण के दौरान महिलाओं की भूमिका का विवेचन कीजिए। (200 शब्द)

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2016)

GS World
Committed To Excellence